CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1.2

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, करौंदी

अ4/8

दानकेलिकौमुदी

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, करौंदी
वाराणसी-5

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, करौंदी
वाराणसी-5

थालय
वाराणसी-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊ 4/8

आम्नाय-ग्रन्थालय,
परतनिधि, करौंदा
वाराणसी-5

[illegible] व सस्ता मजबूत जिल्द बनवा[illegible]
के लिये हमेशा याद रखिये
मदन मोहन अग्रवाल
[illegible]नी मीरगंज, डेढ़ी दरवाजा [illegible]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशितग्रन्थसंख्या— १३६.

आम्नाय-ग्रन्थालय, भदैनिवि, करौंदी वाराणसी-5

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

श्रीमद्रूपगोस्वामिप्रभुविरचित—

❀ दानकेलिकौमुदी ❀

श्रीलविश्वनाथचक्रवर्त्ती-विरचित—
"महती" टोकया समलंकृता
तथा
कुसुमसरोवरनिवासिना कृष्णदासेन कृतया
हिन्दीभाषया सुपरिष्कृता

सम्वत्—२०२४.
न्योंछावर—रु०२. २५ पैसे

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा

मुद्रकः—गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, (गवालियरमन्दिर)
राधाकुण्ड [मथुरा]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

हैयंगवीन = ...
हैयङ्गवीन = ताजा दूध से बना
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, करौंदी
वाराणसी-5

❀ दो शब्द ❀

नाटकीय उपरूपक भेद के अन्तर्गत "भाणिका" नामक यह एकांक नाटक है जिस का नाम दानकेलिकौमुदी है। इस में आलोच्य विषय यह है कि—श्रीवसुदेवजी अपने पुत्र बलदेव एवं मित्र-पुत्र श्रीकृष्ण की शान्तिकामना से गर्गजामाता भागुरिजी को प्रतिनिधि रूप में नियुक्त कर गोपन से गोविन्दकुण्ड के तट पर एक यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। मुनियों ने यह बतलाया था कि जो कोई उस यज्ञ में हैयङ्गवीनादि बेचने को उपस्थित करेगा वह शीघ्र ही मनोवाञ्छित कामना प्राप्त होगा। अतएव श्रीराधा सखियों के साथ गुरुजनों का आदेश प्राप्त कर हैंयङ्गवीनादि बेचने के लिये यात्रा करती हैं तथा दानघाटी के पास पहुँच जाती हैं।

यथा—

शोणे मण्डितमूर्द्ध्नि कुण्डलतया क्लृप्ते दुकूलोत्तमे
न्यस्तां स्वर्णघटीं वहन्त्यचटुलां हैयङ्गवीनोज्ज्वलाम्।
दूरे पश्य तथाविधाभिरभितः स्मेरा सखीभिर्वृता
राधा मानसजाह्नवीतटभुवं स्वैरं परिक्रामति ॥२७॥

अर्थात्—"वृन्दा सुबल से कह रही है—हे सुबल ! दूर से देखो, रक्तवर्णवस्त्र से आच्छादित मस्तक पर कुण्डलाकार बेड़ा है, उस पर हैयङ्गवीन से पूर्ण अचलायमान सुवर्णघट को धारण कर श्रीराधिका सखीगण से परिवृता हो कर मानसगंगा तट पर स्वेच्छापूर्वक भ्रमण कर रही है।" यह तो कृष्णसुख तात्पर्यमात्र है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आगे वृन्दा का वचन यथा—

हैयङ्गवीन – मृदुला त्वमतः कथम्बा
हैयङ्गवीनकलसीं चलिता वहन्ती ।
हा मल्लिकार्पणपदं व्यथतें शिरस्ते
मूर्द्धन्यमुं मम निधेहि कृपां विधेहि ॥५७॥

अर्थात्—"हे राधे ! तुम तो हैयङ्गवीन (मक्खन) की भाँति कोमलाङ्गी हो, किस प्रकार हैयङ्गवीन कलस को वहन कर चल रही हो । बड़े खेद की बात है, तुम्हारे मस्तक में मल्लिपुष्प का अर्पण करने पर व्यथा होती है, अहो आज उस मस्तक पर कलस देख रही हूँ, कृपा करके मेरे मस्तक पर कलस को रख दो" ॥५७॥

इधर श्रीकृष्ण नान्दीमुखी से यह सम्बाद सुन कर दानघाटी में पहुँच जाते हैं एवं मधुमङ्गल–सुबलादि सखाओं के साथ दानी वेश में सजमज कर घाटी के स्वामी वन कर उन से "शुल्क" दावा करते हैं। दानघाटी में दोनों पक्ष का संघर्ष होता है । जिस से हास्य–परिहासमय नाना बाद–विवाद उपस्थित किया जाता है ॥

श्रीकृष्ण राधिका का वर्णन करते हैं कि—

अप्रौढ़द्विजराजराजदलिका लब्धा विभूतिं रुचां
नव्यामात्मनि कृष्णवर्त्मविलसद्दृष्टिर्विशाखान्विता ।
कन्दर्पस्य विदग्धतां विदधती नेत्राञ्चलस्य त्विषा
त्वं राधे शिवमूर्त्तिरित्युरसि मां भोगीन्द्रमङ्गीकुरु ॥१३९॥

अर्थात्—"हे राधे ! तुम मङ्गलमयमूर्त्ति धारण कर रही हो, तुम्हारा ललाट अर्द्धचन्द्र शोभा को धारण कर रहा है । अपूर्व-कान्ति द्वारा तुम्हारा शरीर विभूषित हो रहा है। मुझ कृष्णमार्ग में तुम्हारी दृष्टि विलास कर रही है। तुम विशाखा नाम्नी सखी के साथ हो, नेत्राञ्चलकान्ति द्वारा कन्दर्प विदग्धता का विधान कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
आम्नाय-ग्रन्थालय, भरतनिधि, करौंदी

रहो हो, अतएव भोगिराज मुझ को अपने वक्षःस्थल में स्थान दो ॥

पक्षान्तर में—हे राधे ! तुम शिवमूर्त्ति को धारण कर रही हो, अर्द्धचन्द्र से तुम्हारा ललाट विराजमान है, तुम अपने शरीर में नवीन कान्तियों की विभूति को धारण कर रही हो, तुम्हारे नेत्र अग्निरूप हो रहे हैं, तुम विशाखा अर्थात् कार्त्तिकेय के साथ युक्त हो, और नेत्र के द्वारा कन्दर्प का दग्ध किया है, अतएव भोगीन्द्र अर्थात् सर्पसमान मुझे अपने वक्षःस्थल में अङ्गीकार करो ।" इस प्रकार दानघाटी पर घाटीकर के लिये दोनों का वाद-विवाद होता है। शेष में पौर्णमासीजी की मध्यस्थता में चरम सीमापन्न हास्य परिहासमय वाद-विवाद की निष्पत्ति होती है ॥

इस भाणिका का निर्माण कारण यह है कि—

श्रीराधाकुण्डनिवासी श्रीपाद रघुनाथदासगोस्वामीजी महान् विप्रलम्भ से परिपूर्ण ललितमाधवनाटक का पाठ कर उन्मत्त प्राय हो गये, उन की जीवन रक्षा असम्भव सी हो गयी । श्रीरूपगोस्वामीजी ने हास्यमय सम्भोगरस से परिपूर्ण दानकेलिकौमुदी का निर्माण कर उन के मन को रसान्तर में अभिनिवेश कराने के लिये शोधन-वहाना देकर ललितमाधव को लेकर इसका अर्पण किया है। जिस का पाठ कर रघुनाथजी स्वस्थ हुए । उन्होंने भी समयान्तर में सम्भोगरस प्रचुरमय "दानकेलिचिन्तामणि" तथा "मुक्ताचरित" की रचना की। प्रस्तुत दानकेलिकौमुदी का निर्माण काल १४७१ शकाब्दि में है। वहरमपुर संस्करण मे इसकी टीका श्रीजीवगोस्वामी नाम से तथा संस्कृत कालेज के एसियाटिक सोसाइट तथा पुना भाण्डाराकार अनुसन्धान समिति की ग्रन्थतालिका में श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीजी नाम से उल्लिखित है । टीका का नाम "महती" है। श्रीरसिकोत्तंसविरचित "प्रेमपत्तन" ग्रन्थ से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है कि—"यत्राधर्म एव धर्मः स्थापितः" इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकरण में—तथोक्तं श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तिमहाशयैः दानकेलि-कौमुदीटीकायाम्—

"दानकेलिकलौ लुप्तधर्म्ममर्य्यादयोर्भजे ।
राधा-माधवयोः कामलोभदम्भमदानृतम्" ॥ इति ।

अतएव चक्रवर्त्तीजी टीकाकार अवश्य हुए। अस्तु बहुत दिनों से देवाक्षर में इस का सटीक-सानुवाद प्रकाशन करने की इच्छा थी जो कि आज फलवती हुई। डाक्टर नवेन्दुदत्त मजूमदार महोदय वृन्दावन गोपालबाग निवासी ने इस का प्रकाशन में उत्साहित किया तथा सहानुभूति दी। हम उन को हार्दिक धन्यवाद देते हैं। परिशेष में हम उन महानुभावों को स्मरणपद्धति में लाते हैं कि जिन्होंने प्रारम्भ में इस सेवा कार्य में हार्द्दिक सहानुभूति दी थी तथा उत्साहित किया था। जिन की इस मरजगत् में अब स्थिति न होकर प्रभु के पास नित्यधाम में स्थिति हो रही है ।

वे यथा—डाक्टर गोकुलनारायणव्यासजी, आगरा; श्रीयुक्त हरिदासदासजी, हरिबोलकुटीर, नवद्वीप; श्रीमान् लाला चेत-रामजी, कोसीकलाँ; राजा रघुनन्दनजी, मूँगेर; उन की धर्मपत्नी रानी सरस्वतीदेवीजी, मूँगेर; ॥ इत्यादि ॥

कृष्णदासबाबा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

❀ दानकेलिकौमुदी ❀

श्रीश्रीराधाकृष्णौ जयतः ॥

अन्तःस्मेरतयोज्ज्वला जलकणव्याकीर्णपक्ष्माङ्कुरा
किञ्चित् पाटलिताञ्चला रसिकतोत्सिक्ता पुरः कुञ्चती ।

श्रीश्रीहरिर्जयति । दानकेलिकलौ लुप्तधर्म्ममर्य्यादयोर्भजे । राधामाधवयोः कामलोभदम्भमदानृतम् ॥ अथ सोऽयं रसिकमुकुटमणिरभिनीतविदग्धमाधवादिनाटकार्थरत्नो यत्नोरीकृत – राधामाधवलीलाविलासाविराम–रामणीयकपीयूषपरिवेषणव्रतः परमभागवतानुरागिणः प्रियसुहृदोऽनुरञ्जयन्नखिलकविमण्डलाखण्डलः श्रीरूपनामा अमृततरङ्गिणीमिव दानकेलिकौमुदीं नाम भाणिकां निर्म्मिमाणः प्रवरनान्दीमुपश्लोकयन्मङ्गलमाचरति अन्तःस्मेरतयेति । माधवेन पथि पुरोऽग्रत एव रुद्धाया राधाया दृष्टिर्वो युष्माकं श्रियं प्रेमसम्पत्तिं क्रियात् करोतु । कथम्भूता किलकिञ्चितं भावविशेषं स्तवकयितुं स्तवकीकर्त्तुं वहिरीषत्प्रकटयितुं शीलं यस्याः सा । "स्याद्गुच्छकस्तु स्तवक" इत्यमरः । "गर्व्वाभिलाष–रुदित–स्मितासूया–भय–क्रुधाम् । सङ्करीकरणं हर्षादुच्यते किलकिञ्चितम्" । अत्र अन्तःस्मेरतयेति हर्षोत्थं स्मितम् । स्तवकपक्षे अन्तःस्मेरता अन्तरीषत्फुल्लता, जलकणेति रुदितं अवहित्थोत्थम्, पक्षे मकरन्दोद्गमः । किञ्चित् पाटलितं श्वेतरक्तीकृतं अञ्चलं यस्याः सा इति शितिम्ना स्मितं आरुण्येन क्रोधः । पक्षे श्वेतारुणवर्णद्वयोद्गमः । रसिकतया उत्कर्षेण सिक्तेत्यभिलाषः पक्षे मधुररसोद्गमः । कुञ्चेति सङ्कुचितरूपेति भयम् । पक्षे कुञ्चनं कोरकता । मधुरा व्याभुग्ना कुटिला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुद्धायाः पथि माधवेन मधुरव्याभुग्नतारोत्तरा
राधायाः किलकिञ्चितस्तवकिनी दृष्टिः श्रियं वः क्रियात् ॥१॥
विभुरपि कलयन् सदातिवृद्धिं
गुरुरपि गौरवचर्य्यया विहीनः ।
मुहुरुपचितवक्रिमापि शुद्धो
जयति मुरद्विषि राधिकानुरागः ॥२॥
नान्द्यन्ते सूत्रधारः ॥
अलमतिविस्तरेण ॥३॥
(समन्तादवलोक्य) हन्त कथं मदीय-नान्दीचन्द्रिकासन्दीपित-भावबन्धुरा नन्दीश्वरगिरेरुपत्यकायां घूर्णते सतां मण्डली ॥४॥

च या तारा कनीनिका तया उत्तरा श्रेष्ठा । मधुरव्याभुग्नेति गर्व्वासूये । पक्षे माधुर्य्यं कुटिलाकृतित्वञ्च तदा मधुरव्याभुग्नतां राति गृह्लातीति छेदः उत्तरा श्रेष्ठा ॥१॥

विभुर्व्यापकोऽपि चिच्छक्तिरूपत्वात् । सदैवाभितो वृद्धिं कलयन् धावन् लोकवल्लीलाकैवल्यात् । अनुरागो नाम-सदानुभूयमानेऽपि वस्तुन्यपूर्व्वतया अननुभूतत्वभानसमर्पकः, प्रेम्नः पाकरूपभावविशेषः स च प्रतिक्षणं वर्द्धत एवेति । गौरवचर्य्यया दाक्षिण्यचर्य्यया हीनो मदीयतामयमधुरस्नेहोत्थत्वात् । उपचितो वक्रिमा कौटिल्यपर्य्याय-वाम्यलक्षणो यस्मिन् सोऽपि शुद्धः शुद्धसत्त्वविशेषात्मकत्वात् निरुपाधित्वाच्च । जयति सर्व्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् ॥२॥

नान्द्यन्ते सूत्रधार आह इत्यन्वयः । यदुक्तं "प्रस्तावनयान्तु मुखे नान्दीकार्य्या शुभावहा । आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्द्देशान्यतमान्विते"ति ॥३॥

चन्द्रिकादीपितत्वेन भावस्य समुद्रत्वं व्यञ्जितम् । "उपत्यकाद्रेरा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[stamp]

(पुनरवेक्ष्य)
भक्तः कोऽपि तनोस्तनोति पुलकैर्नृत्यन्निहोत्फुल्लतां
शुष्यन् कोऽपि चिराद्विवर्णवदनो धत्ते विदीर्णं मनः ।
गर्ज्जन् धावति कोऽपि विन्दति पतन् कोऽप्येष निष्पन्दता-
मुद्यत्यच्युतविभ्रमे गतिरभूत् का स्थेयसामप्यसौ ॥५॥
(क्षणं विमृष्य)
आमभिज्ञात निदानं साधिष्ठप्रेमकदम्बकादम्बराणा-
माडम्बरोऽयम् ॥६॥

सन्ना भूमिरि"त्यमरः । वन्धुरा मनोज्ञा ॥४॥

पुलकैस्तनोरुत्फुल्लतां तनोतीति तल्लीलाश्रवणोत्थेन सहसैव हर्षेण । शुष्यन् कोऽपीति तत्र अविशेषानुसन्धानेनौत्कण्ठातिशयेन दैन्यनिर्व्वेदग्लानिभिः । गर्ज्जन्–धावतीति सद्य एव तदाकारायामन्तःकरणवृत्तौ तत्साक्षात्कारेण स्वस्य तत्परिजनत्वभावनया गर्व्वमदहर्षैः । कोऽपि पतन् सन् निष्पन्दतां विन्दतीति तद्दर्शनानन्दजाड्यमोहाभ्याम् । तत्र यथोत्तरमेव प्रेमवतां श्रैष्ठ्यम् । यद्वा-वैष्णवतोषण्युक्तयुक्त्या प्रेम्नो विश्रम्भप्रधानतोत्कण्ठाप्रधानत्वाभ्यां भेदाभ्यां तदधिष्ठानानां भक्तानामपि द्वैविध्येन समानेनाप्युद्दीपनेन विभावेन युगपदनुभवगोचरीकृतेन परस्परविजातीयभावोद्गमो नानुपपन्नः । तत्र विश्रम्भप्रधानानां संयोगस्फूर्त्तितारतम्यात् पुलक–नृत्य–गर्ज्जन-धावनानि । उत्कण्ठाप्रधानानां विश्लेषस्फूर्त्तितारतम्येन दैन्यानुताप-निर्व्वेदादितारतम्यात् मुखशोष-वैवर्ण्य-भूपात-मूर्च्छा ज्ञेयाः । अच्युतस्य विभ्रमे विलासे उद्यति सति स्थेयसामतिस्थिराणामप्येषां काप्यनिर्व्वचनीया गतिरवस्था अभूत् ॥५॥

आमिति मान्तमव्ययं स्मरणे । साधिष्ठोऽतिश्रेष्ठो यः प्रेमसमूहः स एव कादम्बरा मदभेदास्तेषामाडम्बरः संरम्भः । "कादम्बरस्तु दध्यग्रे मद्यभेदे नपुंसकम् । आडम्बरस्तुर्य्यपक्षसंरम्भगजगर्ज्जित" इति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यतः—

गभीरोऽप्यश्रान्तं दुरधिगमपारोऽपि नितरा-
महार्य्यां मर्यादां दधदपि हरेरास्पदमपि ।
सतां स्तोमः प्रेमण्युदयति समग्रे स्थगयितुं
विकारं न स्फारं जलनिधिरिवेन्दौ प्रभवति ॥

(पुर्न्निभाल्य)

तत्रापि विश्वविलक्षणा सा निर्भरमतिमोहिनी केलिचर्य्या ।

(इति मूर्द्धानमाधुन्वन् सधैर्य्यम् । ७॥)

प्रेमोर्जिता नर्म्मविवादगोष्ठी
गोपेन्द्रसूनोः सह राधयासौ ।
हंसानपि श्रोत्रतटीमवाप्ता
शुद्धामृतादप्यभितो रुणद्धि ॥८॥

(प्रविश्य नटः सानन्दम्)

अवगणितसन्धिभूमा नाट्यकलेयं बलिष्ठसमाज्ञा ।
परमसुवृत्तियुगाढ्या वरराज्यश्रीरिव स्फुरति ॥९॥

मेदिनी ॥६॥

अहार्य्यां केनाऽपि हर्त्तुमशक्यां अत्याज्यां समग्रे सम्पूर्णे स्थगयितुं सम्वरीतुम् ॥७॥

प्रेम्ना ऊर्जिता प्रबलिता हंसानपि आत्मारामानपि शुद्धामृतां ब्रह्मानन्दादपि । पक्षे स्पष्टम् ॥८॥

इयं नाट्यकला नृत्यवैदग्धी श्रेष्ठा राज्यश्रीरिव स्फुरति । अवगणितः तिरस्कृतसन्धिभूमा सन्धिबाहुल्यं यस्यां सा । मुख-प्रतिमुख-गर्व्व-विमर्ष-निर्व्वहणानां नाटकोक्त - पञ्च - सन्धीनां मध्ये भाणिकाया प्रथम-पञ्चम-सन्धिभ्यां युक्तत्वात् । पक्षे पञ्चभिः सह प्रीत्या स्वकार्य्यसाधनार्थं सन्धानं सन्धिः स च बलवता राज्ञा नाद्रि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूत्र । भोस्ताण्डवाचार्य्यपाण्डित्यपारङ्गत ! सम्यगभिज्ञातम् । यदेष नियोगेन सुहृदामुपरूपकभिदां दानकेलिकौमुदीं नाम भाणिकामभिनेतुमुद्यतोऽस्मि । तदत्र निजाभीष्टदैवतानुस्मरण-मङ्गलमाचरेयम् ।

(इत्यञ्जलिं कृत्वा) ॥१०॥

नामाकृष्टरसज्ञः शीलेनोद्दीपयन् सदानन्दम् ।
निजरूपोत्सवदायी सनातनात्मा प्रभुर्जयति ॥११॥

नट । भाव पश्य पश्य—

गान्धार-ग्रामगुरोस्तव गान्धर्व्वविद्याप्रबन्धेन कुरङ्ग-धर्म्ममुपलम्भिता रसज्ञरत्नमण्डली नात्मानमप्यनुसन्धातु-मसौ क्षमते ॥१२॥

यत एव वलिष्ठानि सप्ताङ्गानि यस्यां सा । "उपन्यासोऽथ विन्यासो विरोधः साध्वसं तथा समर्पणं निवृत्तिश्च संहारश्चाऽपि सप्तम" इति नाट्ये सप्ताङ्गानि । पक्षे स्वाम्यमात्य-सुहृत्-कोष-राष्ट्र-दुर्ग-वलानि चेति राज्यसप्ताङ्गानि । परमसुवृत्त्योर्भारती कैशिक्योर्युगेन आढ्यः पक्षे परमसुवृत्तियुक् आढ्यश्च ॥९॥

उपरूपकभिदां नाटिकाविशेषां ॥१०॥

नाम्नैव आकृष्टा रसज्ञाः रसिकाः रसज्ञा जिह्वाचयेन यस्य सः, शीलेन स्वचरितेन नन्दं श्रीव्रजेश्वरं सदा सतामानन्दं च उद्दीपयन् प्रकाशयन् निजरूपेण स्वसौन्दर्य्येण उत्सवं दातुं शीलं यस्य सः । पक्षे निजः स्वीयो रूपः मल्लक्षणो जनः तस्य उत्सवदायी, सनातनो नित्य आत्मा श्रीविग्रहो यस्य । पक्षे सनातनो नाम आत्मा देहो यस्य सः ॥११॥

गान्धारः सङ्गीतनिष्ठस्तृतीयो ग्रामः तत्र गुरोरध्यापकस्य गान्धर्व्वं गानं रसज्ञरत्नमण्डली श्रेष्ठरसिकश्रेणी ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूत्र। प्रकटितललितालङ्कृतगान्धर्व्वेयं महाविद्या।
नान्दीमुखी न हि कथं रसिकेन्द्रानन्दिनी भविता॥
(नेपथ्ये)
साधु भोः कुशीलवाचार्य्य तथ्यं कथयसि। यदद्य नान्दी-मुखी गान्धर्व्विकामावेद्य रसिकवृन्दमौलेर्व्रजेन्द्रनन्दनस्य चिरमानन्दाय भवित्री॥

सूत्र। कथं वनदेवीयं वृन्दा सुबलेन सार्द्धमित एवाभिवर्त्तते।
तदत्र नाट्ये नटान्नियुक्तमितः प्रयाव (इति निष्क्रान्तौ) ॥१३॥
(प्रस्तावना)
(ततः प्रविशति सुबलेन समं सङ्कथयन्ती वृन्दा।)

वृन्दा। साधु भोः कुशीलवाचार्य्येति पठित्वा सुवल कथमे-तयापि मङ्गलवार्त्तया त्वमुत्फुल्लमुखो नाभिलक्ष्यसे ॥१४॥

सुबल। वृन्दे इमस्स पसङ्गस्स विसेस विण्णाण सुण्णदाए मुद्धो विअ जादोह्मि ता फुड़ं कहिज्जउ ॥१५॥

इयं भाणिका महाविद्या महामन्त्ररूपा। प्रकटितं ललितालंकृतं सङ्गीतनिष्ठललितालङ्कारयुक्तं गान्धर्व्वं गानं यस्याः सा। नान्दी मुखे यस्य सा। पक्षे नान्दीमुखीति विशेष्यपदम्। प्रकटिता ललितया-लंकृता गान्धर्व्वा श्रीराधा यया सा। महती विद्या यस्याः सा। पात्र-प्रवेशार्थं कथोद्घातसंज्ञं नाम मुख्याङ्गमिदम्। यदुक्तम्–"सूत्रिवाक्यं तदर्थं वा स्वेति वृत्तमिमं यदा। स्वीकृत्य प्रविशेत् पात्रं कथोद्घातः स कीर्त्तित" इति ॥१३॥

अस्य प्रतिपाद्यस्य तीर्थं प्रस्तावनोच्यते इति प्रस्तावलक्षणम् ॥ ४॥
"वृन्दे अस्य प्रसङ्गस्य विशेषविज्ञानशून्यतया मुग्ध इव जातोऽस्मि तस्मात् स्फुटं कथ्यताम् ॥१५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा । अद्य राधा सखीभिर्मण्डितसनीड़ा गोविन्दकुण्डरोधसि मखमण्डपे गुरूणामभ्यनुज्ञया हैयङ्गवीनं विक्रेतुं अभिक्रमिष्यति तदावेदयितुं नान्दीमुखी सान्दीपनेर्मातुरुपदेशेन मुकुन्दमुपलब्धा ॥१६॥

सुबल । (सानन्दम्) वुन्दे एसा निहिलमाहुरी वरीअसी राहिआ कहं एत्थ लहुअम्मि अत्थे गुरुअणेहिं अणुण्णादा ॥१७॥

वृन्दा । यदहनि हवनीयं हारि हैयङ्गवीनं
स्वयमिदमुपहार्य्यं गोदुहामङ्गनाभिः ।
उपहरणकरीणामप्यभीष्टार्थसिद्धि-
मुं निभिरभिहितास्य प्रक्रियेयं मखस्य ॥१८॥

सुवल । एरिसो सो कस्स महन्तस्स महो ।

वृन्दा । सुगृहीतनामधेयस्यानकदुन्दुभेः ॥१६॥

सुबल । महुपुरं मुञ्चिअ कहं वणमज्भे तिणा आरम्भिदो जण्णो ।

वृन्दा । जीवति कंसहतके कथं मथुरायां तस्य यज्ञसिद्धिः अतस्तेनात्र भागुरिर्नाम गर्गस्य जामाता स्वप्रतिनिधिर्न्यधायि ॥२०॥

मण्डितं सनीड़ं निकटं यस्याः सा । "समीपे निकटासन्न–सन्निकृष्ट–सनीड़वदि"त्यमरः । शखीभिरलंकृतपार्श्वा इत्यर्थः ॥१६॥

वृन्दे एषा निखिलमाधुरीवरीयसी राधिका कथं अत्र लघौ अर्थे गुरुजनैरनुज्ञाता ॥१७॥

हवनीयं हवनयोग्यम् । "तत्तु हैयङ्गवीनं यत् सद्योगोदोहोद्भवं घृतमि"त्यमरः ॥१८॥

ईदृशोऽसौ कस्य महतो मखः ॥१६॥

मधुपुरं त्यक्त्वा कथं वनमध्ये तेनारब्धो यज्ञः॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुबल । फुड़ं आहिआरिओ एसो जण्णो ॥२१॥

वृन्दा । नहि नहि किन्तु शान्तिकोऽयम् । यत्र सुतादप्यधिकस्य मित्रसूनोः कृष्णस्य स्वपुत्रस्य च रामस्य निखिलानिष्टशान्तिः फलम् ।

सुबल । क्षणं विभाव्य सकौतुकम् ॥२२॥

पिअवअस्सस्स सुइरं हिअअट्ठिदा सा गरिट्ठा केलिघट्टाहिआरिदानुरूवस्स राहिआपहुदीहिन्तो दाणग्गहविलासस्स लालसा अज्ज च्चेअ सिद्धा ।२३॥

वृन्दा । सुबल मद्विधानामपि निधानायते सा दानलीला । तदेहि मानसगङ्गातीरमवतरावेत्युभौ तथा कुरुतः ॥२४॥

सुबल । वुन्दे वणन्तराले अकरालाणं मरालाण ध्वणीधोरणी धुणीडाहिणे सुनिज्जउ ॥२५॥

वृन्दा । नायं मरालानां ध्वनिः किन्तु पशुपालबालातुलाकोटीनाम् । (पुनर्निरूप्य सानन्दम्) ॥२६॥

स्फुटं आभिचारिक एष यज्ञः ॥२१॥

शान्तिकः शान्तिप्रयोजनकः तदस्य प्रयोजनमित्यर्थे अध्यात्मादिभ्यष्ठिकन् ॥२२॥

प्रियवयस्यस्य सुचिरं हृदयस्थिता सा गरिष्ठा केलिघट्टाधिकारितानुरूपस्य राधिका-प्रभृतिभ्यो दानग्रहविलासस्य लालसा अद्यैव सिद्धा ॥२३॥

निधानं निधिः तद्वदाचरति निधानायते ॥२४॥

वनान्तराले अकरालाणां मरालानां ध्वनिधारणी ध्वनिश्रेणी धूनी नदी तस्या दक्षिणे मानसगङ्गाया दक्षिणपार्श्वे श्रूयतां । २५॥

तुलाकोटिर्नूपुरः ॥२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोणे मण्डितमूर्ध्नि कुण्डलतया क्लृप्ते दुकूलोत्तमे
न्यस्तां स्वर्णघटीं वहन्त्यचटुलां हैयङ्गवीनोज्ज्वलाम् ।
दूरे पश्य तथाविधाभिरभितः स्मेरा सखीभिर्वृता
राधा मानसजाह्नवीतटभुवं स्वैरं परिक्रामति ।।२७।।

सुवल । अम्महे चञ्चलाहिं सहअरीहिं पुणोपुणो उद्दीविदाए राहिआए आहण्डलकोअण्डलदाए विअ जलदमण्डलो मण्डिज्जई णिअ माहुरिएण वुन्दाडई ।

वृन्दा । सुवल राधामाधुर्य्यस्य गिरामप्यग्रगामित्वादुद्देशेऽपि साहसिक्यमेवावधारयामीति मुखमानमय्य सापत्रपम् ।।२८।।

अनालोच्य व्रीड़ां यमिह वहु मेने वहुतृणं
त्यजन्नीर्षापन्नां मधुरिपुरभीष्टामपि रमाम् ।
जनः सोऽयं यस्याः श्रयति न हि दास्येप्यवसरं
समर्थस्तां राधां भवति भुवि कः श्लाघितुमपि ।।२९।।

शोणे दुकूलोत्तमे कथम्भूते कुण्डलतया कुण्डलीकृतत्वेन क्लृप्ते मूर्द्धा येन तस्मिन् । तदपि एकं भूषणमिव तत् नतु दूषणमिति भावः,अचटुलां सुस्थिरः वृहत्तिमिरमण्डलोपरिस्तोकमार्त्तण्डमण्डलं तदुपरिस्थिरविद्युन्मण्डलमिव शिरसि शोभैवेति भावः ।।२७।।

अहो चञ्चलाभिः सहचरीभिः पुनः पुनरुद्दीपितया राधिकया आखण्डलकोदण्डलतया इव जलदमण्डलो मण्ड्यते निजमाधुर्य्येण वृन्दाटवी । पक्षे चञ्चलाभिर्विद्युद्भिः सहचरीभिः सह गामिनीभिः । आखण्डलकोदण्ड इन्द्रधनुः तच्च स्वरूपतः पीतवर्णमपि नीलवर्णारुणश्वेतादि किर्म्मिरितम् । दार्ष्टान्तिके विविधमणिभूषणादिवत्त्वेन तथात्वम् ।।२८।।

यन्मल्लक्षणं जनं निकृष्टमपि वहु यथास्यात्तथा मेने । अभीष्टां प्रेष्ठामपि रमां लक्ष्मीं तृणमिव त्यजन् अतएव ईर्षापन्नां इर्षावतीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवतु तथापि स्वगिरं वासयितुं तत् सौरभं किञ्चिदुदञ्चयामीति सुबलमालोक्य ।।३०।।

राधाया मुखमण्डलेन बलिना चन्द्रस्य पद्मस्य वा
व्याक्षिप्ता सुषमेति केयमबुधैः श्लाघा विनिर्म्मीयते ।
यद्दूरेऽप्यनुभूय भूयसि सुधाशुद्धापि चन्द्रावली
पद्मालीच विसृज्य शीर्य्यति निजां सौन्दर्य्यदर्पश्रियम् ।।३१।।

सुबल । एसो वि किंत्ति तिए उक्करिसो ।।

वृन्दा । सुबल गोवर्द्धनमूर्द्धनि श्यामलमण्डपिकायाः पृष्ठतः शिखण्डमौलिस्त्वयोपनीयताम् । मयातु मनोहरमासां विहारकौशलमवलोकयन्त्या शनैरवगन्तव्यमिति सुबलेन सह निष्क्रान्ता ।।

विष्कम्भकः ।।

ततः प्रविशति सखीचतुष्टयेनासज्यमाना राधा ।।३२।।

राधा । अम्महे वणलेहाए लोअणलोहणिज्जदा ।

(इति संस्कृतमाश्रित्य) ललिते पश्य पश्य ।।३३।।

पदततिभिरलं कृतोज्ज्वलेयं
ध्वजकुलिशांकुशपङ्कजाङ्किताभिः ।

सोऽयं मल्लक्षणो जनः वृन्दारूपः यस्या दास्यमपि प्राप्तं नार्हतीत्यर्थः ।।२९।।

वासयितुं सुगन्धिकर्त्तुं इति तद्वर्णयित्र्या मत्सरस्वत्या एव माहात्म्यं भविष्यति न तु वर्णनीयायास्तस्या इति भावः ।।३०।।

सुषमा शोभा भूयसि बहुतरे दूरेऽपि किं पुनर्निकटे इति भावः । सुधा अमृतं मधुच चन्द्राणामावलिः पद्मानां आली श्रेणी पक्षे चन्द्रावली यूथेश्वरी पद्माली लक्ष्मी समूहश्च तत्पक्षे सुधातोऽपि शुद्धा ।।३१।।

एषोऽपि कियान् तस्या उत्कर्षः ।।३२।।

अहो वनलेखाया लोचनलोभनीयता ।।३३।।

इयं वनालिर्वनश्रेणी वनरूपा सखीच । ध्वजाद्यैरङ्किताभिः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नखरलुठित – कुट्मलावनाली
किमपि धिनोति धुनोति चान्तरं मे ॥३४॥

ललिता । (स्मित्वा) विसाहे पेक्ख पेक्ख (इति संस्कृतेन) ।

सदा सुधाबन्धुरवेणुमाधुरी
विस्मारिताशेषशरीरकर्म्मणाम् ।
चिरं तिरश्चामपि यत्र कानने
मनः समाधेर्न कदाप्युदास्यते ॥३५॥

राधा । (स्वगतं) अवि णाम अतक्किदं, आअदुअ, हेअङ्गवीणोवहारिणीणं अम्भाणं मग्गं अज्ज रुन्धिस्सदि वइन्दणन्दणो ॥३६॥ (प्रकाश) हला ललिदे एह्नि पत्थाणओसरे, ईसि विहसिअ, किं भणिदं, भअवदो ए ॥३७॥

पदततिभिः अलङ्कृता उज्ज्वला स्वाधीनभर्त्तृकेवेति भावः । नखरेषु कृष्णस्य नखेषु लुठितं कुट्मलं तच्चयनकाले यस्याः सा । पक्षे नखराङ्कितस्तना इत्यर्थः । धिनोति प्रीणयति कृष्णसंभुक्तस्वसखीमिव दृष्ट्वा सुखमेव प्राप्नोमीत्यर्थः । धुनोति कम्पयति इति तद्दर्शनेन ममाप्यौत्सुक्योदयादिति भावः । कम्पः सात्त्विकविकारः ॥३४॥

स्मित्वेति वनाङ्कदर्शनेनैव तवाद्य गाम्भीर्य्यं विगलितमभूत् आस्तां तद्वेणुमाधुरीवार्त्तापि इत्याह सदेति । तिरश्चामित्यतिचपलानां ज्ञानशून्यानामपि समाधिश्चित्तैकाग्र्यं अतिदृढ़ं अतिस्थिराणां ज्ञानवतीनामपि भवतीनां चापल्यं विचारशून्यत्वं च भावीत्यहो विपरीतवैचित्रिकारित्वं वेणोरधुनापि भवत्यानुभूतमेवेति भावः ॥३५॥

अपि नाम अतर्कितं आगत्य हैयङ्गवीनोपहारिणीनामस्माकं मार्गमद्य रोत्स्यति व्रजेन्द्रनन्दनः ॥३६॥

सखि ललिते इदानीं प्रस्थानावसरे ईषद्विहस्य किं भाणितं भगवत्या ॥३७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता । एव्वं भणिदं, अज्ज तुम्भाणं, कोवि अऊरूव्वो उवत्थिदो दीसई लाहो ।।३८।।

राधिका । ललिदे कधाप्पसङ्गे पुच्छीअदु, सा महातावसी सव्वण्णा तत्त होदी पोएणमासी ।।३९।।

ललिता । किं तं पुच्छिदव्वम् ।

राधा । पुव्वभवे नन्दीमुही पहुदिहिं कीदिस महाव्वदं किदं त्ति ।।४०।।

ललिता । एदाणं महाव्वदकारिदा कधं तुए तक्किदा ।।४१।।

राधा । हद्धी हद्धी, अइ मुद्धे तुमंवि एव्वं पुच्छसि ।

जं तस्स मन्दान्दोलिद-मअरकुण्डलकिरणराअ-कन्दलोसुन्दरस्स मुहारविन्दस्स अच्चरिअं सिविणे वि सुदूरादो तुम्भादिसीणं दुल्लहगन्धलअं महामाहुरीभअरन्धं णेत्तेन्दिन्दिरेहिं सव्वदा ताओ अणि-अरिदं पिअन्ति ।।४२।।

ता भणामि परमाहिट्ठाणुवलम्भमुम्मरजालिदाणं तुम्भाणं वि

एवं भणितं अद्य युष्माकं कोऽप्यपूर्व्वं उपस्थितो दृश्यते लाभः ।।३८।।

राधाह ललिते कथाप्रसङ्गे पृच्छ्यतां महातापसी सर्व्वज्ञा तत्र भवती पौर्णमासी ।।३९।।

ललिता किं तत्प्रष्टव्यं राधा पूर्व्वभवे नान्दोमुखीप्रभृतिभिः कीदृशं महाव्रतं कृतमिति ।।४०।।

एतासां महाव्रतकारिता कथं तया तर्किता । ४१।।

हद्धी खेदे मुग्धे त्वमपि एवं पृच्छसि, यत्तस्य मन्दान्दोलितमकरकुण्डलकिरणरागकन्दलोसुन्दरस्य मुखारविन्दस्य आश्चर्य्यं स्वप्नेऽपि सुदूरतो युष्मादृशीनां दुर्ल्लभगन्धलवं महामाधुरीमकरन्दं नेत्रेन्दिन्दिरैर्नेत्ररूपभ्रमरैस्ता नान्दिमुखीप्रभृतयः सर्व्वदा अनिवारितं पिबन्ति ।।४२।।

तद्भणामि, परमाभीष्टानुपलम्भमुर्म्मुरज्वालितानां युष्माकमपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्थ महाव्वदे दिक्खा सव्वधा ज्जेव्व जुत्ता । जधा ताणं
णान्दीमुहीपहुदीण पहवी भाविणि भवे वि ण दुल्लहा भवे ।।४३।।

विशाखा । राहे नन्दीमुही पहुदिदो गोवकण्णागणादो किम्बा अविसेसेण सव्व गोउलवासि जणादो वि कावि एक्का महाभाइणी किदमहाव्वदलक्खा लक्खीअदि ।।४४।।

राधा । (सोत्कण्ठम्) विसाहे का क्खु एसा पुण्णवदीणं सिहामणी ।।
ललिता । (स्वगतं) तुअत्तो का ईदिसी अण्णा दुदीआ ।।
राधा । सहि विण्णादं सच्चं कधेसि (इति संस्कृतेन) ।।४५।।

श्लाघ्यते कलिलकेलिकाकलीव्याकुलीकृतसमस्तगोकुला ।
श्रीहरेरधरसीधुमाधुरीमादिता मुरलिरेव नेतरा ।।४६।।

तत्र महाव्रते दीक्षा सर्व्वदैव युक्ता । यथा तासां नान्दीमुखीप्रभृतीनां पदवी भाविनि भवेऽपि न दुर्ल्लभा भवेत् । मुम्मुरस्तुषाग्निः युष्माक-मिति सख्यैनैक्यात् औत्सुक्यन्तु स्वस्यैवातिशयितुं तास्वारोपितम् ।।४३

राधे नान्दीमुखीप्रभृतितो गोपकन्यागणतश्च किम्बा अविशेषेण सर्व्वगोकुलवासिजनतश्च कापि एका महाभागिनीकृत-महाव्रतलक्ष्या लक्ष्यते ।।४४।।

का खलु एषा पुण्यवतीनां शिखामणिः । ललिता त्वत्तः का ईदृशी अन्या द्वितीया । राधा सखि विज्ञातं विज्ञातं सत्यं कथ-यसि ।।४५।।

कलिला गहना या केलिमय्यः काकल्यस्ताभिः । श्लेषेण कलिं कलहं लान्ति सर्व्वतो ददतीति तां सीधुर्मधु तत्तश्च मत्ता मुखरा जग-दुद्वेजिकापि तपोवलेन तथाभूताभवदिति भावः । यद्वा – तया अतिसौभाग्येनैव अधरमधुपानं लब्धं तेन च सा उन्माद्यभूतीकृता नतु तस्याः श्रेष्ठाया औत्पत्तिकः स स्वभाव इति भावः ।।४६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता। सस्मितं सच्चम्।

मुरलीकुइदतरलीकिदधीरमणसा गोरी।
उत्तमवंसुप्पण्णा साराहिणा महासरसमहुरा ॥४७॥

राधा। हला कीस हससि। मन्दभाइणावि इमिणा जणेन अप्पणो पणइजणाणं पसादादो तं मुहमण्डलं दो तिण्ण वारं वि दिट्ठ-मत्थि। तधावि पइदिमादएण तिएणा अउरुव्वेण तस्स माहुरी महुणा हिअअं उम्महिअ तधा सव्वं विसुमारीअदि। जधा परिहा-णेण पेक्खणं वि दुल्लहम् ४८॥

(इत्यौत्सुक्यमभिनीय संस्कृतेन)

तपस्यामः क्षामोदरि वरयितुं वेणुषु जनु-

सत्यम्, मुरलीकूजिततरलीकृतधीरमानसा गौरी। उत्तमवंशोत्पन्ना साराहीना महासरसमधुरा। मुरली कीदृशी कूजितेन तरलीकृतं धीराणामपि मानसं यया सा। राधापक्षे मुरल्याः कूजितेन तरलीकृतं धीरमपि मानसं यस्याः सा। गौरी अरुणा पक्षे पीता "गौरोऽरुणे सिते पीते" इत्यमरः। उत्तमवंशाद्वृक्षविशेषादन्वयविशेषाच्च उत्पन्ना सारेण अहीना युक्तेत्यर्थः। त्वचिसारत्वात् महासरसी च रसिका च संगीतरसिकत्वात्। पक्षे सा राही नाम सा राधा-नामेति भाषाश्लेषः हासरसे परिहासरसे तत्कर्त्तृतया तत्कर्म्मतया मधुरा माधुर्य्यवर्षिणीत्यर्थः ॥४७॥

श्लिष्टमर्थमवगम्याह हलेति कस्माद्धससि इति त्वयेदं श्लेषेण हास्यमात्रं क्रियते मयि तद्याथार्थ्यमालक्ष्येति भावः। मन्दभागिनाप्यनेन जनेन आत्मानं प्रणयिजनानां प्रसादात् तन्मुखमण्डलं द्वित्रि वारमपि दृष्टमस्ति तथापि प्रकृतिमादकेन तेनापूर्व्वेण तस्य माधुरीमधुना हृदयं उन्मथ्य तथा सर्व्वं विस्मार्य्यते। यथा प्रणिधानेन प्रेक्षणमपि दुर्ल्लभम् ॥४८॥

श्लाघ्यते कलिलकेली-काकलीति पद्येन व्यञ्जितमेवार्थं संप्रत्यति-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वँरेण्यं मन्येथाः सखि तदखिलानां सुजनुषाम् ।
तपस्तोमेनोच्चैर्यदियमुररीकृत्य मुरली
मुरारातेर्बिम्बाधरमधुरिमाणं रसयति ।

प्रविश्य वृन्दा । ललिते कथं कथाभिनिवेशेन संरब्धहृदयाः शत्रु-ध्वजवेदिपदवीमधिरोहन्तमप्यात्मानं न जानीथ यूयम् ।।४९।।

सर्व्वाः । (परावृत्य) सहि सच्च कधेसि । जं गोअड्ढणो पुट्ठदो संवुत्तो । ता डाहिणे गोइन्दकुण्डवट्टणीं अणुवट्टम्भ । (इति तथा कुर्व्वन्ति ।

वृन्दा । अपवार्य्य, चम्पकलते पश्य पश्य ।।५०।।

ध्रुवं निखिलमाधवप्रणयिनीकदम्बादलं
विकृष्य विविधं विधिर्मधुरिमाणमत्यद्भुतम् ।
प्रभोः परमतुष्टये निरमिमीत राधां मुदा
यदत्र रमते हरिः परिहृतान्यनारीस्पृहः । ५१।।

राधा । (दक्षिणतः प्रेक्ष्य,) अम्महे माणसगङ्गाए उप्फुल्ले कमल-कलावे रोलम्बानं काअलीकलअलस्स कोमलदा ।।५२।।

तारतम्येनाभिधयैवाह तपस्याम इति बिम्बाधरं उररीकृत्य अत्र प्रकरणे सर्व्वत्र कान्तविश्लेषेण जनितमौत्सुक्यमेव सञ्चारी तदप्राप्ति-कारणस्य स्वायोग्यत्वस्य कल्पनया दैन्यं च स्थायिभावोऽनुराग एव अप्राणिन्यपि जन्मलालसा तस्यानुभावः अतिशयेन संरब्धहृदयाः ग्रस्तमनसः ।।४९।।

यद्गोवर्द्धनः पृष्ठतः संवृत्तः । तद्दक्षिणे गोविन्दकुण्डवर्त्तिनीं अनुवर्त्तामहे वर्त्तनीं पस्थानम् ।।५०।।

परिहृतान्यनारीस्पृह इति सर्व्वमाधुर्य्यस्यैकत्र लाभादिति भावः ।।५१

अहो मानसगङ्गाया उत्फुल्ले कमलकलापे रोलम्बानां भ्रम-राणां काकलीकलकलस्य कोमलता । ५२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा । (साकूतम्) ।

सरोजानां पुञ्जे मदकलममुं पश्यत पुरः
परागैरापिङ्गैः स्फुरदधरकायं मधुकरम् ।
महुर्भ्रामं भ्रामं भ्रमररमणीर्यः सरभसं
निरुद्धानो ध्वानोद्धतिविधूतमूर्द्धा विहरति ॥५३॥

राधा । (स्वगतं) णुणं वुन्दाए किम्पि हियए कदुअ एदं वाहरीअदि । (प्रकाशम्) । हला वुन्दे धण्णा ओ कुसुमकीड़ि ओ । जा ओ कान्तेण समं किलन्ति मन्दभाइणीण उण इमाणं सूरोवासीणीणं दूरादो क्खण वितस्स पेक्खणं सुदुल्लहत्ति । ५४॥

(संस्कृतेन) ।

भवतु माधवजल्पमशृण्वतोः श्रवणयोरलमश्रवणिर्मम ।
तमविलोकयतोरविलोकनिः सखि विलोचनयोश्च किलानयोः॥५५॥

मदकलं मत्तं आपिङ्गैः सम्यक् पीतैः स्फुरन् अधरकायः कायस्योत्तरभागो यस्य अत्र पराग – मधुकर–भ्रमररमणी–निरोधध्वानोद्धत्यपदेशेन पीतवसन–कृष्ण–गोपरमणी–निरोध मिथो वाक्कलथो भाविनोऽर्था ज्ञाप्यन्ते इत्युपन्न्यासोऽयं सप्तस्वङ्गेषु प्रथममङ्गम् । यदुक्तम्–उपन्न्यासः प्रसङ्गेन भवेत् कार्य्यस्य कीर्त्तनम् ॥५३॥

नूनं वृन्दया किमपि हृदये कृत्वा इदं व्याह्रियते । हला वृन्दे धन्याः कुसुमकोट्यः भ्रमर्य्यं इत्यर्थः । याः कान्तेन समं क्रीड़न्ति मन्दभागिनीनां पुनरासां सूर्य्योपासिनीनां दूरात् क्षणमपि प्रेक्षणं दुर्ल्लभं तेन धर्म्मकर्म्ममूढ़ायाः कीटजातेरपि मनुष्यजातिरियं देवपूजापरापि दुर्भगेति द्योतितम् ॥५४॥

अश्रवणिर्वाधिर्य्यं अविलोकनि रान्ध्यं आक्रोशे नञ्यनि रित्यनिः, विन्यास नाम द्वितीयमङ्गमिदम् । यदुक्तं "निर्व्वेदवाक्यव्युत्पत्तिर्विन्यास इति कीर्त्यते" इति ॥५५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा । सखि राधे रात्रिन्दिवं दिव्यलीलया दीव्यसि तथापि कथं निर्व्विद्य खिद्यसे ॥५६॥

ललिता । हला राहे कधं मन्थरा विग्र लक्खीयसि ।

वृन्दा । हैयङ्गवीनमृदुला त्वमतः कथम्वा
हैयङ्गवीनकलसीं चलिता वहन्ती ।
हा मल्लिकार्पणपदं व्यथते शिरस्ते
मूर्द्धन्यमुं मम निधेहि कृपां विधेहि ॥५७॥

राधा । सहि कलसीअ भारो ण मं मन्थरावेदि । पेक्ख भूरि भूसणाणं च्चेअ जाइं णिआरिदाए पसहं अप्पिदाइम् ॥५८॥

विशाखा । हला राहि क्खणं चिट्ठु सुट्ठु उद्धारेमि मण्डणभारम् । (इति यथार्हमुत्तारयति) ॥५९॥

रात्रिन्दिवमित्यादिकं वृन्दावचनं मिथ्या – कल्पितत्वबुद्धया प्रत्युत्तरादानेनावगणितम् ॥५६॥

राधे कथं मन्थरा इव लक्ष्यसे । भारश्रमजनितमेव मान्थर्य्यमनुमिमाना वृन्दाह हैयङ्गवीनेति मल्लिकार्पणस्यापि पदं स्थानं सत् तव शिरो व्यथते कृपां विधेहीति त्वद्दुःखदर्शनमेव मम महद्दुःखं तदपाकुर्व्विति भावः ॥५७॥

कलसस्य भारो न मां मन्थरयति विप्रयज्ञोपयोगित्वेन तत्श्रद्धया उत्साहाधिक्यादिति भावः । गव्यभारशुल्कग्रहणोपाधिकस्य कृष्णकर्त्तृकमन्निरोधस्यात्यभिलषणीयत्वादिति रहस्योद्भवः पश्य भूरिः भूषणानामेव यानि निवारितयापि ललितया प्रसभं हठात् अर्पितानि स्वसौन्दर्य्य–सौकुमार्य्याभ्यां तेष्वरोचकतेति ध्वनिः ॥५८॥

सखि राधे क्षणं तिष्ठ सुष्ठु उद्धारयामि मण्डनभारमुत्तारयामीत्यर्थः ॥५९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा। त्रपते विलोक्य पद्मा ललिते राधां विनाप्यलङ्कारं तदलं मणिमयमण्डनमण्डलरचनाप्रयासेन ॥६०॥

राधा। हला वुन्दे एत्थ जण्णे हेअङ्गवीणोवहारिणीणं हरिणीणेत्ताणं सव्वङ्गारहस्स मण्डणउलस्स मुणिजणादो उवलद्धी सुणीअदि ॥६१॥

वृन्दा। न केवलं मण्डनकुलस्यैवोपलब्धिः किन्तु क्रियारम्भएव निजाभीष्टानामपि। तदेभ्यः प्राञ्जलमञ्जलिः क्रियतां कामदेभ्यः शैलेन्द्रतीर्थेभ्यः। (इति सर्व्वास्तथा कुर्व्वन्ति) ॥६२॥

चम्पकलता। सहि चित्ते अदिचित्ता एसा णिहिलजीअमण्डलीकुण्डआकुलालस्स पुण्डरीअजोणिणो कुण्डेण मण्डिदा गिरिन्दसिहरत्थली डाहिणे रेहदि ॥६३॥

राधाया भूषणपरिधापनं ललितया विपक्षरमणामुखमोटनमात्र तात्पर्य्यकं तच्च तद्विनापि स्वतःसिद्धमित्याह त्रपत इति पद्मा चन्द्रासखी त्रपते स्वसख्यास्तादृशसौन्दर्य्यादर्शनादिति भावः ॥६०॥

अत्र यज्ञे हैयङ्गवीनोपहारिणीनां हरिणीनेत्राणां सर्व्वाङ्गार्हस्य मण्डनकुलस्य मुनिजनादुपलब्धिः श्रूयते तेन प्रकृतिमण्डनकुलस्येदानीमुत्तारमेवोचितं कृपया ब्राह्मणैर्दास्यमानानां अतिसौभाग्यसाधकत्वात् तदानीमेव श्रद्धया धारणेन भारत्वमिति भावः ॥६१॥

क्रियया यज्ञिय-हैयङ्गवीनोपहरणरूपाया आरम्भ एव गमनकाल एवेत्यर्थः। तत्तस्मादेभ्यो ब्रह्मकुण्डादिभ्यः प्राञ्जलं प्रकटं अभीष्टप्राप्त्यन्तरायविघातार्थमपि अञ्जलिः क्रियताम्। घृतकनकघटत्वेन शिरसा नमस्कर्त्तुमशक्यत्वात् अञ्जल्यैव नमश्क्रियतामिति भावः। कामदेभ्य इति एष्वेव स्थानेषु भवतीनामभिलषणीयकामविलासो भावि नातिदुर्ल्लभ इति सूचितम् ॥६२॥

सखि चित्रे अतिचित्रा एषा निखिलजीवमण्डलींकुण्डकाकुला-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रा । सहि ईध ज्जेव्व भत्ताणं वच्छलो हरिराम्र णामा णारा-
यणो वसेदि ॥६४॥

वृन्दा । (पश्य पश्य)

सखि बहुलशिरस्त्वे भूभृतौ चेह साम्य
दधदपि गिरिरञ्चत्येष शेषाद्विशेषम् ।
अघरिपुरयमङ्के मूर्द्धिन यस्योदरे च
प्रणयति रतिलीलामद्भुतां प्रेयसीभिः ॥६५॥

ललिता । (राधामवेक्ष्य संस्कृतेन)

निविड़रुचिनि गण्डग्रावखण्डे गरिष्ठे
सुरभिणि किर दृष्टिं गौरि गोवर्द्धनस्य ।
सखि मृगमदपङ्कैः सुष्ठु यत्रोपविष्ट-
स्त्वदुरसि रसिकेन्द्रः पत्रवल्लीमलेखीत् ॥

चम्पकलता । (जनान्तिकम् । संस्कृतेन)सखि समाकर्ण्यताम् ॥६६॥

लस्य पुण्डरीकयोनेर्ब्रह्मणः कुण्डेन मण्डिता गिरिन्द्रशिखरस्थली-
दक्षिणे राजते । ६३॥

इत एव भक्तानां वत्सलो हरिरायनामा नारायणो वसति ॥६४॥

बहुलशिरस्त्वे प्रचुरफणत्वे बहुशृङ्गत्वे च । अयं अघरिपुः
श्रीकृष्णः पूर्णः तस्य तुला नारायणोऽंश एव अस्य तु अङ्कादौ तस्य
तु भोगेष्वेव उदरे कन्दरादौ तस्य तु उदराद्बहिरेव रतिलीलां तस्य तु
शयनमात्रं प्रणयति प्रीणयति स प्रणयं करोति मात्रं प्रेयसीभिस्तस्य
तु कथञ्चिदेकया पादसम्वाहिकया पद्मयैवेति शेषात् विशेषं अञ्चति
प्राप्नोति तेनैतत्कन्दरादावेवाद्य रतिलीलाभाविनीति सूच्यते ॥६५॥

तत्रासम्भावनानिरासेन राधामाश्वासयितुं पूर्व्ववृत्तां रतिलीलां
स्मारयन्ती ललिताह निविड़ेति किर निक्षिप पत्रवल्लीमलेखीदिति
तथैवाद्यापि लिखिष्यतीति विश्वस्ता भवेति भावः । अन्योन्यमन्त्रणं
यत् स्यात्तज्जानन्ति जनान्तिकम् ॥६६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अयमुपरि परिस्फुरद्वलाकातनिरनुसञ्चलचञ्चलाविलासः ।
अचलशिरसि नोलमण्डपस्य द्विगुणयति द्युतिमम्बुदः स्वधाम्ना ॥६७

ललिता । (सानन्दम्) । चम्पअलदे ण क्खु अम्बुदो पेक्ख, एसो
कण्ठलम्बि विप्फारहारो पीताम्बरो गिरिणिदम्वं आलम्बदि ।
ता पुप्फिदो अम्भाणं मणोरहसाहो ।

राधा । (वृन्दामवेक्ष्य सकम्पं संस्कृतेन) ॥६८॥
उरीकुर्व्वन् गौरीं गिरिशिखरभागम्बररुचिं
जगद्वं शे युञ्जन् मदनघनघूर्णाघुणघटाम् ।
धृतिध्वान्तं भिन्दन्नमृतनिधिरिन्दीवरदृशां
दृशां बन्धुः कोऽयं विधूरिव पुरस्तादुदयते ॥

वृन्दा । सखि राधे समाकर्ण्यताम् ॥६९॥
समस्तजगतीभूवां मृगदृशामभीष्टाशिषः
समर्थमभिपूरणे किमपि दोलयन् दोर्युगम् ।

वलाका वकपङ्क्तिः चञ्चला विद्युत् अम्बुदो मेघ इति क्रमेण हार-पीताम्बर श्रीकृष्णेष्वारोपिताः ॥६७॥

चम्पकलते न खल्वयमम्बुदः पश्य एष कण्ठलम्बिविस्फारितहारः पोताम्बरो गिरिनितम्बमालम्बते । तत्पुष्पितोऽस्माकं मनोरथ-शाखो । विरोधो नाम तृतोयमङ्गमिदम् । यदुक्तम् – भ्रान्तिनाशो विरोधः स्यादिति ॥६८॥

गिरिशिखरभाक् सन् अम्बररुचिं आकाशस्य कान्तिं गौरीं शुक्लां उरीकुर्व्वन् । पक्षे वस्त्रकान्तिं गौरीं पीतां जगदेव वंशस्तत्र मदनघूर्णैव घुनः तत्समूहः पक्षे चन्द्रिकास्पर्शे एव वंशजातौ घुन उत्पद्यते इति लोकप्रसिद्धेः । अत्र मदनघूर्णेत्युन्मादः, धृतिधान्त-मिति चापल्यम्, दृशां बन्धुरित्यौत्सुक्यमिति सञ्चारिभावत्रयम् ॥६९॥

मदनवेदनया उन्मादनमेव व्रत तदेव प्रणयितुं शीलमस्य तेन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय, भरतनिधि, करौंदी वाराणसी-5

असौ कुलजवल्लवीमदनवेदनोन्मादन-
व्रतप्रणयिनोरसा रसिकमौलिरुल्लासते ॥७०॥

राधा । (सविस्मयं संस्कृतेन)

प्रपन्नः पन्थानं हरिरसकृदस्मन्नयनयो-
रपूर्व्वोऽयं पूर्व्वं क्वचिदपि न दृष्टो मधुरिमा ।
प्रतीकेऽप्येकस्य स्फुरति मुहुरङ्गस्य सखि या
श्रियस्तस्याः पातुं लवमपि समर्था न दृगियम् ॥७१॥

वृन्दा । यदा यदा पश्यसि माधवं पुर-
स्तदा तदैवास्य वदस्यपूर्व्वताम् ।
नवः सदा स्यात् किमयं तवाथ वा
रागोन्मदे विस्मयतः किमक्षिणी ॥

(ततः प्रविशति मधुमङ्गल--सुबलार्ज्जुनादिभिरुपास्यमानो नान्दीमुखीमभिपृच्छन् कृष्णः) ॥७२॥

कृष्णः । (सौत्सुक्यम्) ॥

गोवर्द्धन गिरिमुपेत्य कटाक्षवाणान्
कर्णस्फुरन्मणिशिलोपरि संक्ष्णुवाना ।

उरसा वक्षसा इति वक्षःस्थलं दर्शयति ॥७०॥

असकृदनुवारमेव नयनयोः पन्थानं प्रपन्न एव एकस्याप्यङ्गस्य प्रतीके एकस्मिन्नवयवेऽपि या श्रीः स्फुरति तस्याः श्रियः शोभायाः लवं लेशमपि पातुमियं दृङ्मदीया न समर्था तेन तया शोभालव-उत्तरङ्गया उपचितया मुहुर्व्विप्लुतेयं पातुमसमर्था व्याकुलायते इति भावः । अयमनुराग एव सदानुभूतवस्तुनोऽप्यननुभूतत्वमननमयः ॥७१

नवः सदा स्यादिति रागोन्मद इत्याभ्यां तस्य नित्यनवत्वं अस्या अप्यनुरागित्वं पूर्णमेवोक्तम् । अथवेत्यनेनेकस्यापि सम्भवे शश्वत् तथा भानं भवेत् किमुत द्वयोरिति द्योतितम् ॥७२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का भ्रू धनुर्धुवनसूचितलुञ्छनेयं
व्यग्रीकरोत्यहह मामपि सम्भ्रमेण ।।७३।।
(पुनर्निरूप्य) हन्त कथं सैव मदीयहृद्विटङ्कालङ्कारपारावतीयं प्रिया । (इति नान्दीमुखीमभिनन्दन्)
तारश्रिया मूर्च्छितवल्गुरागा विस्तारयन्ती श्रुतिपालिभूषाम् ।
कलाञ्चिता हन्त मयोपलब्धा स्वराधिकेयं परिवादिनीव ।।७४।।

नान्दी । गोउलानन्द तुम्भ पासे चिट्ठन्तीं मां जाव इमाओ ण पेक्खन्ति क्खणं ताव पच्छण्णा होमि इति तथास्थिता ।।७५।।

कर्णे स्फुरन्ती या मणिशिला कुण्डलगता तस्या उपरि संक्षुवानो तेजयन्ती मद्धृदयमेव लक्षीकृत्य व्यद्धुमिति भावः । तत्प्रयोजनं स्वयमेवोन्नयन्नाह भ्रु धनुः कम्पनमात्रेणैव सूचितं लुञ्छनं मत्सर्व्वस्वापहरणं यया सा अतो मद्धैर्य्यधनं प्रत्यक्षमेव वनमध्ये बलाद्धरिष्यन्तीयं वा जनिमत्–फुत्कारशङ्कया प्रथमं बाणांस्तेजयति किञ्च तत्तेजनं दर्शयन्त्येवेयं मामपि सर्व्वजगद्धैर्य्य-सर्व्वस्वहारिणमपि व्यग्रीकरोति तैर्विद्धयन्ती सती किं करिष्यति तन्न जाने इति भावः ।।७३।।

विटङ्कः कपोतपालिका परिवादिनी सप्ततन्त्री वीणेव स्वराधिकेयमुपलब्धा । पक्षे स्वरैः षड़जाद्यैरधिका तारो मुक्ताहारः उच्चशब्दश्च तस्य श्रिया शोभया सम्पत्त्या च मूर्च्छितः वर्द्धितः एकविंशतिमूर्च्छनाप्रापितश्च । वल्गुः शोभनो रागोऽभिलाषो वसन्तादिरागश्च यस्यां सा श्रुतिः पाल्याः कर्णप्रदेशस्य "पालिः कर्णलताग्रे चे"ति मेदिनी । द्वाविंशतिश्रुतिसमूहस्य च भूषां विस्तारयन्ती कलाभिः कलेन मधुरास्फुटध्वनिना च अञ्चिता पूजिता तारश्रिया नयनकनीनिकाशोभया सूचितानुरागा इति वा ।।७८।।

गोकुलानन्द युष्मत्पार्श्वतिष्ठन्तीं मां यावदिमा न प्रेक्ष्यन्ते क्षणं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण:। हन्त सखायस्तूर्णमाध्मायतां भवद्भिर्महाघट्टाधिकाराभिव्यञ्जकं शृङ्गादिवादित्रं मयापि विम्बाधरे वंशी निधेया। (इति सर्व्वे तथा कुर्व्वन्ति)॥

वृन्दा। (स्वगतम्)। कथमेता: केलिमुरलीरवाकर्णनेन विघूर्णित-मुर्द्धानस्तरून्मुहुर्धारयन्ति (इति समन्तादवलोकयन्ती) ॥

वेणोरेष कलस्वनस्तरुलताव्याजृम्भणे दोहदं
सन्ध्यागर्जभर: पिकद्विजकुहुस्वाध्यायपारायणे ।
आभीरेन्दुमुखीस्मरानलशिखोत्सेके सलीलानिलो
राधाधैर्य्यधराधरेन्द्रदमने दम्भोलिरुन्मीलति ॥७६॥

कृष्ण:। (राधायामपाङ्गं निक्षिप्य सानन्दम्)।

वक्त्राम्भोजमुदात्तनर्म्मवचसा सख्यं विनिर्म्मित्सते
मैत्रीं भंगुरवीक्षितेन नयनद्वन्द्वं क्रमादीप्सति ।

तावत् प्रच्छन्ना भवामि स्वीयसूचकता दोषाच्छादनार्थमिति भाव: ॥७५॥

दोहदं औषध-विशेष: । दम्भोलिर्वज्र: । तर्व्वादीनां यथाक्रमं हर्षमौनौत्सुक्यचापल्यानि कुर्व्वन्नपि आकाशादीनां इव पूर्व्व-पूर्व्व-धर्म्माणामुत्तरोत्तरेषु सम्भाराद्राधाया हर्षादीनि चत्वार्य्येव युगपदेव विस्तारयतीति भाव: ॥७६॥

राधाया देहे स्मरबान्धवेन यौवनेन वयसा सह सन्धातुं सन्धि कर्त्तुमिच्छति सति बाल्यवयसाक्रमत उपेक्षमाणत्वेन नि:सहायतया स्थातुमशक्यतया विचार्य प्रबलेन प्रबलसहायेन यौवनेनैवात्मरक्षणार्थं स्वस्मिन्नधिकारं तस्मै दित्सति सतीत्यर्थ: । वक्त्राम्भोजं कर्त्तृ उदात्तेन कृपौदार्य्यमाधुर्य्यादिगुणमयेन नर्म्मवचसा सख्यं स्व-सर्व्वस्वार्पणेन विनिर्म्मातुं इच्छति बाल्यसहचरप्रहसित-बहु-व्यर्थालापेनोपेक्ष्यमाणत्वादिति भाव:। उदात्त: स्वरभेदे वाचान्तरे दया-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लीलामन्दगतेन पादयुगमप्यारिप्सते सङ्क्रमं
राधायाः स्मरबान्धवेन वयसा देहेऽद्य संधित्सति ॥७७॥

राधा । (प्रयत्नादाकारगुप्तिमभिनयन्ती साचिकन्धरमपवार्य्यं संस्कृतेन) ॥७८॥

कुवलययुवतीनां लेहयन्नक्षिभृङ्गैः
कुवलयदललक्ष्मी-लङ्घिमाः स्वाङ्गभासः ।
मदकलकलभेन्द्रोल्लङ्घिलीलातरङ्गः
कवलयति धृतिं मे क्ष्माधरारण्यधूर्त्तः ॥

कृष्णः । (शृङ्गादवरोहणं नाटयन् राधामालोक्य सानन्दम्)॥७९॥

त्यागादि युक्ते चेति मेदनी । तथैव भंगुरवीक्षितेन ऋज्ववलोकनस्य प्रोषितत्वादिति भावः । मैत्रीमीप्सति प्राप्तुमिच्छति आरिप्सते आरब्धमिच्छति लीलामन्दगतेनेति द्रुतचपलस्य सहसा तिरोधानादिति भावः ॥७७॥

अपवार्य्येति अन्यस्य रहस्यकथनं तदनाकर्णितमपवारणम् । यदुक्तं "रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितमि"ति ॥७८॥

कुवलयं भूमण्डलं तत्रत्यानां युवतीनामक्षिण्येव भृङ्गास्तैः स्वाङ्गभासो निजाङ्गशोभा लेहयन् स्वादयन् कीदृशीः कुवलयस्य नीलोत्पलस्य दलानां लक्ष्मीतोऽपि लङ्घिमा मनोहरत्वं यासां ताः । "अनो बहुव्रीहाविति डाप्" । तत्र गतिबुद्धीत्यादिना न कर्म्मत्वं लिहेरास्वादनार्थत्वेऽपि प्रत्यवसानार्थताभावात् प्रत्यवसानस्य गलाधःकरणार्थत्वात् । लेहनस्य तु तदविना भावस्याभावात् यथा गोभिर्वत्सा लेलेह्यमाना अभूवन् । अत्र त्वर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनिनैव तथात्वं वस्तुतस्तु अक्षिपक्षे गलाधःकरणस्य प्रसङ्ग एव नास्ति भृङ्गपक्षेऽपि नीलोत्पलदलशोभानां न तथा करणं किन्तु सौरभ्यवहनमात्रमपि मे धृतिं कवलयति न पुनर्मय्यैव दोष इति भावः ॥७९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थूले राधिकया पयोधरयुगे हारः प्रसादीकृतः
ख्याते वालतया कचे च कुटिले मौलिर्वितीर्णोऽनया ।
विन्यस्तं श्रुतिसेविनोरपि मसीमालिन्यमेवानयो-
रित्यक्ष्नोर्द्वयमीर्षया मृगदृशः सङ्के मुमोचार्जवम् ॥८०॥

ललिता । (अपवार्य्य) । हला राहे ओअरदि एसो हठिल्ल दारहडो वणिज्जा महासत्थवाहणाहो । ता अपेक्खन्तोओ विअ सविसम्भं चलम्भ ॥८१॥

राधा । सहि लहु लहु जाहि जं एसा फुड़िदोवलमण्डलावन्धुरा वसुन्धराधरतड़ी । (इति सदृष्टिक्षेपं परिक्रामति) ८२॥

कृष्ण । सखे सुवल कथमस्मानवमत्य चलितुं प्रवृत्ता एव सलीलम-मूरमूकमञ्जीरा मञ्जुभाषिण्यः । ततस्तूर्णमर्ज्जुनेन सार्द्धममूषां घटस्व व्याघोटनाय ॥८३॥

स्थूले स्थौल्यवति श्लेषेण जड़े । त्रिषु स्थूले जड़ेपि चेत्यमरः । मौलिश्चूड़ामणिः । श्रुतिसेविनोः कर्णपर्य्यन्तगामिनोः श्लेषेण वेदाभ्यासरतोः ॥८०॥

अवतरत्येष हठिलतारभटो वाणिज्यमहासार्थवाहनार्थः तस्मात् अप्रेक्ष्यमाणा इव वयं सविश्रम्भं चलामः । अन्यथाऽस्यावज्ञायां व्यञ्जितायां तां स्वविषयां ज्ञात्वाऽस्मानयनमधिकमुद्वेजयिष्यति इति भावः । इवेति प्रेक्षणस्य तदविज्ञातमात्रत्वस्य विवक्षया ॥८१॥

सखि लघु लघु याहि यदेषा स्फुटितोपलमण्डलीबन्धुरा वसुन्धराधरतटी ॥८२॥

अमूकमञ्जीरा इति महादानि महाराजस्य ममाग्रे वादित्रवादन-पूर्व्वकमासां गमनं स्वमहागर्व्वं मदनादरं च सूचयतीति भावः । व्याघोटनाय परावर्त्तनाय ॥८३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुवलः । (सत्वरं साज्जुंनः परिक्रम्य) । हन्त सगव्वा ग्रो गव्वविक्कअणी ग्रो कहं घट्टचत्वरनाहं ग्रनादरन्ती ग्रो स्वच्छन्दं गच्छन्ति होदी ग्रो । ता वाहुड़िग्र सुट्ठु णं पवोहेन्तु ॥

सर्व्वाः । (प्रकाममश्रुतिमभिनीय सावहेलं चलन्ति) ।

सुवलः । (धावन्नुच्चैः) । हंहो ग्रप्पणो माहाप्पं मा हरेध तूण्णं परावट्ठेध ॥८४॥

सर्व्वाः । (सनिर्वेदमिव परावृत्य) भोः पुट्ठमांसाद कधं तुए परावट्टिदह्म ॥८५॥

सुवलः । पढ़मं दाव क्खोणी विलग्गमत्थग्रा वन्दन्तु महाघट्टदानिन्दं होदी ग्रो । ८६॥

विशाखा । (सस्मितं) किं वन्दणारिहो ण होदि वल्लईन्दनन्दनो । किन्तु लोग्रोत्तरस्स जण्णस्स हेग्रङ्गवीणोवहरणे ग्रारब्धव्वदाणं ग्रह्माणं वम्भणेदरवन्दण भग्रवदीए णिसिद्धम् ॥८७॥

हन्त सगर्व्वा गव्यविक्रयिण्यः कथं घट्टचत्वरनाथं ग्रनाद्रियमानाः । स्वच्छन्दं गच्छन्ति भवत्यः । तस्माद्व्यावृत्त्य सुष्ठु नोऽस्मान् प्रवोधयन्तु ग्रहो ग्रात्मनो माहात्म्यं माहरत तूर्णं परावर्त्तयत ॥८४॥

भोः पृष्ठमांसाद कथं त्वया परावर्त्तिताः स्मः । क्रूराभिधायी पुरुषः पृष्ठमांसाद उच्यते ॥८५॥

प्रथमं तावत् क्षौणीविलग्नमस्तकाः सत्यः वन्दन्तां महाघट्टदानीन्द्रं भवत्यः । ८६॥

किं वन्दनार्हो न भवति वल्लवेन्द्रनन्दनः किन्तु लोकोत्तरस्य यज्ञस्य हैयङ्गवीनोपहरणे ग्रारब्धव्रतानामस्माकं व्राह्मणेतरवन्दनं भगवत्या पौर्णमास्या निषिद्धम् । साध्वसं नाम चतुर्थमङ्गमिदम् । यदुक्तं "मिथ्याख्यानन्तु साध्वसमि"ति ।.८७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्ज्जुनः । विसाहे एसो वुन्दाअणभूविन्दारओ अह्म महादाणन्दो विदाणिं आरद्धव्वदा वट्टदि । ता व्वदिणीहिं व्वदिणोऽस्स वन्दणे दूषणं नत्थि ॥
ललिता । कीदिसं तं व्वदम् ॥८८॥
कृष्णः । (सस्मितम्) नित्यमबलार्ब्बुदद्विजवसनदानं महाव्रतम् ॥८९॥
ललिता । तदो जुत्ता एसा घट्टहिआरिदा । ज इदिसीए महापअवीए समारोहणं विणा णिअ महाव्वदस्स रक्खणं दुक्करम् ॥
कृष्णः । (विहस्य पुरः पश्यन्) सखे मधुमङ्गल श्रूयताम् ॥९०॥
अभ्युक्ष्य निष्कं पतयालुना नुहुः
स्वेदेन निष्कम्पतया व्यवस्थिता ।

एष वृन्दावनभूवृन्दारकोऽस्मन्महादानीन्द्रोऽपि इदानीमारब्धव्रतो वर्त्तते तद्व्रतिनीभिर्व्रतिनो वन्दने दूषणं नास्ति ॥८८॥

नित्यमबलेति अबलेभ्यो वस्त्राद्युपार्जनाऽसमर्थेभ्योऽर्ब्बुदसंख्यविप्रेभ्यो वसनप्रदानम् । पक्षे अबलार्ब्बुदानां दशकोटिसंख्ययुवतीनां द्विजवसनानां ओष्ठाधराणां दानं खण्डनं ओष्ठधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी इति दन्तविप्राण्डजा द्विजा इत्यमरः दो अवखण्डने ॥८९॥

ततो युक्ता एषा घट्टाधिकारिता यत् ईदृश्या महापदव्याः समारोहणं विना निज महाव्रतस्य रक्षणं दुष्करम् । पुरग्रामादौ भव्यजनसमाजे पराङ्गनार्ब्बुदधर्षणस्य दुःशक्यत्वात् इति भावः ॥९०॥

अधरखण्डनश्रवणेनोद्बुद्धस्मरविकारां राधां जानन् तत्सखीस्तथाभूतस्वज्ञानं ज्ञापयन्नपि तदात्वोचितामवहित्थामालम्बमानः पृच्छति । अभ्युक्ष्येति निष्कं पदकं अभ्युक्ष्य पतयालुना पतनशीलेन स्वेदेन तथा निष्कम्पतया स्तम्भेन च विशेषेण अवस्थिता विशिष्टे-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चालिका कुञ्चितलोचना कथं
पञ्चालिकाधर्म्ममवाप राधिका ॥६१॥

मधुमङ्गलः । (कृष्णस्य कर्णे निभृतोक्तिमुद्रामभिनयन्नुच्चैः)
भोः पिअवअस्स दिट्ठिआ वड्ढसे पेक्ख गव्विदसहीसहिदा
सज्झसेन खम्भिदा राही ॥६२॥

वृन्दा । (सस्मितम्) ।
मृगाधिपतिमध्यमः कठिनपीवरक्रोड़भाक्
भुजङ्गमभुजद्वयस्त्वमसि पुण्डरीकेक्षणः ।
अतः कथय साध्वसं न भवतः कथं विन्दता-
मसौ पुरुषकुञ्जर प्रकृतिभीरुरेणेक्षणा ॥६३॥

त्यर्थः । तस्याः औत्सुक्योत्थं जाड्यं जानन्नप्यपह्नुत्य साध्वसत्वं बोधयन्नाह पञ्च आल्यः सख्यः यस्याः सा इति वृन्दाप्येका सखी तया सहैकीकृत्योक्तिः ससहायापि प्रथमं कुञ्चितलोचना भीता ततः पञ्चालिका-धर्म्मं पुत्तलिका-स्वभावं कथं अवाप व्रीड़ोत्थमपि लोचन-कुञ्चनं भयोत्थत्वेन प्रकाशितम् । "पञ्चालिका पुत्रिका स्यादि"त्य-मरः ॥६१॥

निभृताया उक्तेर्मुद्रामेव नतूक्तिमित्यर्थः । तया नु एषा त्वा महादानीन्द्रं वञ्चयित्वा वहुद्रव्याणि नीत्वा गच्छतीति साध्वसादनु-मीयते इति चौरस्य लक्षणमेवैतदिति तत् सखीं ज्ञापयति प्रियवयस्य दिष्ट्या वर्द्धसे इति तया अन्वेषणीयं लक्षणं इयं साध्वसेनैव प्रकटी-करोतीति भावः । यतः सखी सहितापि साध्वसेन स्तम्भिता ॥६२॥

वृन्दा सस्मितमिति तदवहित्था ज्ञानसूचकं स्मितं, मृगाधिपतिः सिंहः, क्रोड़पक्षे वराहः, पुण्डरीकेक्षणः पक्षे व्याघ्रेक्षणः, व्याघ्रेऽपि पुण्डरीको ना इत्यमरः। एणेक्षणेति अस्या दृग् हरिणो सिंहादीन् दृष्ट्वा विभेति तेन च तव मध्याङ्गादि माधुर्य्यमेव एतद्दृशास्वादितमेव तत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता। ललिदापालिदाणं गोआलिआणं कहिंवि भअसद्दो वि कण्णकुहरं ण गदो। तहिं इमस्स गोउल रक्खणव्वदस्स अह्मराअकुमरस्स पुरदो कीदिसं भअं णाम ।६४॥

कृष्ण:। ललामाङ्गि ललिते ललितं ब्रवीषि। तदिमां सखीमण्डलेन सार्द्धं पाण्डुरशिलामध्यास्य समुदाचारमवधारय ॥६५॥

ललिता। गोउलजुअराअ पेक्ख आरोहदि भअवन्तो चण्डमऊहो गअणमण्डलं ता आपुच्छन्तु तुमं तुरिअं जण्णमण्डवोवलम्भणस्स ॥

कृष्ण:। (भ्रुवोराघूर्णेन मधुमङ्गलं व्यापारयति) ॥६६॥

मधुमङ्गल:। ललिदे अज्ज तुह्माहिन्तो सुलुक्कं गेह्निदुं ण क्खु जुत्तम्। जं सङ्गवे हेअङ्गवभारभंगुरमज्झमा ओ अप्पसि-

---

स्वादनोत्थ एवासौ विकार इति द्योतितम् ॥६३॥

ललितापालितानां गोपालिकानां कस्मिन्नपि भयशब्दोऽपि कर्णकुहरं न गत: तत्राप्यस्य गोकुलरक्षणव्रतस्यास्मद्राजकुमारस्य पुरत: कीदृशं भयं नाम ॥६४॥

हे ललामाङ्गि भूषिताङ्गि इति वहुविधभूषणपरिधानस्यैवायं गर्व्व: तद्गर्व्वखण्डनाय मया स्वहस्तेनैव भूषणाण्युत्तारितान्यद्य भविष्यन्तीति भाव:। यद्वा हे ललामाङ्गि आसां राधादीनां तवाङ्गमेव ध्वजभूतं तदद्य तवोत्कर्षाऽसहिष्णुना महादानिना मया शुल्कार्थमेव धर्षितं भविष्यतीति भाव:। "ललामं पुच्छ पुण्ड्राश्व भूषा प्राधान्यकेतुष्वि"त्यमर: ॥६५॥

गोकुलयुवराज पश्य आरोहति भगवान् चण्डमयुखो गगनमण्डलं तस्मादापृच्छेमहि त्वां त्वरितं यज्ञमण्डपोपलम्भनस्य ॥६६॥

ललिते अद्य युष्मत्त: शुल्कं गृहीतुं न खलु युक्तं यत् सङ्गवकाल एव हैयङ्गवीन-भारभर-भंगुर-मध्यमा आत्मस्निग्धा भवत्यो घट्टे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णिद्धा ओ होदी ओ घट्ट आअदुअ वट्टन्ति। ता रित्ततुण दूसण णिवारणात्थं किम्पि थोअं अणुमणिणअ जहसोक्खं जान्तु ॥९७

विशाखा। अम्महे अदिट्ठपुव्वं हि क्खु गोअड्ढणे घट्टदाणम् ॥

कृष्ण:। विशाखे सत्यं व्याहरसि, भवद्विधा खलु कथ द्रक्ष्यन्ति, यदद्यापि पश्यन्त्योऽपि न पश्यन्ति ॥

ललिता। (जनान्तिकम्)। हन्त सही ओ पढ़मं सामघट्टना ज्जेव्व जुत्ता ॥९८॥

सर्व्वा:। (सुट्ठु भणासि)।

ललिता। (सप्रश्रयमभ्युपेत्य)। गोउलाणन्दण एक्कग्गामवासिसु विसुद्धपइदीसु मादिसजनेसु ण जुत्तं किर सुसिलो अस्स सल्लो-अमउलिणो तुह्मादिसस्स पातिउल्लाअरणं ता अणुजाणीहि तुरिअम् ॥९९॥

कृष्ण: (सकारुण्यमिव)हन्त सुकुमारि सुष्ठु निर्व्वंध्नता दुरन्तशासनेन तेनाटवीचक्रवर्त्तिनाऽत्र घोरे घट्टकर्म्मंणि नियुक्तोऽस्मि किमस्वैरी करिष्ये ॥

आगत्य वर्त्तन्ते तस्माद्रिक्तत्वदूषणनिवारणार्थं किमपि अल्पं अनुमन्य यथा सुखं यान्तु अल्पार्थे थोअं शब्द:। अनुमन्य अनुमतिपूर्व्वकं दत्त्वेत्यर्थः ।.९७॥

अहो अदृष्टपूर्व्वं खलु गोवर्द्धने घट्टदानं हन्त सख्य: प्रथमं सामघटना एव युक्ता ॥९८॥

गोकुलानन्द एकग्रामवासिषु विशुद्धप्रकृतिषु मादृशजनेषु न युक्तं किल सुश्लोकस्य सल्लोकमौलेर्युष्मादृशस्य प्रातिकूल्याचरणं तत् अनुजानीहिं त्वरितम् ॥९९॥

हन्तेति अनुकम्पायां हे सुकुमारीति यथा तव अङ्गस्य सौकुमार्य्यं तथा वचनस्यापि किन्तु साम्प्रतं ममाङ्गीकृतस्यास्य घट्टकर्म्म-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाखा । किं क्खु कंसेन ।

कृष्णः । नहि नहि ।

विशाखा । (तदो केण) ।

कृष्णः । क्रीड़ाकटाक्षच्छटानिर्धूतकंसादिना महामन्मथाभिधेन ॥१००॥

ललिता । अम्मो कहिम्पि ण सुणिदो एस महामम्मह णामा चक्कवट्टी ॥१०१॥

मधुमङ्गलः । (साट्टहासम्) । ही ही अच्चरिअं अच्चरिअं महामम्महो वि इमाहिं ण सुणिदो महाकड़ए पदमञ्जरी णाम जस्स राअधाणी महुमुह महाबल विजअ प्पमुहा जसस अमच्चवरा उत्तमारामावलो जस्स विहारपअम् ।

कृष्णः । किं बहुना सन्ततममी कुरङ्ग–भृङ्ग-कोकिलादयोऽपि यस्य निदेशचारिणश्चारतामङ्गी कुरुते ॥१०२॥

णस्तद्वैपरीत्यमेवेत्याह सुष्ठिर्वति सुष्ठु निर्ब्बध्नता इति यस्तस्य निर्ब्बन्धः स केनाप्यन्यथा कर्त्तुमशक्य इति भावः । अस्वैरी अस्वतन्त्रः । किं खलु कंसेन । तदा केन ॥१००॥

अम्मो इति सचकिताश्चर्य्ये अहो कापि न श्रुत एष महामन्मथनामा चक्रवर्त्ती ॥१०१॥

आश्चर्य्यं आश्चर्य्यं महामन्मथोप्याभिर्न श्रुतः महाकटके प्रमदमञ्जरी नाम यस्य राजधानी । मधुमुख–महाबल–विजयप्रमुखा यस्यामात्यवरा उत्तमा रामावली यस्य विहारपदम् । राजपक्षे कटकः सेनासन्निवेशः कन्दर्पपक्षे गोवर्द्धननितम्बः वक्ष्यमाणप्रकारेण स च महामन्मथ कृष्ण एव । अतएव राजपक्षे मधुमुखादयः स्पष्टार्थाः पक्षे मधुशब्दो मुखे आदौ यस्य स मधुमङ्गल इत्यर्थः । महाबल इति महत् सुशब्दयोरैक्यात् सुबल इत्यर्थः । विजय स्पष्टार्थ एव उत्तमा रामावली उपवनश्रेणी पक्षे रामाश्रेणी ॥१०२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चम्पकलता । (साच्छुरितम्) । ललिदे अदो दाणं अपरिहरन्तो वि वइन्दणन्दणो तुए णासुइदव्वो जं परिदो चोरचक्कवट्टिणो चरा चरन्ति ।

कृष्णः । ललिते नीतिज्ञासि तदत्र कुम्भानवरोप्य निरूपयन्तु भवत्यः शुल्ककृत्यम् ।

विशाखा । मोहन घट्टपाङ्गणे कुलङ्गणाणं तिलं वि विलम्बणं विड़म्बणं ज्जेअ ॥१०३॥

चित्रा । (सदाक्षिण्यं) गोउलानन्द तत्तं सुणाहि दिज्जन्तह्मिक अड्डिआमेत्तेवि घट्टदाणे जण्णिअं घिअं असुद्धं होदि त्ति सुणिज्जइ ण उण अह्माणं पञ्च ताम्मिआदाणे का दरदा ॥१०४॥

ललिता । हला राहे इमिणा महाभारेण किलिट्ठासि ता एत्थं घट्टिअं ओदारेहि घड़िअम् । (इति सर्वा घट्टिकावतारणं नाटयन्ति) ॥

कृष्णः । सखे सुबल घट्टस्याद्य प्रथमातिथिरसौ ससुहृज्जना ललिता

स्याच्छुरितं सोत्प्रासस्मितम् । ललिते अतो दानं अपरिहरन्नपि व्रजेन्द्रनन्दनस्त्वया नासूयितव्यः । यत्परितश्चोरचक्रवर्त्तिनश्चराश्चरन्ति । नीतिज्ञासीति । चम्पकलताद्या अपर्य्यालोचितभाषिण्यः नीत्यनभिज्ञा न मत्प्रतिवचनार्हा इति भावः । शुल्कं घट्टादिदेयं वस्तु । मोहन घट्टप्राङ्गणे कुलाङ्गनानां तिलमपि विलम्बनं किल विड़म्बनमेव ॥१०३॥

गोकुलानन्द तत्त्वं शृणु । दीयमाने कपर्द्दिकामात्रेऽपि घट्टाङ्गने याज्ञिकघृतमशुद्ध भवतीति श्रूयते न पुनरस्माकं पञ्चताम्रिकादाने कातरता ताम्रिका ताम्रचतुर्थांशः विंशतिकपर्द्दिकाः । तस्मि अदान इति पाठे कार्षिके ताम्रिके पण इत्यभिधानादशीतिः कपर्द्दिका ॥१०४

सखि राधे महाभारेण क्लिष्टासि तस्मादत्र घटिकां व्याप्य विश्रामार्थं अवतारय घटिकाम् । घट्टशुल्कार्थं एतैर्वेलादेव तारणात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरतमिंह, करौंदी
वाराणसी-5

तदस्याः काममपूर्व्वंमाधुर्य्येण फणिवल्ली-पर्णवीटिका-पञ्चकेन माननमौपयिकम् ।

सुबलः ।(रत्नसंपुटकमुद्घाट्य)ललिदे गेण्ह पञ्च विड़िआ ओ(इत्यग्रे विन्यस्यति)

विशाखा । सुअल अलं तम्बोलेन जं कधिदं च्चेअ व्वदिणीओ अह्मेत्ति ॥१०५॥

ललिता । सुअल किं मे मुहं पेक्खसि । अविसासिणी विसाहा मह्‌ कुप्पन्ती एदं भणादि । "घट्टआलेहिं टग्गवड़िआ पउञ्जीअदि"त्ति पसिद्धी सुणीअदि ; ता अल इमाणं भुअङ्गलदा पल्लवेण ॥१०६॥

मधुमङ्गलः । ललिदे विम्बोट्ठीणं अलं वो तम्बोलेण ता कल्लाणी होहि जं उव्वरिद वींड़िआपञ्चअम् ॥१०७॥

कृष्णः । (ताम्बूलमुपभुज्य चर्व्वितं दित्सन् सभ्रूभ्रमम्) राधे द्विज-

---

श्रमापनोदनमिषेण अस्माभिरेव स्वयमवतारणं समञ्जसमिति भावः । सुवल अलं ताम्बूलेन यत् कथितमेव व्रतिन्यो वयमिति ॥१०५

किं मे मुखं पश्यसि सम्मतिनिर्द्धारणार्थमिति भावः । अविश्वासिनी विशाखा मह्यं कुप्यन्ती इदं भणति व्यञ्जनावृत्त्या कथयति । मह्यं कुप्यन्तीति मदाश्वासेनैव सर्व्वासामत्रागमनादिति भावः । घट्टपालैः ठकवटिकाः प्रयुज्यन्ते इति प्रसिद्धिः श्रूयते । ठकवटिकाः सर्व्वस्वापहारार्थाः मनोदेहेन्द्रियमोहिन्यो गोलिकाः औषधविशेषक्लृप्ताः, तदलमेषां भुजङ्गलतापल्लवेन ॥१०६॥

विम्बोष्ठीनां अलं वस्ताम्बूलेन स्वभावादेवोष्ठरागः ताम्बूलं कदा वा भवतीभिरास्वादितं नास्ति तत्राभ्यास इति भावः । तस्मात् कल्याणी भव यत् उर्व्वरितं वीटिकापञ्चकम् ॥१०७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृतमिदं ताम्बूलामृतमास्वाद्य निरातङ्का निकाममनास्वादितचरीगृंहाण सम्पुटतस्ताम्बूलवीटिकाः ॥१०८॥

ललिता। इमस्स कामुईलक्खोवभोएण सुट्ठु पावणस्स मुहबिम्बस्स जई उग्गारं ण गेण्हिस्सदि मे सही तदो कधं अप्पाणं पुणिस्सदि ॥१०९॥

सुबलः। ललिदे! विवरीदआरिणो अम्हे दिट्ठिआ तुम्हेहिं च्चेअ उवदिट्ठाओ ता दाणि दाणं च्चेअ अणुमण्णिज्जउ ॥११०॥

चम्पकलता। किं तुम्हे वम्हणाओ जं वो अम्हेहिं दाणं किर अणुमन्तव्वम् ॥१११॥

मधुमङ्गलः। भोदि चम्पअलदे। एसो कुलीणो अणूआणो वम्हणो म्हि; ता उअरपुरं दिज्जउ समच्छण्डिअ हेअङ्गवीणम् ॥११२॥

विशाखा। सहि चम्पअलदे! घट्टीच्छलेण एदे उअरम्भरिणो भिक्-

उपभुज्येति तासां विश्वासार्थं द्विजैर्दन्तैर्विप्रैश्च संस्कृतम् ॥१०८॥

अस्य कामुकीलक्षोपभोगेन सुष्ठु पावनस्य मुखविम्बस्य यदि उद्गारं न ग्रहिष्यति मे सखी तदा कथमात्मानं पवित्रयिष्यति ॥१०९॥

ललिते विपरीतकारिणो वयं दिष्ट्या युष्माभिरेवोपदिष्टाः तदिदानीं दानमेवानुमन्यताम्। विपरीतकारिण इति अनादरयोग्यासु आदरदानात् ॥११०॥

किं युयं ब्राह्मणा यद्वो युष्मभ्यं अष्माभिर्दानं किलानुमन्तव्यम् ॥१११॥

भवति चम्पकलते एष कुलिनोऽनुचानः ब्राह्मणोऽस्मि "अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती गुरोस्तु यः" इत्यमरः । तत् उदरपुरं दीयतां समत्स्यण्डिकं हैयङ्गवीणं "मत्यण्डी फाणितं खण्डविकार" इत्यमरः ॥११२॥

सखि चम्पकलते घट्टीच्छलेन एते उदरम्भराः भिक्षन्ति तद्दीयतां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खन्ति ता दिज्जउ एक्का कागिणी ॥११३॥

कृष्णः । सखे परमाद्यून ! महादानिनामस्माकं महापात्रमसि । तदद्य हैयङ्गवीनेन कुक्षिपूर्त्तावपि तव दरिद्रता ॥११४॥

राधा । हला ललिदे ! एदे महादाणिणोत्ति अत्ताणं सलाहन्ति, ता फुड़ं परमुत्तमवण्णाणं वो सव्वुत्तमं पअत्थं दाईस्सन्ति ॥११५॥

कृष्णः । (स्मित्वा) । वरवर्णिनि सत्यं ब्रवीषि तदेतन्निजमहावैभव दास्यामि(इत्यालिङ्गनमुद्रामभिनीय सुबलमालिङ्गते) ॥११६॥

राधा । (सरोमाञ्चमात्मगतं संस्कृतेन)

अपि गुरुपुरस्त्वामुत्सङ्गे निधाय विसङ्कटे
विपुलपुलकोल्लासं स्वैरी परिष्वजते हरिः ।
प्रणयति तव स्कन्धे चासौ भुजं भुजगोपमं
क्व सुबल पुरा सिद्धक्षेत्रे चकथ कियत्तपः ॥११७॥

एकाकाकिणी यथा तथा चनकान् क्रीत्वा गाश्चारयन्तः चर्व्वन्त्विति भावः । काकिणी विंशतिकपर्द्दिकाः ॥११३॥

हे परमाद्युन उदरभरणमात्रैकपरायण । "आद्यूनः स्यादौदरिक" इत्यमरः । महादानीनां महादातृणां पक्षे घट्टदानग्राहिणां महापात्र संप्रदानरूपोऽमात्यश्च ॥११४॥

ललिते एते महादानिन इति आत्मानं श्लाघन्ते तत् स्फुटं परमोत्तमवर्णानां वो युष्माकं सर्व्वोत्तमं पदार्थं दास्यन्ति । परम उत्तमो वर्णो रूपं ब्राह्मणजातिश्च यासां ताभ्य इति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी प्रकृतेः । "वर्णाः स्युर्ब्राह्मणादय" इत्यमरः ॥११५॥

स्मित्वेति वाचिकं स्वयं दूत्यं तस्या अत्यौत्सुक्यविजृम्भितं ज्ञातवानितिभावः । हे वरवर्णिनि पक्षे परमब्रह्मचारिणि । "वर्णिनो ब्रह्मचारिण" इत्यमरः ॥११६॥

विसङ्कटे पृथुनि क्व कियत्तप इति । तत् सिद्धक्षेत्रं तपः परि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(इत्यमर्षमिवाभिनयन्ती भ्रुवौ विभुज्य प्रकाशम्)

ललिदे ! दिट्ठा पइव्वदासु मादिसीसु विदूसग्रदा तुह-
णिउञ्जराग्रस्स ॥११८॥

ललिता । (सापदेश संस्कृतेन) ।

नवमुकुलितां दृष्ट्वाभ्यर्णे रसाललतामितः
कथमिव मुधा धृष्टः कूट भजन्नभिधावसि ।
परिमलवती स्निग्धा चासौ द्विरेफपतिं श्रिता
परिहर कुहूकण्ठात्कण्ठामियं सुलभा न ते ॥११९॥

विशाखा । (संस्कृतेन) ।

ऋजुवृत्तिः किल कुटिले वैगुण्यायैव कल्पते त्वरितम् ।
इति दर्शयन् धनुःस्थो गुणच्युतिं स्फुटमिषुर्याति ॥१२०॥

माणं च सर्व्वैर्दुर्ज्ञेयमेव यतस्तद्विधो भाग्यवानन्यः कोऽपि माभूत् । मद्विधास्तु वह्वय एव कृताल्पसुकृता अत्र वर्त्तन्ते इति भावः । ११७॥

ललिते दृष्टा पतिव्रतासु मादृशीषु विदूषकता तव निकुञ्जराजस्येति त्वमेवानर्थकारिणी अत्रास्मान् बलादनैषीरिति तां प्रत्युपालम्भः ॥११८॥

रसाललतां आम्रलतां कूटं कपटं द्विरेफपतिं श्रिता तेन तवैवेयं भोग्या द्विरेफः को वराक इति वस्त्वर्थः । पक्षे द्विरेफो वर्व्वरेपि चेत्यमरः । अस्याः सर्व्वगुणमण्डितायाः पतिर्व्वर्व्वर एव इयं च विरुद्ध-लक्षणयैव पतिव्रतेति तां प्रत्युपालम्भः । न ते सुलभेति शिरश्चालनार्थेन नञा वस्त्वर्थः । कुहूकण्ठेति दूरतोऽपि कण्ठस्वरश्रवणमात्रेणैव इयं वशीभवति किं पुनरिदानीं दर्शनादिति भावः ॥११९॥

ऋजुवृत्तिरिति शुद्धचरितजनस्य कुटिलजनसङ्गेन वैगुण्यमेव भवति । तदितो वयं शीघ्रं निर्गच्छाम इति भावः । गुणच्युतिपक्षे गुणाच्च्युतिम् ॥१२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रा । हन्त घट्टज्झक्ख! घट्टाहिआरो जइ तुम्हाणं अहिट्ठो तदो बहुजणसंघट्टे जउँणाघट्टे ज्जेअ चत्तरं जुत्तम् ॥१२१॥

चम्पकलता । अइ विसुद्धचित्ते सहि चित्ते! एदे सुलुक्कलक्खेण लुण्ठिदुं ज्जेव्व एत्थ दुग्गवणे चिट्ठन्ति ता विरमेहि ॥१२२॥

कृष्णः । सखे सुबल! मित्रायितं चित्रया । तदद्य गोष्ठस्य गोपुरे घट्ट-चत्वरमुपष्क्रियताम्, यदत्र वनमध्ये पलायन्ते परितश्चपलायत-लोचनाः ॥१२३॥

सुबलः । पिअवअस्स! सच्चं भणासि । पेक्ख सहीणं सहस्सं राहिअं अणुसप्पदि एण्हिं क्खु चउट्ठअं ज्जेव्व ॥१२४॥

राधा । (स्वगतं) पहादे ज्जेअ कुन्दलदाए सद्धं जण्णे पेसिदं मए सहीउलम् ॥१२५॥

मधुमङ्गलः । सुअल! णिच्चिदं आअदाओ विद्धि सहिओ । णहि वसन्तलच्छीए ओदारे सम्वुत्ते कलकण्ठाणं अणुवलम्भो सम्भाविज्जइ ॥१२६॥

हन्त घट्टाध्यक्ष घट्टाधिकारो यदि युष्माकं अभीष्टः तदा बहुजन-संघट्टे यमुनाघट्ट एव चत्वरं युक्तम् ॥१२१॥

अयि विशुद्धचित्ते सखि चित्रे एते शुल्कलक्षेण लुण्ठतमेव तत्र दुर्गवने तिष्ठन्ति तद्विरम ॥१२२॥

मित्रायितं मित्रवदाचरितं हितोपदेशात् ॥१२३॥

प्रियवयस्य सत्य भणसि पश्य सखीनां सहस्रं राधिकामनु-सर्पति, इदानीं खलु चतुष्टयमेव ॥१२४॥

प्रभात एव कुन्दलतया सार्द्धं यज्ञे प्रेषितं मया सखीकुलं तेन यज्ञ-समाधानं प्रवृत्तमेव अतो निश्चिन्ततयैवात्र विलम्बनीयमिति चेतस्या-श्वासो व्यञ्जितः ॥१२५॥

सुबल निश्चितं आगता विद्धि सखीः नहि वसन्तलक्ष्म्या अवतारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाखा। (सस्मितम्) तदो ताणं सहीणं चलणलच्छीहिं तुम्हाणं घट्टो असोअत्तणं लद्धूण उप्फुल्लिस्सदि ॥१२७॥

कृष्णः। (सव्यतो विलोक्य सानन्दम्) कथं काञ्चनमरीचिरोचिषां सहचरीणां सञ्चयेन ब्रह्मकुण्डस्य पुरो भूमिरलंक्रियते ॥१२८॥

ललिता। (स्मित्वा) "जगद्धनमयं लुब्धाः कामुका कामिनीमयम्" त्ति पोराणवअणस्स अत्थो पच्चक्खीकीदो।

मधुमङ्गलः। भो पिअवअस्स! असच्चं ण हसिज्जइ ललिदाए, जं कमलकिञ्जक्करेणुपुञ्जपिञ्जरिदा ओ हंसी ओ तुए सही ओ किज्जन्ति ॥१२९॥

कृष्णः। (सस्मितम्) किमस्माकमनागतचिन्तया? सम्प्रति घट्ट-शुल्कस्य पुण्याहं प्रवर्त्तताम् ॥१३०॥

सम्वृत्ते कलकण्ठीनां अनुपलम्भः सम्भाव्यते ॥१२६॥

ततः तासां सखीनां चरणलक्ष्मीभिर्युष्माकं घट्टोऽशोकत्वं लब्धा उत्फुल्लीष्यति सुलक्षणयुवतीनां चरणाघातेनाशोकः प्रफुल्ली भवतीति प्रसिद्धिः। तेन च ता अत्रागत्य घट्टे पादाघातमेव कृत्यागमिष्यन्ति। ततश्च भवन्तोऽपि परमाश्रयणीयं निजोपजीव्यभूतं घट्टमिमं प्राप्त-तत्पदाघातत्वेन जातभाग्यातिरेकं सफलं मंस्यन्ते इति स्वपक्षाणां गर्व्वसूचितः ॥१२७॥

ततश्च तत्श्रवणमात्रेणैव ताः सखीरपि निरुद्धय विजिहीर्षोः श्रीकृष्णस्य सद्य एव तदाकारचित्तवृत्तिरभूदित्याह सव्यतो विलो-क्येति ॥१२८॥

जगदित्यस्य "नारायणमयं धीराः पश्यन्ति परमार्थिनः" इति परार्द्धं इति पौराणवचनस्यार्थः प्रत्यक्षीकृतः। भोः वयस्य असत्यं न हस्यते ललितया यत् कमलकिञ्जल्करेणुपुञ्जपिञ्जरिताः हंस्यस्त्वया सख्यः क्रियन्ते ॥१२९॥

सस्मितमिति औत्सुक्यातिरेकोत्या स्वचित्तवृत्तिस्तदाकारता सत्यैव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा । (भ्रुवं विक्षिप्य) तिल्लोक्के को क्खु सो महासाहसिग्राणं सिहामणी चिट्ठदि जो क्खु गोउलवालिग्राणं दाणं गेण्हिदुं वाग्रामेत्तेण वि मणाउं वाहरिस्सदि तत्थवि सूरोवासिग्राणं इमाणम् ॥१३१॥

कृष्णः । (स्मितं कृत्वा) लक्ष्मीमुखि ! दाक्षिण्यतः शिक्षयामि ॥१३२॥ निरवद्यमुद्योतमाने तस्मिन्नुद्यानचक्रवर्त्तिनि साम्प्रतममाम्प्रतमीदृशं मृगदृशां गिरामौर्ज्जित्यम् ॥१३३॥

राधा । सहि ललिदे ! धिट्ठघट्टाग्रालघट्टणे पड़िदासि ता ण जुत्तं एत्थ कुण्ठत्तणम् ॥१३४॥

कृष्णः । सखे सुबल! श्रुतमस्याः कठोरारभटीगरिष्ठं गिरां विस्फूर्ज्जितम् । (इत्यर्द्धनिःसृतां रसनां संदश्य) कष्टं भो कष्टम् । दीव्य-

---

सद्यो भूदिति भावः । किमस्माकमित्यनेन शुल्कार्थिनो मम शुल्कहेतुकैव तद्दिदृक्षा नत्वन्यार्थेत्यवहित्था सूचिता ॥१३०॥

त्रैलोक्ये कः साहसिकानां शिखामणिस्तिष्ठति यः खलु गोकुलबालिकानां दानं ग्रहीतुं वाङ्मात्रेणापि मनाग्व्याहरिष्यति तत्रापि सूर्य्योपासिकानामासम् ॥१३१॥

स्मितं कृत्वेति तद्वचनप्राखर्य्यमाधुरास्वादनहर्षोत्थमत्र स्मितम्, लक्ष्मीर्मुखे यस्या इत्यहो मुखे कोमलाक्षरमयी लक्ष्मीर्निःसरति विरुद्धलक्षणया हे कटुभाषिणीत्यर्थः । दाक्षिण्यत इति एतत्कटूक्त्यनुरूपफलदानसमर्थेनापि मया दाक्षिण्यादेव सोढ़मिति भावः ॥१३२

उद्योतमाने चक्रवर्त्तिनीति सद्यः शास्तिसामर्थ्ययुक्तं तत्रापि मृगीदृशां स्त्रीणाम् । तत्रापि ईदृशं श्रौर्ज्जित्यं प्राबल्यं असाम्प्रतं श्रयोग्यम् ॥१३३॥

ललिते धृष्टघट्टपालघट्टने पतितासि तन्न युक्तमत्र कुण्ठत्वं घट्टनं चालनम् ॥१३४॥

यौवनगर्व्वेति तर्हि स एव गर्व्वः प्रथमं मया खण्डयितुं योग्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर्व्वाचीन-यौवनगर्व्व-सर्व्वस्वया वाढ़मेतया महाघट्टसाम्राज्य-पट्टलब्धाभिषेकोऽहं चत्वरिकाणां चक्रवर्त्ती घट्टीपालः कृतोऽस्मि ॥१३५॥

ललिता। (संस्कृतेन)।

सच्छिद्रा लघुवंशजा च मुरली यष्टिः कठोरा भृशं
स्तब्धात्मा च विषाणिकातिमलिना वक्रस्वरूपापि च ।
आभिः सन्ततमुत्तमाभिरभितो यस्याङ्गमालिङ्ग्यते
घट्टीपालतया भयानकवने वृत्तिर्न तस्याद्भुता ॥१३६॥

सुवलः। हन्त दुम्मद-मुहराओ ! ण क्खु तुम्हेहिं हेलिदुं जुत्तो एसो महादाणस्स अहीसो ।

राधा। होदु अहीसो तदो वि किम् (इति संस्कृतेन) ॥१३७॥

इति भावः ॥१३५॥

त्वं चेच्चक्रवर्त्ती महाराजोसि तथैव तवानुरूपा महाराज्ञ्योऽपि दृश्यन्ते इति ता गणयन्त्याह सच्छिद्रेति विषाणिका शृङ्गिका आभिरालिङ्ग्यते इति युगपदेव सदैव सर्व्वलोकदृग्गोचर एव इति प्रथमं तासामेव यौवनगर्व्वमवतारयेति भावः। ताः सदैव सावधाना वञ्चयित्वा पराङ्गनास्वाभिलाषस्तव निष्फल इति भावः। अयं धर्षणेनेति वक्ष्यमाण-राधास्वाभियोगपूर्व्वरङ्गो ललितया तन्निष्ट एव निर्म्मितः। तस्य चक्रवर्त्तिनो घट्टीपालतया इति भयानकवन इति सुन्दरीजनस्वच्छन्दाकर्षणलोभात् राजन्वति देशे तु तदशक्यत्वादिति भावः ॥१३६॥

हन्त दुर्म्मदमुखराः न खलु युष्माभिर्हेलितुं युक्त एष महादानस्याधीशः । भवतु अधीशस्ततोऽपि किं श्लेषेण भवतु अहीशः भुजङ्गश्रेष्ठ इति ॥१३७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्षणे नकुलस्त्रीणां भुजङ्गेशः क्षमः कथम् ।
यद्वेता दशनैरेष दशन्नाप्नोति मङ्गलम् ।।१३८।।

कृष्णः । भंगुरापाङ्गि ! हृदयङ्गममात्थ ततः समाकर्ण्य (इति सहर्षम्)

अप्रौढ़-द्विजराजराजदलिका लब्धा विभूतिं रुचां
नव्यामात्मनि कृष्णवर्त्मविलसद्दृष्टिर्विशाखाञ्चिता ।
कन्दर्पस्य विदग्धतां विदधती नेत्राञ्चलस्य त्विषा
त्वं राधे शिवमूर्त्तिरित्युरसि मां भोगीन्द्रमङ्गीकुरु ।।१३९।।

नकुलस्त्रियो नकुल्य एव तासां धर्षणे भुजङ्गेशः महासर्पः पक्षे महाकामुकः कुलस्त्रीणां धर्षणेन प्रयोजनेन क्षमः आसां धर्षणार्थं कथ समर्थं इत्यर्थः । पक्षे धर्षणे कथं न क्षमोऽपि तु क्षम एव यत यस्मात् एता नकुलीः कुलस्त्रीश्च दशनैर्दंशन् सन् मङ्गलं भद्रं नाप्नोति ताभिरपि प्रतिदंशनसम्भवात् लोकनिन्दा राजदण्डादिभ्यश्चेति पक्षद्वयम् । तृतीयपक्षे एना कुलस्त्रीरेव दशन् संभुञ्जान एव मङ्गलं सुखमयं आप्नोति नत्वन्याः तासु रागाल्पत्वादिति भावः ।।१३८।।

हृदयङ्गममिति अर्थत्रयानुमोदनज्ञापनम् । अप्रौढ़द्विजराजेन अर्द्धचन्द्रेण राजत् अलिकं ललाटं यस्याः सा, पक्षे अप्रौढ़-द्विजराजो द्विकलचन्द्र इव राजदलिकं यस्याः सा । आत्मनि देहे विभूतिं लब्धा प्राप्ता, विभूतीं कीदृशीं रुचां कान्तीनां नव्यां भूतिरपि देहगता अतिसुन्दरीत्यर्थः । पक्षे रुचां कान्तानां नव्यां नवोनां विभूतिं सम्पत्तिं प्राप्ता । "भूतिर्भस्मनि सम्पदोत्य"मरः । कृष्णवर्त्मा वह्निस्तद्रूपकृष्णस्य वर्त्मनि च विलसन्ती दृष्टिर्यस्याः सा । कृष्णेन वर्त्मना पक्ष्मला इति वा "वर्त्मनेत्रच्छदेऽध्वनि" इत्यमरः । विशाखेन कार्त्तिकेयेन । विशाखया स्वसख्या च अञ्चिता पूजिता युक्ता च । विदग्धतां विशेषेण दग्धतां, पक्षे वैदग्ध्याम् । शिवस्य शम्भोर्मूर्त्तिः,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता । कण्ह! इमाए कूड़वाउराए दुग्गहा ललिदा धुत्तहरिणो त्ति तुम्ह-सहअरा वि सुट्ठु जाणेन्ति ता मुञ्च विहल धिट्ठ गण्ठिलत्तणम् ॥१४०॥

कृष्ण: । (सुवलमवलोकते) ।

सुवल: । ललिदे! एदे कहं किर ण जाणिस्सन्ति, जेहिं तहिं गन्धहलीहरणे णिक्कुड़सामिणा लुण्ठिदमणिमण्डलाणं सूरोवासिआण काणं वि महापहाराण दन्तसिहरपन्तिसु तिण-गुच्छमरगएहिं आरब्धा का वि अच्चरिआ लच्छी पच्छक्खीकिदा ॥१४१॥

कृष्ण: । सखे ! विस्मृतं तत् कुतूहलं, पुनरत्र काण्डे सुष्ठु भवता स्मारितम् ।

पक्षे मङ्गलमूर्त्ति: भोगीन्द्रं भुजङ्गेशं, पक्षे भोक्तॄणामिन्द्रम् ॥१३९॥

"कृष्ण अनया कूटवागुरया दुर्ग्रहा ललिता धूर्त्तहरिणीति युष्मत् सहचरा अपि सुष्ठु जानन्ति तन्मुञ्च विफलं धृष्टग्रन्थिलत्वम्" । तेनाद्याहं ललितैव राधाप्राप्तिप्रतिवन्धिनी तस्या: मया पाल्यमानत्वादिति भाव: । तव सहचरा अपीत्यनेन पूर्व्वपूर्व्ववृत्तस्वप्राखर्य्यस्मारणेन तानपि भीषयति ॥१४०॥

सुवलमवलोकत इति अलीकवाग्विलासेनापि सम्प्रतीयं पराजीयतामिताङ्गितविज्ञापनम् । "ललिते एते कथं न ज्ञास्यन्ति यैस्तदा गन्धफलीहरणे निष्कुटस्वामिना लुण्ठितमणिमण्डलानां सूर्य्योपासिकानां कासामपि महाप्रभावानां दन्तशिखरेषु तृणगुच्छमरकतै: आरब्धा कापि आश्चर्य्यलक्ष्मी: प्रत्यक्षीकृता" । गन्धफली चम्पक: । महाप्रभावानामिति विरुद्धलक्षणया दन्ता एव शिखराणि पक्वदाड़िमवीजाभमाणिक्यानि ॥१४१॥

काण्डे अवसरे जैनदीक्षामिति नग्नीकरणं लक्ष्यते अनुजगृहिरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्मिन्नद्रौ कति न हि मया हन्त हारादिवित्तं
हारं हारं हरिणनयना ग्राहिता जैनदीक्षाम् ।
याः काकूक्तिस्थगितवदनाः पत्रदानेन दीना-
स्तूर्णं दूरादनुजगृहिरे प्रौढ़वल्लीसखिभिः ॥१४२॥

विशाखा । अलं इमिणा अलीअ-दप्प-डिण्डिमाड़म्बरेण ।

ललिता । सहि विसाहे ! हन्त हन्त, कल्ले पच्चुताणग्घमणिकञ्चन-सञ्चअकिरणोदञ्चिदाए राहिए कञ्चुलिआए उल्लुञ्चणवुत्तन्तं सहीजणे अज्जाए विण्णावेदुं पउत्ते मुहमज्झणिक्खित्त-तज्जणी-सिहरस्स सुरिन्दगन्धव्वणामं अधीरं पुणो पुणो वाहरन्तस्स कस्स वि दप्पसोण्डस्स महापअण्डसस सा का वि चाडु-गण्ठिदा कण्ठकाअली कं वा जणं ण क्खु कारुण्णेण ओण्णिदवदी ? ॥१४३॥

अनुगृहीता ॥१४२॥

"अलं अनेन अलोकदर्पडिण्डिमाड़म्बरेण" । "सखि विशाखे हन्त हन्त कल्ये प्रच्युतानर्घमणिकाञ्चनसञ्चयकिरणोदञ्चिताया राधायाः कञ्चुलिकायाः उल्लूञ्चनवृत्तान्तं सखीजने आर्यायै विज्ञापयितुं प्रवृत्ते सति मुखमध्यनिक्षिप्ततर्ज्जनीशिखरस्य सुरेन्द्रगन्धर्व्वनाम अधीरं पुनः पुनर्व्याहरतः कस्यापि दर्पशौण्डस्य महाप्रचण्डस्य सा कापि चाटुग्रथिता कण्ठकाकली कं वा जनं न खलु कारुण्येनाद्रितवती" । सुरेन्द्रगन्धर्व्वनामा हाहा इति । दर्पशौण्डस्येत्यादि निरुद्धलक्षणया शौण्डा मत्तः । कञ्चुलिकाया उल्लूञ्चनेति तन्मात्र साहसं कृष्णेन कृतं, जैनदीक्षा किन्तु अलीकगर्व्वगाम्भीर्य्यमेवेति ध्वनितम् । अत्र मणिकाञ्चनसञ्चयकिरणेत्यादिकं शुल्कमात्रग्रहणार्थकत्वज्ञापनया आर्य्या समाधानमिति कं वा जनं न कारुण्येनाद्रितवतीति तेन कृपयार्द्रिभिरस्माभिरेव तस्या अग्रे तत्समाधानमपि कृतम् । अन्यथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुबलः। दुल्लहा एत्थ सा अज्जा कण्टअाडई, तो लुक्कणे वि किंपि
ओट्टम्भणं पेक्खामि ॥१४४॥

चम्पकलता। विजअदु सो ललिदाणुहावभक्करो, जो क्खु तक्करविक्कमं
कुण्ठेदि ॥१४५॥

वृन्दा। (कृष्णमवलोक्य) कपर्द्दमपि काणं, तवात्र दुरवापम्।
यदुग्रतरकर्म्मा, कुमार ललितासौ ॥१४६॥

कृष्णः। वृन्दे! विपक्षतामासादयन्ती स्थाने गोपिकापक्षाच्चल-
सञ्चारिणी संवृत्तासि। भवतु, पश्याद्य मे चञ्चलवल्लवीरसाल-
वल्लीभ्यः शुल्ककुट्मल-ग्रहणे पुंस्कोकिलताकेलिवैदग्धीम् ॥१४७॥

राधा। सहि वुन्दे! णिवारीअदु परस्स-ग्गहाहिणिवेसो अप्पणो
वणप्पिओ। दाणिं दुम्मुह-सिलीमुहपालिदाहिं रसालवल्लीहिं

न जाने किं फलं तदा अदास्यतेति भावः। समर्पणं नाम पञ्चममङ्ग-
मिदम्। यदुक्तं-"उपालम्भवचः कोपपीड़येहसमर्पण"मिति ॥१४३॥

"दुर्ल्लभा अत्र सा आर्य्या कण्टकाटवी" जटिलेत्यर्थः। "तत्त-
स्मात् लुक्कनेऽपि किमप्यवष्टम्भनं न पश्यामि" ॥१४४॥

"विजयतां सललितानुभावभास्करः यः खलु तस्करविक्रमं
कुण्ठयति"। ललिताया अनुभावः प्राखय्यजनित-प्रभाव एव
भास्करः श्लेषेण च ललितोऽनुभावो यस्य तथाविधः ॥१४५॥

काणं सच्छिद्रं तवेति कपर्द्दापेक्षया सम्बन्धषष्ठी। हे कुमार युव-
राज! "युवराजस्तु कुमार" इत्यमरः। कुमारललिताख्यं
छन्दश्च ॥१४६॥

स्थानं युक्तम्। "युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने" इत्यमरः। पश्याद्य
मे इति तत् साहाय्यं विनाभूतस्यापि इति भावः ॥१४७॥

"सखि वृन्दे निवार्य्यतां परस्व ग्रहाभिनिवेशी आत्मनो वन-
प्रियः"। वनप्रियः कोकिलः कृष्णश्च। 'इदानीं दुम्मुख-शिलीमुख-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पल्लग्रहत्थेण पल्लत्थो भविग्र णग्रमालिग्रा मल्ली ग्रो तुम्ह-सही-
ग्रो मा हासेदु एसो ॥१४८॥

कृष्णः । (सखेल स्मितम्) घट्टशुल्कप्रदानाय गुहातिथ्यग्रहाय वा ।
स्पृहा ते हेमगौराङ्गि गिरस्तां गोचरीकुरु ॥
(राधा सेर्ष्यमवज्ञां नाटयन्ती तूष्णीं तिष्ठति ।) ॥१४९॥

कृष्णः । ग्ररविन्दहशामपश्चिमा, त्वमपूर्व्वा वहुरूपलोलया ।
कपटोद्घाटनाददक्षिणा, न कथं भवितास्यनुत्तरा ? ॥१५०॥

पालिताभिः रसालवल्लीभिः पल्लवहस्तेन पर्य्यस्तो भूत्वा नवमालिका मल्लीर्युष्मत् सखीर्महोत्सवयतु एषः" । दुर्मुख-शिलोमुखाः द्विरेफपर्ति श्रितेति पूर्व्वोक्तवत् कटुभाषिणः स्व स्व पतय एव श्लेषेण शिलीमुखाः शरा इति रसालवल्ली वैरिणः शरा इव ग्रस्मद्द्रोहिण एव ते ततश्च विरुद्धलक्षणयैव तैर्वयं पालिता भवाम इति स्वाभियोगो व्यञ्जितः । "ग्रलिवाणौ शिलीमुखावि"त्यमरः । पल्लवहस्तेनेति । नहि पल्लवचलनमात्रेण कोकिलः शङ्कते, कृष्णपक्षे युवतीनां वाम्यकृतहस्तवारणं न किञ्चित्करमेव प्रत्युतं प्रेयसः सुखायैव तदिति नवमालिकामाल्य स्रग्विन्यः प्रगल्भाः सख्यः उल्लासिता एव भविष्यन्ति नतु वारयिष्यन्ति इति स्वाभियोगः ॥१४८॥

विदिताकूत ग्राह घट्टेति-प्रकटार्थे प्रथमे गुहेति द्वितीयार्थे प्रत्युक्तिस्तां स्पृहां गिरो गोचरीकुर्व्विति ग्रभिधयैव स्पष्टं कथय ग्रलं व्यञ्जनयेति तस्या अत्यौत्सुक्य-निर्धौतशालीनत्व प्रकटीकृत्य तां ह्रेपयामास । सेर्षमवज्ञामिति-स्वधाष्टय-प्रकटीकरणात् तुष्णीमिनि लज्जाजनितमेव ॥१४९॥

ततश्च स्वेनैव निर्व्वचनीकृतत्वं तस्या मत्वा लब्धविजयो हृष्यन्नाह ग्ररविन्देति ग्रपश्चिमा ग्रन्यूना श्रेष्टत्यर्थः । ग्रपूर्व्वा ग्रद्भुतचमत्काराभिधायिनी इति पूर्व्वार्द्धेन परमोत्कर्षमुक्त्वा पराजयप्राप्ति-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नान्दीमुखी । (मन्दंमन्दपश्रित्य) णाअरिन्द ! भअवदी सन्दिसदि ।

कृष्ण: । नान्दीमुखि ! सत्वरमादेदय, किमाज्ञापयति तत्रभवती ॥१५१॥

नान्दीमुखी । एसा भणादि, "राहीपमुहा ओ अम्ह-वालिआ ओ अज्ज हेअङ्गवीण घेत्तूण जण्णे गमिस्सन्ति ; ता इमाणं घट्ट-दाणे अणुउलेण होदव्वं सुहंजुणा ।"

कृष्ण: । (प्रमोदमिवाभिनय) मूर्द्धनि गृहीतोऽयं महाप्रसाद: । सखे मधुमङ्गल ! सुष्ठु मधुरं खलु मिहिरोपासिकानां किशोरीणां हैयङ्गवीनमिति गोकुले गरीयसी प्रसिद्धिः । ततः समुचितोऽपि प्रतिटङ्कं हेमटङ्कत्रये स्फुटमेकटङ्कनिष्ठटङ्केन गणय शुल्कवित्तानि, यदमुषु भगवत्याः पक्षपातिता ॥१५२॥

मधुमङ्गल: । पिअवअस्स !

टङ्कैश्चतुर्भिः कषः स्यात्तैश्चतुर्भिर्भवेत् पलम् ।
भवेत्तुला पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥

कारणमपकर्षमुत्तरार्द्धेन आह–कपटानां उत्कर्षेण घाटनाद्धेतोरदक्षिणा असरला च । अतः कथं वा अनुत्तरा अनुत्तमा न भवितासि असारल्येनोत्तमत्वापगमादिति भावः । श्लेषेण अपश्चिमा अपूर्वा अदक्षिणेति दिक् त्रितयत्वाभावादेव अनुत्तरा चतुर्थी दिगपि भवितुं न युक्तासि अनुत्तरा प्रत्युत्तरदानासमर्थेति युक्तमेवेति श्लेषोत्थ-ध्वनिः ॥१५०॥

नान्दीति घट्टशुल्कप्रदानायेति श्रुत्वा तद्व्यवस्थामुपपादयितुं अत्रागमने प्राप्तावसरेति भावः ॥१५१॥

"राधाप्रमुखा अस्मद्बालिका अद्य हैयङ्गवीनं गृहीत्वा यज्ञे गमिष्यन्ति तदेतासां घट्टदाने अनुकूलेन भवितव्य शुभंयुना" । शुभयुस्तु शुभान्वित इत्यमरः ॥१५२॥

टङ्कैरिति एक कृष्णला परिमिता रक्तिका भवति, पञ्चभिस्ता-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्ति गणणावेइणो भणन्ति । एसो उणो राहिआदिणो पच्चेअं महाभारो, जं ललिदाए अप्पणा मुहेण भणिदं "हला, इमिणा महाभारेण किलिट्ठासि" त्ति ॥१५३॥

कृष्ण: । (स्मितं कृत्वा) ततस्ततः ?

मधुमङ्गल: । भाराणं पञ्चासेण महाभारो भणिज्जई; अदो जेव्व पञ्चाणं गोइआण हेअङ्गवणेहिं टङ्काण असीदिलक्खाइं होन्ति ; परं वि घट्टआल-वट्टण-णिव्वाहणस्स टङ्कलक्खच-उक्कं मया वड्ढिदम् ।·१५४॥

कृष्ण: । सखे ! रसलुब्ध ! वर्द्धितमिति मृषोक्तम् । नूनमुत्कोचरोचनया गणने संक्षिप्तिरेवाचरिता, यदत्र भवद्गणनया हेमटङ्काणां चतुरशीतिलक्षमात्रं सिद्धम् ॥१५५॥

भिर्माषः । शास्त्रीयव्यावहारिको माषस्तु दशरक्तिकः न गृहीतः । तदानीं शास्त्रीयस्यैव व्यावहारिकत्वात् । ततश्चतुर्भिर्माषैष्टङ्कः स च अशीतिरक्तिकापरिमितसुवर्णमुद्रा चतुर्थांशः कर्षः सुवर्णमुद्राऽपर-पर्य्यायः । तैश्चतुर्भिः पलं तच्च षोड़शटङ्काः पलानां शतं तुला सा च षोड़शशतानि टङ्काः । विंशतिस्तुला भारः स च द्वात्रिंशत्सहस्राणि टङ्का "इति गणनावेदिनो भणन्ति । एष पुनः राधिकादेः प्रत्येकं महाभारः यत् ललितया आत्मनो मुखेन भणितम्" । पूर्व्वं भाराव-तरणसमय इत्यर्थः । "अनेन महाभारेण क्लिष्टासीति" ॥१५३॥

स्मितमत्र तच्चातुर्य्यश्लाघासूचकम् । "भाराणां पञ्चाशता महाभारो भण्यते स च षोड़शलक्षाणि टङ्काः । अतएव पञ्चानां गोपिकानां हैयङ्गवीनैः टङ्कानां अशीतिलक्षाणि भवन्ति परमपि घट्टपालवर्त्तननिर्व्वाहणाय टङ्कलक्षचतुष्कं मया वर्द्धितं" एवं च मिलित्वा चतुरशीतिलक्षाणि टङ्का गणिताः ॥१५४॥

उत्कोचरोचनयेति घट्टपालवर्त्तनस्य राजचतुर्थांशत्वेन नाय्यत्वात् । विंशतौ लक्षेषु वर्द्धयितव्येषु लक्ष चतुष्टयमात्रं त्वया वर्द्धितं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(मधुमङ्गलः कृष्णस्य कर्णे मुखं विन्यस्य कथनमुद्रां चाभिनीय किमप्यकथयन्निव विश्लिष्यति ।) ॥१५६॥

कृष्णः (सस्मितम्) आं विज्ञात विज्ञातम् ; सम्यगाचरितम्, तदत्र गणितवित्तानि यथा झटित्यमूर्घट्टचत्वरे कूटयन्ति तथोद्यमः क्रियताम् ॥१५७॥

चित्रा । दाणिन्द ! जइ पञ्च-गग्गरिआणं सुलुक्कं च्चेअ चउरसीदि-लक्खप्पमाणं सवुत्तं, तदो ण जाणे मोल्लं वा केत्तिअम् ॥१५८॥

कृष्णः । चित्रे ! मैवं ब्रवीः । कथमन्यथा दीर्घदर्शिनो याजकास्ते निर्भरमनर्घाणि विश्राणयन्ति मणिमण्डनानि ? ॥१५९॥

नान्दीमुखी । पुक्खरिक्खण ! ण दुक्करं क्खु इमाणं एत्थ चउर-सीदि-लक्खाणं दाणं ; ता अणुकम्पिअ किंपि समाहाणं चिन्तेहि ॥१६०॥

अपराणि षोड़शलक्षाणि एताभ्यः किञ्चिन्मात्र नवनीतप्राप्त्याशया अपलपितान्येवेति भावः ॥१५५॥

कृष्णस्य कर्णे मुखं विन्यस्येत्यनेन ललिताद्याः सखीरेव समभ्यूहयति राजस्वरूपाष्टङ्का राज्ञः कृते त्वया ग्राह्या एव आत्मवर्त्तनार्थं त्वया निर्जनवने नागरेण टङ्काः कथं ग्राह्याः किं त्वायत्यां तदर्थमासामेकतरैव स्वाच्छन्द्येनोपादेया अतएव मया लक्षचतुष्टयं यद्वर्द्धितं तत् सुबलाद्यर्थमेव न त्वदर्थं भवतीति ॥१५६॥

अतएव सस्मितमिति तं प्रति प्रसन्नतालक्षणस्मितं ललितादिभिरभ्यूहितम् ॥१५७॥

"दानान्द्र यदि पञ्चगर्गरिकाणां शुल्कमेव चतुरशीतिलक्ष प्रमाणं संवृत्तं ततो न जाने मूल्यं वा कियत्" ॥१५८॥

विश्राणयन्ति ददति विश्राणनं वितरणमित्यमरः ॥१५९॥

"पुष्करेक्षण न दुष्करं खलु एतासां अत्र चतुरशीतिलक्षाणां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुमङ्गलः । पिअवअस्स ! णान्दोमुहीए सुत्तिदं एक्केक्कसो चउरसो-दिलक्खजाअजादरूवेहिन्तो भुईट्ठं वरिट्ठरूवा ओ होन्ति इमाओ ॥१६१॥

(इत्यर्द्धोक्ते स्मित्वा मुखं व्यावर्त्तयति ।)

कृष्णः । सखे ! सम्यगाकलितम्, तेनात्र काप्येकतरा गृह्यतामिति नान्दीमुख्याः शिक्षाचातुरी ॥१६२॥

ललिता (सोत्प्रासस्मितम्) एद क्खु मणोरहमेत्तेण दक्खा भक्खणं अदक्खस्स लोलुवकीरजुआणस्स ॥१६३॥

दानं तत् अनुकलय्य किमपि समाधानं चिन्तय" । दुष्करमित्यनेन तासां परमाढचत्वयशः प्रख्यापनया तासु स्वपक्षपातो ज्ञापितः । स च तासां दानव्यवहारो वाह्यः अभिलषितवस्तुऽन्यन्तरेतु वास्तव एव ॥१६०॥

"प्रियवयस्य नान्दीमुख्या सूत्रितमिति" सूत्रं कृतमित्यर्थः । मया तु तद्वृत्तिक्रियते इति अवधीयतामित्याह "एक्केति एकैकश्चतुर-शीतिलक्षजीवजातरूपेभ्यो भूयिष्ठं वरिष्ठरूपा भवन्ति इमाः" । चतुरशीतिलक्षाणि यानि जीवानि परमद्युतिमयानि जातरूपाणि स्वर्णानि तेभ्यो वरिष्ठरूपाः इत्यर्थः । यद्वा जीविकारूपाणि जात-रूपाणि स्वर्णानि तेभ्यो वरिष्ठरूपाः । पक्षे चतुरशीतिलक्षाणि जीवानां जातानि जातयस्तेषां रूपेभ्यः सौन्दर्य्येभ्यः वरिष्ठसौन्द-र्य्याः ॥१६१॥

मुखं व्यावर्त्तयति इति । मया वृत्तिमात्रं कृतं वाक्यार्थतात्पर्य्य-रूपमुदाहरणन्तु त्वयैव कथ्यतां मया तु आभ्यो लज्जा-संकोचाभ्यां कथयितुमशक्यत्वादिति भावः ॥१६२।

"एतत् खलु मनोरथमात्रेण द्राक्षाभक्षणं अदक्षस्य लोलुपकीर-यूनः" ॥१६३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण:। श्रिया नातीव तारतम्यवतीष्वप्येतासु ललिता-जीवातुरेव राजीवलोचनेयं मह्यमभिरोचते।

वृन्दा। निकुञ्जयुवराज ! निन्हुतमणिमण्डलेयं राधा ; तदेषा भूरिभूषणभूषिता ललितैव शुल्ककार्य्याय पर्य्याप्नोति ॥१६४॥

कृष्ण:। सेयं मुग्धे शिखरदशना पद्मरागाधरौष्ठी
राजन्मुक्तास्मितमधुरिमा चन्द्रकान्तास्यविम्बा।
उद्दीप्तेन्द्रोपल-कचरुचि: पश्य हाराधिकेति
त्यक्तुं युक्ता न किल तरुणी रत्नमालामहिष्ठा॥

(इति राधामनुसर्पति)

राधा। (लीलया साध्वसातिरेकमभिनयन्ती) सहि विसाहे ! परित्ताहि, परित्ताहि। (इति सभ्रूभङ्गमपसर्पति।) ॥१६५॥

विशाखा। भो दुव्वारवारण ! इमाए दुल्ललिदाए ललिदाए महावारीए अदिक्कमे संवुत्ते व्वेअ चम्पअलदादि-वेड्ढिदाए अमिअसरसीए विगाहणं दे सुलहम् ॥१६६॥

निह्नुतमणिमण्डला इत्यनेन राजस्वार्थं द्रव्यमात्रमेव त्वया गृहीतुं व्यवसीयते नत्वन्यथेति तस्मिन् पक्षपातो व्यञ्जित: ॥१६४॥

तरुणीरत्नानां युवतीश्रेष्ठानां मालासु पङ्क्तिषु महिष्ठा महत्तमा "रत्न: स्वजातिश्रेष्ठे चे" त्यमर:। पक्षे इयं रत्नमाला मणिश्रेणी कीदृशी तरुणी अतिनिर्दोषकान्तिमतीत्यर्थ:। यद्वा इयं तरुणी रत्नामालाभिर्महिष्ठा। रत्नान्येव विवृणोति शिखरेत्यादिना। "पक्वदाड़िमवीजाभं माणिक्यं शिखरं विदुरि"त्यभिधानात्तादृशमाणिक्यान्येव दन्ततया तस्यां तिष्ठन्तीत्यर्थ:। एवं सर्व्वत्र व्याख्येयम्। हीति विस्मये राधिका इति तरुणीपक्षे हीरै: हीरकैरधिका ॥१६५॥

"भो दुर्व्वारिवारण अस्या दुर्ल्ललिताया ललिताया महावार्य्या अतिक्रमे संवृत्ते एव चम्पकलतादि वेष्टिताया अमृतसरस्या विगाहनं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता । हंहो कुम्भसम्भग्र-प्पिअगिरिन्दसिन्धुर ! एसा ण क्खु जुत्ता अदिभूमी ॥१६७॥

वृन्दा । (अपवार्य्य) सखि ललिते ! चाटुभिरभ्यर्थमानासि, मनागद्य तूष्णीं भव । पश्यामि भावोद्भासितामनयोर्व्याविहासीम् ।.१६८॥

कृष्णः । सद्मनर्द्दिनि ! किं पलायसे शुल्कमप्रदाय ? दुर्ल्लभा ते पदादपि पदान्तरगतिः ॥१६९॥

राधा । किं अम्हे वणिज्जजोविआओ, जं घट्टआलादो तुअत्तो भएण पलाइस्सम्ह ? ॥१७०॥

कृष्णः । साधु साधु, क्षणं स्थिरीभव, यावदेष ते पयोधरोपरि विलक्षितां नक्षत्रमालामपहर्त्तुं कल्यतामासादयामि ॥१७१॥

ते सुलभम्" । हे वारण हस्तिन् दुर्ल्लंलिताया दुरतिक्रमणीयायाः । "वारी तु गजबन्धनी"त्यमरः ॥१६६॥

"हंहो कुम्भसम्भवप्रियगिरीन्द्रसिन्धुर एषा न खलु युक्ता अतिभूमिः" । कुम्भसम्भवोऽगस्त्यः तस्य प्रियो गिरिन्द्रो विन्ध्यः तस्य सिन्धुर हे तत्रत्य मत्तहस्तिन्नित्यर्थः । विन्ध्यो यथा मर्य्यदातिक्रम्य सूर्य्यमपि निरुरोध तथैव त्वमपि राधां निरुणत्सीत्यर्थः । अतिभूमिरत्तिक्रमः पक्षे सकोचः ॥१६७॥

भावैरीर्षागर्व्वहर्षादिभिरुद्भाषितां व्यावहासीं परस्परनर्म्मोक्तिचेष्टामित्यर्थः ॥१६८॥

हे सद्मनर्द्दिनि हे गेहनर्द्दिनि ललिताद्याश्रयबलमात्रमवलम्ब्यैव स्वतो दुर्ब्बलापि मुधाटोपमात्रेणैव नर्द्दसीत्यर्थः ॥१६९॥

"किं वयं वाणिज्यजोविकाः यद्घट्टपालात् त्वत्तो भयेन पलायिष्यामहे" । वाणिज्यमेव आजीविका वार्त्ता यासां ताः ॥१७०॥

पयोधरोपरि मेघोपरि स्तनोपरि च । नक्षत्रमालां उडुश्रेणीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा। एसा सुदीहतमा तामसी सामा ; ता कुदो कल्लस्स अब्भुग्गमा सङ्काबि ॥१७२॥

कृष्ण:। (स्मितं कृत्वा) प्रोल्लसच्चण्डकरे प्रफुल्लपुण्डरीकेक्षणे विस्फुरति हारिततारोरुहारा स्खलिततमिस्रवसना तामसो श्यामा स्वयमेव सदा पलायते ॥१७३॥

राधा। हन्त सूर ! राहुत्थाणे ण क्खु चण्डअरस्स चण्डिमा ॥१७४॥

कृष्ण:। पश्य, दुर्विषहतायुतोऽयं चक्रलक्ष्मा ; कथं तदुत्थानं सम्भाव्यते ? ॥१७५॥

मुक्तामालाश्च। "सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैरि"त्यमरः। अपहर्त्तुं निर्व्वापयितुं आक्रष्टुञ्च कल्यतां समर्थतां प्रातःकालत्वञ्च। प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्य ऊषः प्रत्यूषसी अपीति। कल्यौ सज्जनिरामयौ इति चामरः ॥१७१॥

"एषा सुदीर्घतमा तामसीं श्यामा तत् कुतः कल्यस्याभ्युद्गमाशङ्कापि"। सुदीर्घतमा तामसी कृष्णपक्षीया रात्री। 'श्यामा स्यात् शारिवा निशेति विश्वः'। पक्षे अतिदीर्घतया प्राप्तुं प्रमातुं चाशक्येत्यर्थः। तामसी कोपवती श्यामा मल्लक्षणा नायिका अतः कल्यस्य समर्थस्यापि ॥१७२॥

प्रोल्लसच्चण्डकरे प्रोद्यत्सूर्य्ये। पक्षे प्रोल्लसन्तौ चण्डौ करौ पाणी यस्य तस्मिन्, प्रफुल्लानि पुण्डरीकानां कमलानां ईक्षणाति नेत्राणि यस्मात् तस्मिन्। "शीतकाले भवेदुष्णी ग्रीष्मकाले च शीतला। पद्मगन्धिमुखं यस्याः सा श्यामा परिकीर्त्तिता" ॥ पक्षे फुल्लकमललोचने मयि विस्फुरति सति तारा नक्षत्राणि मुक्तामालाश्च तमिस्ररूपं वसनं पक्षे नीलवस्त्रञ्च ॥१७३॥

"हे सूर राहूत्थाने न खलु चण्डकरस्य चण्डिमा तेजः" सद्य एव उपरागेण तस्य तेजो ह्रासात्। पक्षे हे सूर वीर राधोत्थाने न चण्डस्य करस्य ॥१७४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा । (विहस्य) हन्त, फुक्कारदुव्विसेण हदाजुद चक्कलक्खणणा-अरणाअ-मोहदाईणं विसाणं महासारं किति उल्लासेसि ? तुमं गब्भरं गदुअ मुरलिआ-णाईणीं चुम्बेहि ॥१७६॥

कृष्ण: । शुल्कनागरि ! तथ्यमेव नागरनाग: सुप्रतीकोऽयं यत् पद्मि-नीनां व: करहाटकमाक्रोष्टुकामो महासारं विषाणमुल्ला-सयति ॥ ७७॥

राधा । पउमिणीए वराड़अस्स वि अप्पदाणं जाणीहि ॥१७८॥

कृष्ण: । (स्मित्वा) कामिनि ! वराटकयापि किमात्मदानं कर्त्तुमुद्यतासि, यदयमर्थग्रहिलचक्रवर्त्ती नाङ्गनाभिस्तुष्यति? १७६

दुर्विषहता दुःसहत्वं तेन युक्तोऽयं चक्रलक्ष्मा रेखामयचिह्नधारी इति दक्षिणकरतलं दर्शयति । तदुत्थानं तस्य राहोरुत्थानं चक्रदर्श-नात् स विभेतीत्यर्थ: ॥ १७५॥

विहस्येति तद्वाक्यस्यार्थान्तरकरणाय सरस्वती साहाय्यमेव सूच-यति । "हन्त फुत्कारदुर्विषेण हतायुतचक्रलक्षणनागरनागमोहदा-यिनं विषाणं महासारं किमिति उल्लासयसि त्वं गह्वरं गत्वा मुरलिकानागिनीं चुम्ब" । चक्रलक्षणफणचिह्नधारि नगरसम्बन्धि महासर्प:, महान्तं आसारं धारासम्पातम् ॥१७६॥

नागरनाग: नागरश्रेष्ठ: सुप्रतीक: शोभनाङ्ग: । 'अङ्ग प्रति-कोऽवयव' इत्यमर: । पक्षे सुप्रतीको दिग्गज: । 'गजेऽपि नाग-मात-ङ्गावि'त्यमर: । पद्मिनीनां कमलिनीनां पक्षे अङ्गनानां । 'करहाट: शिफाकन्द' इत्यमर: । पक्षे करयोर्हाटकं स्वर्णकङ्कणम् । विषाण दन्तं पक्षे शृङ्गम् । 'विषाण पशुशृङ्गेभदन्तयोरि'त्यमर: ॥१७७॥

"पद्मिन्या वराटकस्यापि अप्रदानं जानीहि" । वराटको वीज-कोष: पक्षे कपर्द्दक: ॥१७८।

तद्वाक्ये प्राकृतस्यार्थान्तरे प्रत्युवाच कामिनीति स्वमुखेनैव तव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा । (सोत्प्रासं विहस्य) हन्त कूड़घट्टमण्डलाहण्डल ! पसीद पसीद । सुलुक्ककिदे सग्रं च्चेअ कारुण्णेण गेण्ह इमं जणम् ॥१८०॥

कृष्णः (स्फुटं विहस्य) चण्डि ! स्वार्थपण्डितासि, यदुपहासमुद्रयैव कृता काकुभङ्गिभरेण भवत्या वास्तवे पर्य्यवसाय्यते । ततस्तथ्यमाकर्णय ॥१८१॥

गव्यभारभरभुग्नकन्धरां, त्वद्विधां विधुरगात्रि मद्विधः ।

स्प्रष्टुमप्यहह लज्जते पदा, दैन्यमाचर न हासदम्भतः ॥१८२॥

राधा । (स्मित्वा) इम च्चेअ महाविड़म्बणे वि किज्जन्तम्मि सुट्ठु–सक्कारवुद्धिए दप्पुद्धुरदा णाम भणीअदि ॥१८३॥

सिङ्गारोइददामा, विअक्खणो होसि सव्वदो भद्द ।

कलिदे जम्बुलउड़े, पसादमणणेण जं फुल्लो ॥ (सर्वाः सशब्द हसन्ति)

कृष्णः । सम्प्रति वाणी विश्राम्यतु, पाणीहीरकहारं हरताम् ॥१८४॥

प्रार्थनादिति भावः । वराटअस्सेत्यस्य वराटायेत्यर्थः । पप्पदानमित्यस्यात्मदानम् ॥१७९॥

शुल्ककृते स्वयमेव कारुण्येन गृहाण इमं जनमिति विरुद्धलक्षणया काका उक्तिः ॥१८०॥

स्फुटं विहस्येति गव्यभारेति विवक्षितश्लोकार्थस्मरणात् । वास्तवे तु न पुनरत्यन्ततिरस्कृतवाच्यो ध्वनिरयमिति ॥१८१॥

पदा चरणेन किं पुनः पाणिना। हासदम्भतः उपहासच्छलात् ॥ ८२

"इयमेव महाविड़म्बनेऽपि क्रियमाणे सति सुष्ठु सत्कारबुद्धया दर्पोद्धुरता नाम भण्यते" ॥१८३॥

"शृङ्गारोपितदामा विलक्षणो भवसि सर्व्वतो भद्र । कलिते जम्बुलगुड़े प्रसादमननेन यत् फुल्लः" । हे भद्र बलीवर्द्द । 'उक्षा भद्रबलीवर्द्द' इत्यमरः । जम्बुले क्लेदविरसे गुड़े कलिते दत्ते सति मम महानादरोऽयं कृत इति मत्वा फुल्लः पक्षे मस्तकार्पितमाल्यः अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा । पाणिपल्लग्रस्स कुदो वज्जाणं प्फंसणे साहसम् ? ता अलं मुहाडोवेण । एसा तुम्हाणं पेक्खन्ताणं चलिदम्हि ॥१८५॥

कृष्ण: । सुदीर्घकुन्तलपक्षासि, तत. स्फुटमुड्डीय गमिष्यसि ॥१८३॥

राधा । सव्वदाहिसारिग्रासहस्स-सेग्रारद ! णाहं सारी ज उड्डी-ग्रस्सम् ॥१८७॥

कृष्ण: । लोलाक्षदायभजना,-दष्टापदमभिधृतासि पुर: ।
इति शारी भवसि त्वं, शृङ्खलयिष्याम्यतो भवतीम् ॥
(इति पाणिमाधातुमिच्छति ।) ॥१८८॥

राधा । हद्धो हद्धी ! णूणं एसो महामम्महस्स सेग्राए पहावो, जं पइव्वदाप्फसे पापादो दे भग्र णत्थि ॥१८६॥

सव्वंतोमङ्गल–शृङ्गारोचितदामा भवसि तथापि जम्बुसम्बन्धिनि लगुड़े गवां पालनार्थं कलिते सत्येव त्वं फुल्लः । तच्चरितं विड़म्बन-मेव ग्रादररूपतया मन्यसे इत्यर्थः ॥१८४॥

"पाणिपल्लवस्य कुतो वज्राणां स्पर्शने साहसं तदलं मुखाटोपेन, एषा युष्माकं प्रेक्षमाणानां चलितास्मि" ॥१८५॥

सुदीर्घाः कुन्तला एव पक्षा यस्याः सा पक्षे कुन्तलपक्षः केश-समूहः ।"पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात् पर"इत्यमरः ॥१८६

"सर्व्वदाभिसारिकासहस्रमेवारत नाहं शारी यत् उड्डयिष्ये" । भाषाश्लेषेण ग्रभिसारिकासहस्रसेवारत हे वनलम्पट इत्यर्थः ॥१८७॥

लोलौ ग्रक्षौ पाशकौ तयोर्दायभजनात् ग्रष्टापदं शारिपट्टमभि-लक्ष्यीकृत्य धृतासि । 'ग्रष्टापदं शारिफलमि'त्यमरः । पक्षे लोलाक्षस्य चपलनेत्रस्य मम शुल्करूपदायभजनात् हेतोरष्टापद कनकम् । चतुर-शीतिलक्षटङ्कानभिलक्ष्यीकृत्य शृङ्खलयिष्यामि । 'शारिबन्धेऽपि शृङ्खल' इत्यमरः । पक्षे बाहुपाशाभ्यामित्यर्थात् ॥१८८॥

"नूनमेष महामन्मथस्य सेवायाः प्रभावः यत् पतिव्रतास्पर्शे पापात्ते भयं नास्ति" ॥१८६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण: (स्मित्वा) भाविनि ! सत्य त्वमुत्कोपपतौ बद्धव्रतासि, अतस्तवोरु–सेवायामभिलाषुकोऽस्मि ॥१६०॥

राधा । (सप्रणयरोषम्) वङ्कविदण्डा-पण्डिद ! विरमेहि । कुलङ्गणाप्फसण क्खु अच्चाहिदप्पदं होदि । ?

कृष्ण: । कुलीनम्मन्ये ! किमहमकुलीनो, यदद्य भवत्यास्तनुस्पर्शोऽपि मेऽनौचितौ ?

राधा । कुलीणजणाणं किर एव्वं चरिदं, जं णिज्जणवणे परवणि-दाणं णिरुन्धणेण एदं विड़म्बणम् ?

कृष्ण: । "कामिनि ! परा त्वं वनितासि" इति वनेऽत्र मन्यसे, तेन नितरां वितराद्य घट्टदानम् ।

राधा । मोहण ! जधा तुम्हादिसेण तक्कीयदि, तधा एसो जणो ण होदि ; ता एत्थ भम्मन्तभमुअङ्गजुअल–णच्चणेण अहितुण्डि-अदालोलाड़म्बरेहिं अलं, दुल्लहा दे एत्थ सुलुक्कभिक्खा ॥१६१॥

कृष्ण: । अयि सुकले वरमधुना, शुल्कं त्वां दातुमुद्यतां प्रेक्ष्य ।
परमोत्सवचटुलेयं, कुरुते भ्रु नर्त्तकी नृत्यम् ॥१६२॥

स्मृत्वेति स्वस्पर्शशङ्कोत्थेन साध्वसेन स्तोभात् तस्याः श्लिष्ट-कथनाशक्तिमवधार्य्येति भावः । उत्कोपे उत्कटकोपवति पत्यौ । पक्षे उत्के उत्सुके उपपतौ मयि । यद्वा उत्का त्वं उपपतौ उर्व्वी श्रेष्ठसेवा उर्व्वोः सेवा चेति रहस्यप्रार्थना भङ्गी ॥१६०॥

"हे वक्रवितण्डापण्डित विरम । कुलाङ्गनास्पर्शनं खलु अत्या-हितप्रद भवति" "कुलीनजनानां किल एवं चरितं यत निर्जनवने परवनितानां निरोधेन इदं विड़म्बनम्" । अतएव मोहनेति वाम्योक्ता हर्षगर्व्वावहित्था । "मोहन यथा त्वादृशेन तर्क्यते तथा एष जनो न भवति । तदत्र भ्रमद्भ्रूभुजङ्गयुगलनर्त्तनेनाहितुण्डिकता लीला-ड़म्बरैरलं दुर्ल्लभा तेऽत्र शुल्कभिक्षा" । 'व्यालग्राह्यहितुण्डिक' इत्यमरः ॥१६१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा । (संस्कृतेन)

लोहमय्यलघुकृष्णावर्त्मन:, स्तम्भिनी प्रतिकृतिः स्फुरत्यसौ ।
यत्र यान्ति कुहकस्य बन्ध्यतां, भूरिभोगभरितस्य चाशिषः ॥१६३

कृष्णः । प्रतिमास्यद्भुता राधे बहुलोहमयी ध्रुवम् ।
ततः स्वयंग्रहाश्लेषं चुम्बके मय्युरीकुरु ॥

राधा । (मनाक् परावृत्य)अपेहि अपेहि । (आर्त्तस्वरम्)मा धरेहि ।

कृष्णः । लक्षैश्चतुरशीत्या हि शुल्कैर्विनिमयं गताम् ।
न यौवतशिखारत्नं कुतस्त्वां धारयाम्यहम् ?

(इति दिधीर्षुः प्रसर्पति)

राधा । (ससम्भ्रममभिनीय साचि विचलन्ती) ॥१६४॥
ललिदे ! तुमं किं क्खु कुदूहलं पेक्खसि ?

नान्दीमुखी । सहि राहे! अलं इमिणा सुट्ठुकुट्टमिदेण । किंत्ति पलायिस्ससि ?

ललिता (पुरः परिक्रम्य) ॥१६५॥

अयि सुकले दानशीले 'सुकलो दातृभोक्तरी'त्यभिधानात् पक्षे शोभनफणावति वरं शुल्कं पक्षे शोभनकलेवरम् ॥१६२॥

असौ मल्लक्षणा कान्ता लोहमयी प्रतिकृतिः कनकप्रतिमा 'सर्व्वञ्च तैजसं लौहमि'त्यमरः । श्लेषभङ्ग्या हर्षजातोत्थं स्वाङ्गस्तम्भभारं दर्शयति । कृष्णवर्त्मा वह्निः कृष्णाश्रयणीयोपायश्च यत् प्रतिमायां कुहकस्य सर्पविशेषस्य आशीषो दंष्ट्राः बन्ध्यतां यान्ति । पक्षे कुहकस्य कपटिनः आशीषो वाञ्छा भोगः फणाः भोगश्च ॥१६३॥

प्रतिमासीति स्पष्टं पक्षे मासि मासि अत्यद्भुता नित्यनवीना बहुल ऊहो वितर्कस्तन्मयी चुम्बके मणौ पक्षे चुम्बनकर्त्तरि । अपेहि अपेहि आर्त्तस्वरं माधारय पक्षे मा मां धारय ॥१६४॥

"ललिते त्वं किं खलु कौतुहलं पश्यसि" । "अलं अनेन कुट्ट-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जईवि दुल्ललिदसीलाणं लुण्ठआणं तुम्हाण दाणगणणापलावं ण क्खु अम्हे कण्णपेरन्ते वि अप्पम्ह, तहवि किंपि भणिदुकामम्हि !

कृष्ण: । कठिने ! कामं भण्यताम् ॥१९६॥

ललिता । (संस्कृतेन)

अमूर्व्रजमृगेक्षणाश्चतुरशीतिलक्षाधिका:
प्रतिस्वमिति कीर्त्तितं सवयसा तवैवामुना ।
इहापि भुवि विश्रुता प्रियसखी महार्घेत्यसौ
कथं तदपि साहसी शठ जिघृक्षुरेनामसि ॥१९७॥

कृष्ण: । (स्वगतम्) वाढं निर्व्वचनीकृतास्मि । सुबल ! केयं गभीरधर्म्मापि ध्वनिघोरणी विदूरत्वादस्फुटेव प्रसरन्ती मामुच्चालयति ? (इति सुबलस्य कर्णे लगति ।) ॥१९८॥

सुबल: । एसो कोलाहलस्स प्पहवं विण्णादुं चलिदोम्हि । (इति निष्क्रान्त:) ॥१९९॥

मितेन किमिति पलायिष्यसि" ॥१९५॥

तयोर्वाक्चातुर्य्यसुधाम्बुनिधौ चिरं निमज्ज्य पुन: सखी प्रार्थितसाहाय्या ललिता साटोपमाह "यद्यपि दुर्ल्ललितशीलानां लुण्ठकानां युष्माकं दानगणनाप्रलापं न खलु वयं कर्णप्रान्तेऽप्यर्पयामस्तथापि किमपि भणितुकामास्मि" ॥१९६॥

सवयसा मधुमङ्गलेन पूर्व्वं चतुरशीति जीवजात्यादीना प्रतीस्वं प्रत्येकं इहापि आसु मध्ये इत्यर्थ: ॥१९७॥

सव्याजत्मुकर्णो भवन्निति झटिति प्रतिवचनाशक्त्या ललिता वाक्यानवधानमभिनयति । कर्णे लगतीति । यद्यसौ महासैन्यसंमर्द्दो भवति तदा तत्र गत्वा सर्व्वमेव राजानमावेद्य मयि शासनपत्रिकामानीयतामिति ता: समभ्युहयति ॥१९८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण: । कठोरभाषिणि ललिते ! भवतु भवत्याः सखी चतुरशीति-लक्षाधिका, तथापि कोटिं नातिक्रमिष्यत्येव । ततः परैरपि कलालक्षैस्त्वामवश्यं नागरचन्द्रोऽयं योजयिष्यति ॥२००॥

राधा । णन्दीमुहि ! भअवदीए णिदेसस्स पड़िवालणं साहु संवुत्तं, जं कोडिगुणीभुदं ज्जेअ घट्टदाणम् ॥२०१॥

नान्दीमुखी । सहि राहे ! कहं पड़िवालणं ण संवुत्तं, जं सुलुक्कस्स तिहा ओ गेण्हीअदि ? ॥२०२॥

(प्रविश्य सवयस्यः)

सुवलः । पिअवअस्स ! णिअवाहिणी-णिग्घोस-वहिरीकिद-दिसामण्डला विजेन्ति उज्जाणचक्कवट्टिसीहा ओ ।

कृष्णः । प्रियवयस्य उज्ज्वल ! नूनं लेखहारोऽसि चक्रवर्त्तिनाम् ॥२०३

उज्ज्वलः । अधइम् । महाभट्टारअस्स महाघट्टाहिआरे एसो लेहो ।

(इति कृष्णकरे केतकीकोरकपत्रमर्पयति ।)

"एष कोलाहलस्य प्रभावं विज्ञातुं चलितोऽस्मि" ॥१६६॥

ततो मनसि विभाव्य प्राप्ततदनुरूपोत्तरो ललितामाह कठोरेति कलालक्षैः षोड़शलक्षैरिति अशीतिलक्षपरिमितस्य चतुर्थांशो घट्ट-पालेन न्यायतो लक्ष्यत एवेति भावः । योजयिष्यतीति त्वामपि शुल्कान्तःपातयिष्यति पक्षे चन्द्रस्य स्वाभिः षोड़शभिः कलाभिः योजनं आत्मसात्कार एव ॥२००॥

"नान्दीमुखि भगवत्या निदेशस्य प्रतिपालनं साधु संवृत्तं, यत् कोटिगुणीभूतमेव घट्टदानम्" ॥२०१॥

"सखि राधे कथं प्रतिपालनं न सम्वृत्तम् । यत् शुल्कस्य त्रिभागो गृह्यते" समुचितेऽपि प्रतिटङ्कं हेमटङ्कत्रये स्फुटमेकटङ्कनिष्टङ्कनेन गणयेत्युक्तत्वात् ॥२०२॥

"प्रियवयस्य निजवाहिनी निर्घोषवधिरीकृतदिङ्मण्डला विज-यन्ते उद्यानचक्रवर्त्तिसिंहाः" ॥२०३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा । नागरेन्द्र ! वयमप्याकर्णयितुमिच्छामो वर्णदूतम्, तन्मुख-बन्धमुत्सृज्य कार्य्यमेव समुच्चार्य्यताम् ।

कृष्णः । (स्पष्टं वाचयति) ॥२०४॥

पाण्डित्यं चण्डधाम्नः परिचरणविधौ प्राप्य गूढोरुगर्व्वाः
कुर्व्वाणा घट्टघातं घटितनिकृतयः सुभ्रुवो विभ्रमन्ति ।
कर्त्तव्यस्तासु यत्नः पटिमपरिचयादप्रमत्तैर्भवद्भि-
र्द्राघिष्ठं छद्म दृष्ट्वा किमपि शतगुणस्तत्र शुल्को विधेयः ॥२०५॥

नान्दीमुखी । दाणिन्द ! पइदिविसुद्धाणं इमाणं कुदो कूडलेस-सिक्खाहिलासो वि ? ॥२०६॥

कृष्णः । तथाप्यवश्यमनुष्ठेयमिति कान्ताराधिराजस्य तस्य महाशासनम् । हन्त चित्रमिदम् यदेतत् सम्यगनिवृत्त–शैशवानामप्यमूषां निर्भरमुच्छूनमुरः समीक्षते । कथं वा वराम्बरसंवृतादपि वक्षसः काञ्चनमय्यो मयूखवीचयः सञ्चरन्ति ? ॥२०७॥

(राधा साभ्यसूयं तिरो दृगन्तं पातयति ।)

कृष्णः । (सकौतुकमात्मगतम् ।)

पटोन्नमनलीलया पुलकवृन्दमारुन्धती
स्मितन्त्वधरचातुरीपरिचयेन गान्धर्व्विका ।

"अथ किं महाभट्टारकस्य महाघट्टाधिकारे एंव लेखः" ॥२०४॥

घटितनिकृतयः कृतशाठ्याः'कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यमि'त्यमरः २०५

"दानीन्द्र प्रकृतिविशुद्धानां आसां कुतः कूटलेशशिक्षाभिलाषोऽपि" । कूटं कपटम् ॥२०६॥

वराम्बरसंवृतादिति सम्बरणान्यथानुपपत्त्या तत्रैव बहूनि सुवर्णानि निह्नुतानि लक्ष्यन्ते इति भावः ॥१०७।

पुलकवृन्दमिति मन्त्रिभालनजनित-स्थायिभावकामविकारोत्थम् । स्मितमिति हर्षोत्थं मृषा भ्रूकुटीत्यवहित्थया अमर्षनिर्म्माणं कुट्ट-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

...ग्रन्थालय, ...निधि, करौंदी वाराणसी-5

मृषा भ्रुकुटिबन्धुरीकृतमुखी मदुक्ति-श्रवा-
न्निरस्यति दृगञ्चलभ्रमिभिरत्र रुष्टेव माम् ॥२०८॥

(प्रकाशम्) साधु महोद्यानचक्रवर्त्तिन्! साधु साधु। सत्येयम् 'उपर्य्युपरिबुद्धीनां चरन्तीश्वरबुद्धयः' इति प्रसिद्धिः। नान्दीमुखि! पश्य पश्य, पञ्चभिरमूभिर्विंशतेरर्द्धान्छातकुम्भकुम्भान् वक्षसि कौशलेन निह्नुवानाभिः कृतिनोऽपि घट्टाधिकारिणः प्रतार्य्यन्ते ॥२०९॥

सर्व्वाः। (संरम्भेण भ्रूकार्म्मुकाणि कुटिलीकृत्य साक्रोशम्) रद-हिंडम्र! हिण्डेहि णिअग्रण्डवम् ॥२१०॥

कृष्णः (अपवार्य्य) वृन्दे! विलोकय कुञ्चितभ्रुवं पञ्चमुखीम्।

(इति सगद्गदम्)

कामः काञ्चिदवाप्य पञ्चमुखतस्तीव्रां व्यथामुग्रतः
सौम्यां पञ्चमुखीं भजन् ध्रुवमिमा लब्धोरुविद्यः कृती।
भ्रूचापेषु समं कटाक्षविशिखान् पञ्चार्पयन् पञ्चसु
क्रुद्धः पञ्चमुखोग्रविक्रममसौ मां हन्तुमुद्यच्छते ॥२११॥

(इत्युद्घूर्णां नाटयति।)

मितमिदम्। यदुक्तम्। 'स्तनाधरादिग्रहणे हृत्प्रीतावपि संभ्रमात्। वहिःक्रोधो व्यथितवत् प्रोक्तं कुट्टमितं बुधै'रिति ॥२०८॥

विंशतेरर्द्धान् दश शातकुम्भकुम्भान् कनककलसान् प्रत्येकमेव द्वितयधारणादिति भावः ॥२०९॥

"रतहिण्डक हिण्ड निजमण्डपम्"। स्त्रीचौरो रतहिण्डकः हिण्ड गच्छ ॥२१०॥

पञ्चमुखीं पञ्चमुखानि समाहृतानि पश्य। सगद्गदमिति निजानन्दमवधाप्यतामानन्दयितुं तेन च त्वया एव मम सुखोपाये भूयोऽपि यतनीयमिति व्यज्यते। पञ्चमुखतः पञ्चभ्यो मुखेभ्यः उग्रत उग्रेभ्यो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुमङ्गलः । (अपवार्य्य) हन्त, कीस विम्हलन्तं वि अत्ताणअं ण रुन्धसि, जं कड़क्खिज्जम्ह जिम्हदिट्ठीहिं किसोरिआहिं ? ॥२१२॥

कृष्णः (सावहित्थम्) सखे मधुमङ्गल ! कुटिलभ्रुवां कौटिल्य-वैचित्रीभिर्विस्मिताऽस्मि । भवतु, किं नस्तेन ? कैतवनिह्नु-तानां हिरण्मयपङ्क्तिकुम्भानां शुल्को द्विगुणीकृत्य पुनः पञ्च-दशानामेव शतगुणीक्रियताम् ।

मधुमङ्गलः । सुणाहि, राअउलस्स विन्दचउट्ठअं, अहिआरिणो सव्वविज्जागुरुणो दे कलाकोडी, संखाहिरण्णस्स काअत्थस्स मे तत्तकोडी, सुअल-पहुदीणं दण्डिआणं पसुवालाणं पसुवई-कोडीत्ति ।

कृष्णः । सम्भूय वृन्दपञ्चकं सिद्धम् ॥२१३॥

वस्तुत उग्रात् महादेवात् कीदृशात् पञ्चमुखतः पञ्चसु भ्रूचापेषु सम सहैव पञ्चमुखात् सिंहादप्युग्रो विक्रमो यस्य तम् ॥२११॥

"कस्मादिव विह्वलमप्यात्मानं न रुणत्सि । यत् कटाक्षामहे जिह्मदृष्टिभिः किशोरिकाभिः" । कर्म्मणि प्रत्ययः अस्मान् कटाक्ष कुर्व्वन्ति एते पराजिता इति कटाक्षविषया क्रियामहे ॥२१२॥

किं नस्तेनेति मय्यपि तदपि कटाक्षेणानादरो यतस्तेनापराधेन द्विगुणीकरणं इत्यर्थः । पङ्क्तिकुम्भानां दशकलसानां शुल्कस्य द्विगुणीकरणे विंशतिलक्षाधिकं कोटित्रयं भवति । तस्य च प्रकट-पञ्चकलसस्य शुल्केन अशीति लक्षमितेन मिलनेन कोटिचतुष्टयम्, तस्य शतगुणीकरणे वृन्दचतुष्टयं भवतीति गणनेन निष्टङ्कयाह शृणु राजकुलस्य वृन्दचतुष्टयम् । तत्र राजस्व-चतुर्थांशो घट्टपालवर्त्तन-मिति । स च घट्टपालसर्व्वाधिकारि कायस्थदण्डधारिण इति त्रित-यात्मकः । तत्र यथान्यायं विभज्य ते अधिकारिणः सर्व्वविद्यागुरो-स्तव कलाकोट्यः चतुःषष्टिकोट्यः विद्यानां चतुःषष्टिसंख्यत्वात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा । (स्मितं कृत्वा) तुम्हाणं भाअणाइं ण दीसन्ति, कहिं माइस्सन्ति एत्तिआइं वित्ताइम् ॥२१४॥

कृष्णः । नर्म्मणा कृतमेतेन कर्म्मणा स्वयमर्पय ।
हर्षादुदितवर्ष्मात्र वित्तं हरिणलोचने ॥२१५॥

नान्दीमुखी । (कृष्णान्तिकमासाद्य सासूयमिव) मोहण ? अम्ह-भअवदीए सिणेहभाअणाणं उज्जुआणं एदाणं वालाणं कास अलिअं च्चेअ पन्तिकुम्भाण दाण तुए वड्ढोअदि ?

कृष्णः । नान्दीमुखि ! न कदाप्यलीकमिदम्, सत्यमेव पञ्चभाः पञ्चदशकलसीविलासभाजः ॥२१६॥

नान्दीमुखी । णाअरिन्द ! महाव्वदिणीए पव्वइआए परिअणो मादिसो जणो णिद्धारिदं अजाणिअ ण क्खु विण्णवेदि ।

उचिता एवेति भावः । संख्याभिज्ञस्य कायस्थस्य मम तत्त्वकोट्यः । संख्याशास्त्रविदां तत्त्वानि पञ्चविंशतिसंख्यान्येव भवन्तीति "सुवल-प्रभृतीनां दण्डिकानां पशुपालानां पशुपतिकोट्य एकादशकोट्यः" पशुपाला रुद्रा एकादश भवन्तीति । वर्त्तनभूतवृन्दमेव त्रिधा विभक्तम् ॥२१३॥

"युष्माकं भाजनानि न दृश्यन्ते क मास्यन्ति इयन्ति वित्तानि" तेन प्रथमं मधुमङ्गलद्वारा व्रजान्महाशकटादयस्तद्वाहका वृषमहिष-खरोष्ट्राश्चानीयन्तामिति द्योतितम् ॥२१४॥

उदितवर्ष्म उक्तप्रमाणं वित्तं धनं पक्षे उदितं उदययुक्तं वर्ष्म देहं वित्तं ख्यातम् । 'वर्ष्मदेहप्रमाणयोरि'त्यमरः ॥२१५॥

"मोहन अस्मद्भगवत्याः स्नेहभाजनानां ऋज्वीनां कस्मादलीकमेव पङ्क्तिकुम्भानां दानं त्वया वर्द्धते" ॥२१६॥

"नागरेन्द्र महाव्रतिन्याः प्रव्रजितायाः परिजनो मादृशो जनो निर्द्धारितमज्ञात्वा न खलु विज्ञापयति । तदपि यदि मम वचने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तहवि जइ मह वग्रणे सन्दिहाणोसि, तदो सग्रं च्चेग्र ग्राग्रदुग्र पच्चक्खं पेक्ख। (इति कृष्णेन सह राधामुपेत्य) हला राहि ! एसो दुल्ललिदो गोउलिन्दणन्दणो सदिव्वं वि मह वग्रणं ण पत्तिग्राएदि। ता पसीद, ईसि ग्रम्वर उक्खिविग्र णिग्रवक्ख-पेरन्तं पेक्खावेन्ती मोग्रावेहि हठिल्ल सेहरस्स इत्थादो सहपरिवारं ग्रप्पाणम् ॥२१७॥

सर्व्वाः। (साभ्यसूयम्) ग्रवेहि दुब्बुद्धिए ! ग्रवेहि ॥२१८॥

नान्दीमुखी। (स्मित्वा) कध हिदकधणे वि कुप्पध ?

कृष्णः। किं नश्छिन्नम्, यदत्र काञ्चनरक्तिकमपि न परिहरिष्यति हरिः।

विशाखा (स्वगतम्) पढमं कण्हस्स दूदिग्रं वुन्दं च्चेग्र सुलुक्के उवजुञ्जन्ती दोवसिहाए ग्रग्गिणो पूग्रण ग्रारम्भिस्सम् ॥२१९-२२०

सन्दिहानोऽसि तदा स्वयमेवागत्य प्रत्यक्ष पश्य"। "हला एष दुर्ल्ललितो गोकुलेन्द्रनन्दनः सदिव्यमपि मम वचनं न प्रत्येति तत्प्रसीद ईषदम्बरं उत्क्षिप्य निजवक्षःप्रान्तं प्रेक्षयन्ती मोचय हठिल्लशेखरस्य हस्तात् सपरिवारमात्मानम्" ॥२१७॥

"ग्रपैहि दुर्बुद्धिके ग्रपैहि" त्वमेवानर्थकारिणीति भद्रेणैव वयं विद्म इतोऽपसृत्य क्वचिदेकान्ते निजवक्षःप्रान्तं दर्शयेति भावः ॥२१८॥

"कथ हितकथनेऽपि कुप्यथ" दुर्व्वारोऽयं महाहठिल्यः स्वहस्तेनैव कञ्चुलिकामुद्घाट्य युष्मद्वक्षो द्रक्ष्यत्येव तदसमञ्जसमिति मत्वा मयैवोक्तं कोऽत्रापराध इति भावः।

"प्रथमं कृष्णस्य दूतीं वृन्दामेव शुल्के उपयुञ्जाना दोपशिखया ग्रग्नेः पूजनमारप्स्ये" उपयुञ्जाना कृष्णायार्पयन्ती दीपशिखयेति। तदीयामेव वृन्दां तस्मै ददामीति नास्माकं कोऽप्यपचय इति भावः ॥२१९-२२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प्रकाशम्)
णाअरिन्द ! कहिं पञ्चघिअघडिआओ, कहिं एत्तिअं घडिदं घट्ट-सुलुकम् ? होदु, तधवि उवआरिणं राअकुमरं तुमं अवेक्खिअ एत्थ णिक्कए अम्हेहिं णिअ-पिअसही वुन्दा तुह अप्पिदा ॥२२१॥

सुबलः (संस्कृतेन) वृन्दपञ्चतये युक्तमेकवृन्दार्पणं कथम् ?
संख्याविदां न नः शक्यं गोसंख्यानां प्रतारणम् ॥२२२॥

ललिता (रोषमिवाभिनीय) विसाहे ! सुट्ठु मुद्धासि, जं लहुए इमस्सिं अत्थे गुरुईए अप्पणो सहीए वुन्दाए अप्पणं कादुं इच्छसि ॥२२३॥

मधुमङ्गलः । ललिदे ! चिट्ठदु एदं अलिअ-माहप्पम् ।
ललिता । वडुअ ! सुणाहि, 'तेत्तिसकोडिसुराणं सआसादो सुरिन्दो

"नागरेन्द्र क पञ्च घृत-घटिका क एतावद्घटितं घट्टशुल्कं भवतु तथापि उपकारिणं राजकुमारं त्वामपेक्ष्य अत्र निष्क्रिये अस्माभिर्निजप्रियसखी वृन्दा तुभ्यमर्पिता" ॥२२१॥

वृन्द-पञ्चतये प्रस्तुते दातव्ये सति एकस्य वृन्दस्यार्पणं कथं युज्यते इत्यर्थः । गोसंख्यानां गोपानां श्लेषेण गोत्रि पृथिव्यां सम्यक् ख्यातिमतां संख्याविदां कायस्थानाम् ॥२२२॥

रोषमिति वृन्दायाः स्वीयत्वानर्घत्वाभ्यां दातुमशक्यत्वव्यञ्जनया कृष्णेन सश्रद्धमत्याग्रहेण तां ग्राहयितुमिति भावः । इवेति तस्यां स्वीयत्वाभावात् वस्तुतो रोषाभावात् प्रत्युत दानसमाधाननिष्पत्तेरन्तः ससाधुवादमेवेति भावः । विशाखे सुष्ठु मुग्धासि यत् लघावस्मिन्नर्थे गुर्व्यात्मनः सख्या वृन्दाया अर्पणं कर्त्तुमिच्छसि ॥२२३

ललिते तिष्ठतु एतदलीकमाहात्म्यं वटो शृणु वटो इति प्रक्रान्तमर्थमनुसृत्य अनुरूपप्रत्युत्तरदानासमर्थेति भावः । यद्वा प्रक्रमिष्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वरिट्ठो, जं एसो सग्रकोडिहत्थो। तदो वि भग्नवन्तो हिरएण-गब्भो, जं एसो दिपरद्धवेहवो। तदो वि देई लच्छीं, जं एसा सव्वसपत्तीणं ईसरी। तदो वि वुन्दा, जा किर लच्छीं वि तुच्छीकदुग्र काए वि ग्रउरुव्वसिरिए लुब्धेण विएणुणा कामिद' त्ति भग्रवदीए मुहादो सुणीग्रदि ॥२२४॥

विशाखा। (पदे निपत्य काकुमातन्वतो) सहि ललिदे ! महुरं मन्तेसि, तधावि तक्कालिग्र दुस्सहदुक्खं परिहरिदुं एव्वं ग्रजुत्त वि कादुकामम्हि। ता पसोद, ग्रणुमरणेहि वुन्दासमप्पणं, पुरोडास-उग्घाणेण तुरएण पुणम्ह ग्रत्ताणग्रम्।

(ललिता स्मेरेव शिरा विनमय्य तूष्णीं तिष्ठति।) ॥२२५॥

विशाखा। ललिदे ! विएणादं दे ग्राऊदं, ज एकं दिग्रहं ज्जेव ग्रणुमएणेसि ॥२२६॥

कृष्णः। हन्त नान्दोमुखि ! दृष्टमत्यद्भुतं भवत्या। ततः पृच्छ्यता-

---

माणमर्थमपेक्ष्य ग्रल्पज्ञेत्यर्थः। त्रयस्त्रिंशत्कोटिसुरेभ्यः सुरेन्द्रो वरिष्ठः, यदेष शतकोटिहस्तः शतकोट्योऽपि हस्ते यस्य स महासम्पन्न इत्यर्थः। पक्षे वज्रपाणिः। "ततो हिरण्यगर्भो भगवान् यदेष द्विपरार्द्धवैभवः। ततोऽपि देवी लक्ष्मी यदेषा सर्व्वसम्पत्तीनामीश्वरी ततोऽपि वृन्दा या किल लक्ष्मीमपि तुच्छीकृत्य कयाप्यपूर्व्वश्रिया लुब्धेन विष्णुना कामिता इति भगवतीमुखात् श्रूयते"। तेन पञ्चवृन्दमात्र टङ्केषु देयेषु ईदृशो वृन्दा दातुमयोग्येति भावः ॥२२४॥

पदे निपतितेति कृष्णे स्वस्य पक्षपातं विज्ञापयितुं तेन च तं प्रसन्नीकर्त्तुं "ललिते मधुरं मन्त्रयसि तथापि तात्कालिकं दुःसह-दुःखं परिहर्त्तुं एवमयुक्तमपि कर्त्तुकामास्मि तत् प्रसीद ग्रनुमन्यस्व वृन्दासमर्पणं पुरोडासावघ्राणेन तूर्णं पुनोम ग्रात्मानम्" ॥२२५॥

"ललिते विज्ञातं ते ग्राकूतं यदेकं दिवसमेवानुमन्यसे" ॥२२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मिति कथमेताभिर्म्मंत्करणांयुगारब्धताण्डवयोर्म्मकरकुण्डलयो-र्द्वन्द्वं न शुल्कितम् ॥२२७॥

नान्दीमुखी । कित्तिदा–कित्तिदाइणि राहिए ! अजुत्तं क्खु एद ज वणमालिणो ज्जेअ वुन्दाए इमस्स सुलुक्कप्पणम् ॥२२८॥

राधा । सहि वुन्दे ! किंत्ति तुण्हीं चिट्ठसि ? तुण्णं अप्पणो पक्खं उल्लासेहि । (कृष्णः वृन्दावक्त्रमवलोकयति)

वृन्दा । नागरेन्द्र ! कृतं निरर्थकं हशस्ताण्डवेन, यदियं वृन्दा वृन्दा-वनेश्वरीमनुवर्त्तते ।

सर्व्वाः (सोत्प्रास विहस्य) भअवदि लज्जे ! कहिं गदासि ? पसीद, पसीद ।

वृन्दा । सखि वृन्दावनेश्वरि ! ममात्र काचिद्विज्ञप्तिरत्राप्तावसरा वर्त्तते ॥२२९॥

राधा । सहि वुन्दे ! कोदिसी एसा भणीअदु ।

वृन्दा । द्यूतकारसंसदोऽपि भुयिष्ठं घट्टपालगोष्ठी साधुभिरभितः श्ला-घ्यते, तदत्र न समञ्जसः । प्राञ्जलोऽयं जनः, विक्रयोपक्रमश्चेत् क्वचिदन्यत्र विक्रीयताम् ॥२३०॥

न शुल्कितं न शुल्कीकृतं ममैव वृन्दां यदि मह्यमर्पयन्ति तर्हि लास्यवतो मन्मकरकुण्डलयोर्द्वयमेव मह्यं ददात्विति भावः ॥२२७॥

"कीर्त्तिदाकीर्त्तिदायिनि राधे अयुक्तं खल्विदं यत् वनमालिन एव वृन्दाया अस्मै शुल्कार्पणम्" ॥२२८॥

"सखि वृन्दे किमिति तूष्णीं तिष्ठसि तूर्णमात्मनः पक्षमुल्ला-सय" ॥२२९॥

द्यूतकारसभायाः सकाशादपि घट्टपालगोष्ठी श्लाघ्यते इति दुरा-चारत्वेनेति भावः । विरुद्धलक्षणया वा स्वयं मल्लक्षणो जनः प्राञ्जलः सरलः । शुल्कार्थं विक्रयस्य आरम्भश्चेत् ॥२३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णः (सस्मितम्) सत्यममूरसंभुक्ता एवाप्रतिमपूर्णलक्ष्मीभराः सुभ्रुवो राजकुलकार्य्यमर्हन्ति । वृन्दा तु विष्णुना सुचिरं सभुज्य निर्भरमपारेण वैभवेन रिक्तीकृता, तदलमेतया ।

राधा (विहस्य) एदं क्खु 'अलाभादङ्गनात्यागस्तुरङ्गब्रह्मचर्य्यकम्' त्ति धीरेहिं भणीअदि ॥२३१॥

मधुमङ्गलः (जनान्तिकम्) विसाहे ! णिच्चिदं तुम्हाणं घट्टदाणे अणुऊलो हुविस्सं, जं काअत्थविज्जापारंगदो म्हि, ता देहि मे किंपि पारितोसिअम् ॥२३२॥

विशाखा । अज्ज ! णव्वं सक्करं दाइस्सम् ।

मधुमङ्गलः । विसाहे ! णूणं परिहससि ।

विशाखा । भअवन्तस्स सूरस्स सवामि ॥२३३॥

मधुमङ्गलः । (सहर्षं कृष्णमभ्युपेत्य) पिअवअस्स ! माणसमए पमदासअकोडि-रोसभञ्जणे विअक्खणो म्हि । दीवाअलीकोदुए सुरहीसअकोडिपूआवणे आचारिओ म्हि । ता दिज्जउ अज्ज महामहूसवे मज्झ अणब्भत्थिदपुव्वा सअकोडिदक्खिणा । (कृष्णः स्मित्वा तूष्णीं तिष्ठति ।) ॥२३४॥

मधुमङ्गलः । (अपवार्य्य) विसाहे ! 'मौनं सम्मतिलक्षणम्' त्ति

अप्रतिमः अनुपमः पूर्णलक्ष्मीभरो यासां ताः ॥२३१॥

"विशाखे निश्चितं युष्माकं घट्टदाने अनुकूलो भविष्यामि यत्-कायस्थविद्यापारं गतोऽस्मि तत् देहि मे पारितोषिकम्" ॥२३२॥

"आर्य्य नव्यां शर्करां दास्यामि" "नूनं परिहससि जानामि" "भगवते सूर्य्याय शपामि" ॥२३३॥

"प्रियवयस्य मानसमये प्रमदाशतकोटिरोषभञ्जने विलक्षणोऽस्मि दीपावलीकौतुके सुरभीशतकोटिपूजायां आचार्य्योऽस्मि तद्दीयतां अद्य महामहोत्सवे मह्यं अनभ्यर्थितपूर्व्वा शतकोटिदक्षिणा" ॥२३४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाणासि च्चेअ. ता देहि परिस्सुदम् । (इत्यञ्जलिं प्रसारयति ।)
विशाखा ।(स्मित्वा)गेण्ह् हिअदु एसा सक्करा ।(इति कर्परां समर्पयति)
मधुमङ्गल: । (उच्चैर्विहस्य) धुत्ते ! चिट्ठ चिट्ठ, णिक्किदिं वो करिस्सम् । ! (इति कृष्णान्तिक मासाद्य) पिअवअस्स लहुआम्मि कज्जे अल विलम्बेण गेण्ह सुलुक्कम् ।।२३५।।
कृष्ण: । सखे मधुमङ्गल ! मधुसूदनोऽस्मि, तदेषा राधिकाख्यां गता भ्रमरी शुल्कार्थमादेया ।
वृन्दा । फुल्लेयं चम्पकलतैव सतृषो मधुसूदनस्योचिता ।
कृष्ण: । वृन्दे ! तत्त्वानभिज्ञासि, राधा खल्वभिरूपा या त्रिपरोतापि धारा माध्वीकमयी सम्पद्यते ।।२३६।।
चित्रा । गोउलवोरवरेण्ण ! अप्पडिम-पुण्णलच्छीभराओ इमा ओत्ति सअं च्चेअ समत्थिदं, ता विन्दपञ्चएण कधं अम्हाणं एकदमा गेण्हीदुं जुत्ता ? ।।२३७।।
वृन्दा । सखि चित्रे ! श्लाघ्यासि, यदेष विशृङ्खल: कोमलवाग्वल्ली-

---

तद्देहि प्रतिश्रुतम् । स्मित्वेति शर्करा कर्परांशेऽपि इति नानार्थवर्गात् । यथा यदेव मया प्रतिश्रुतं तदेव दीयते नीयतामिति अभिप्रायात् । धूर्तेति मम तु सरलविप्रस्य खण्डलिप्सया शब्दार्थस्यान्यथाकरणं कौटिल्यज्ञान नैवासीदिति भाव: । "निष्कृतिं व: करिष्यामि । प्रियवयस्य लघुनि कार्य्ये अलं विलम्बेन गृहाण शुल्कम्" ।।२३५।।

मधुसूदनो भ्रमर: विष्णुश्च रेफेणाधिख्यां गता रेफद्वयवन्नाम्नोत्यर्थ: । पक्षे राधिकाख्या नामा भ्रमरी कामिनी ।।२३६।।

"गोकुलवीरवरेण्य अप्रतिमपूर्णलक्ष्मीभरा इमा इति स्वयमेव समर्थितम् । तद्वृन्दपञ्चकेन हेतुना कथमस्माकमेकतमा गृहीतुं युक्ता" ।।२३७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पल्लवेन भवत्या स्तम्भितो गम्भीरवेदी स्तम्बेरमः ॥२३८॥

मधुमङ्गलः । पिअवअस्स ! सअगुणो सुलुको त्ति एत्थ असंखवाइणो सअ-सद्दस्स पन्तिदहम्मि पज्जवसाणं कुणन्तेहिं अम्हेहिं तस्स उज्जाणचक्कवट्टिणो सुट्ठु अवरद्धम् ॥२३९॥

कृष्णः । सखे ! साधु साधु । प्रियार्थरसमाधुरीमुपभोजयन् काय-स्थिका-रसवतीपौरगवोऽसि । सत्यमसंख्यान्येव वित्तानि चक्र-वर्त्तिवराणामभिप्रायेण क्रोडीकृतानि ! तथा च स्मर्य्यते—

'द्राघिष्ठे छद्मनि ज्ञाते प्रकृत्या गर्व्वशालिनाम् ।
अत्युन्नतश्रियोग्राणां यथेष्टं दण्ड इष्यते' ॥२४०-२४१॥

ललिता । दण्डेण विणा क्खणं वि गोवाणं णत्थि ओलम्बो, ता जुत्त जेव्व दण्डग्गहणम् ॥२४२॥

गम्भीरवेदी दुर्व्वारमदस्तम्वेरमः हस्ती । यदुक्तं त्वग्भेदात् शोणितश्रावात् मांसस्य व्यधनादपि । संज्ञां न लभते यस्तु गजो गम्भीरवेद्यसौ ॥२३८॥

"प्रियवयस्य शतगुणशुल्क इत्यत्रासंख्यवाचिनः शतशब्दस्य पङ्क्तिदशके पर्य्यवसानं कुर्व्वद्भिरस्माभिस्तस्मै उद्यानचक्रवर्त्तिने सुष्ठु अपराद्ध" तस्मै कोपयितुमित्यर्थस्तस्येति वा ॥२३९॥

प्रियोऽर्थप्रयोजनं येषु एवम्भूता ये रसास्तन्माधुरीं पक्षे प्रिया श्रीराधिका सैव अर्थः प्रयोजनं येषु तद्रसमाधुरीम् । पौरगवः पाक-कर्म्माध्यक्षः ॥२४०॥

स्मर्य्यते इति स्मृतिशास्त्रवचनमेवात्र प्रमाणमस्तीति भावः । द्राघिष्ठे अतिदीर्घतमे । अत्युन्नतया श्रिया उग्राणाम् ॥२४१॥

"दण्डेन विना क्षणमपि गोपानां नास्त्यवलम्बः तद्युक्तमेव दण्डग्रहणम्" ॥२४२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णः । यद्यपि पञ्चभिरपि न शुल्कपर्य्याप्तिस्तथापि द्वितीयैव मम रक्षणीया, या खलु चन्द्रलेखोन्मीलनक्षमा ।।२४३।।

राधा । (सोत्प्रासं विहस्य) हन्त हन्त, देवदोवासणस्स कुसुमं ओचिणन्तीणं खञ्जणच्छीणं खेमं क्खु वुन्दाअण्ण उम्मदेण इमिणा एक्केण महाकलहिन्देण सव्वं आक्कमिअ भअङ्करं किदम् । केअलं सेलिन्दस्स उवसल्लमेत्तं ओलम्बणं आसि । हद्धी हद्धी, एत्थ वि दाणिन्दारम्भदम्भेण वट्टपाडिदा आरद्धा । कस्स विण्णविस्सम्ह ?

कृष्णः । नान्दीमुखि ! तव कर्णमधिरूढासौ गुर्व्वी गिरामनर्गलता, यदत्र सन्मार्गरक्षा-प्रख्यातविशुद्धो मय्यपि वर्त्मपातिता-परिबाद-कालिमाध्यास-साहसिता, तदेनां दोर्द्दण्डयुगलेन गाढ़ं पाड़यामि ।।२४४।।

नान्दीमुखी । (पुरोऽवस्थाय वारयन्ती) सुवीर ! महातावसीपरिवारस्स मे समक्ख अक्खमं एदं कुलवालापोड़म् ।।२४५।।

कृष्णः । गोष्ठमहेन्द्रकुमारश्चूड़ामणिरस्मि मुहुरहयुनां, कथमुन्मद-युवतीनामुपेक्षिताहेऽद्य दर्पक्रोष्माणम् ? ।।२४६।।

द्वितीयैव ललितामपेक्ष्य ललिता एका राधा द्वितीयेत्यर्थः, पक्षे द्वितीया तिथिः । चन्द्रलेखा चन्द्रकला । पक्षे नखाङ्कः । २४३।।

"हन्त देवनोपासनाय कुसुमविचिन्वतीनां खञ्जनाक्षीणां क्षेमं खलु वृन्दावनं उन्मदेन एकेन महाकलभेन्द्रेण सर्व्वमाक्रम्य भयङ्करं कृतम् । केवलं शैलेन्द्रस्य उपशल्यमात्रं अवलम्बनमासीत् । हा धिक् हा धिक् तत्रापि दानीन्द्रारम्भदम्भेन वर्त्मपातिता आरब्धा कस्मै विज्ञापयिष्यामहे" राजपुण्ड्रस्यास्य को नियन्तेति भावः ।।२४४।।

"महातापसीपरिवारस्य मे समक्षं अक्षमं खलु एतत् कुलवाला-पीड़नम्" ।।२४५।।

अहंयूनां अहङ्कारवताम् । 'अहङ्कारवानहंयुः स्यादि'त्यमरः । पक्षे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता। कण्ह ! सक्खं कधेसि । एत्थ णावरज्झसि तुमम् । घट्टोदेईए ज्जेअ एसो अपुव्वो कोवि पसादो, जेण सक्कुलकुमरो वि धुत्तधुरीणाणं वि सुट्ठु विम्हावणीं कञ्चण विज्जं झत्ति अज्झाविदोसि ॥२४७॥

कृष्ण:। (साटोपम्)

घट्टाधिराजमवमत्य विवादमेव,
यूयं यदाचरथ शुल्कमदित्समाना: ।
मन्ये विधित्सथ तदत्र गिरेस्तटेषु,
दुर्गेषु हन्त विषमेषु रणाभियोगम् ॥२४८॥

राधा। मोहण ! केत्तिअ सहिस्सम्ह ? जं 'अतिनिर्म्मथनादग्निश्चन्दनादपि जायते' त्ति वअणं पमाणम्। ता एत्थ अम्हदूसणं ण देअम् ॥२४९॥

कृष्ण:।

अपटुभ्रमकारिणीभिराभि:, कुटिनाटीभिरलं प्रसीद देवि ।
वितराद्य धनानि वा मदिष्टा,-न्यनुतिष्ठातनुसङ्गरक्रियां वा ॥२५०

यूनां मध्ये अहं चूड़ामणि: । दर्पकस्य गर्व्वस्य उष्माणं उष्मत्वं तैक्ष्णमित्यर्थ:। पक्षे कामोद्रेकम् ॥२४६॥

"हे कृष्ण श्लक्ष्नं कथयसि अत्र नापराध्यसि त्वम्, घट्टोदेव्या एव एष अपूर्व्व: कोऽपि प्रसाद:, येन सत्कुलकुमारोऽपि धूर्त्तधुरणीणां सुष्ठु विस्मापनीं काञ्चनविद्यां झटिति अध्यापितोऽसि" ॥२४७॥

विषमेष्विति तटेष्वित्यस्य विशेषणम्। पक्षे विषमेषु: कन्दर्प: तस्य रणाभियोगमित्येकं पदम् ॥२४८॥

"मोहन कियत् सहिष्यामहे। यदिति निर्म्मंथनादग्निश्चन्दनादपि जायते इति वचनं प्रमाणम् तदत्र अस्मद्दूषणं न देयम्,'तेन हि धाराणामपि चाञ्चल्यं जायते इति रहस्यो ध्वनि: ॥२४९॥

कुटि कौटिल्यं इक् कृषादिभ्य:। नाटी नाट्यं कौटिल्यनाट्यमत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा । त्वं महासांयुगीनोऽसि संयुगे ख्यातिमागतः ।
योद्धुं ततस्त्वया सार्द्धं क्षमन्तामबलाः कथम् ? ॥२५१॥
कृष्णः । काननेचरि ! स्वरूपानभिज्ञासि ।
पश्योन्नतश्रोणिरथा मतङ्गज,-क्रमोज्ज्वलाः सुष्ठु पदातिशोभनाः ।
कामस्य चञ्चत्कचभारचामरा,-श्चमूरमूश्चारुचमूरुलोचनाः ॥२५२॥
राधा । णाग्रर ! दिट्ठं कुलवालिग्राविमोहणं इदं दे घट्टिन्दजालम्, ता पुणो श्रलं वित्थारेण । सहीमणाहा जण्णवेदिग्रं चलिद-म्हि ॥२५३॥

परमपटौ मयि न फलतीत्यर्थः । रहस्यध्वनिपक्षे श्रपटोरेव वाह्यार्थानुसन्धायिनो भ्रमः स्यात् ननु परमपटो रहस्यवेदिनो ममेति । मयातु युष्मच्चापल्यं ज्ञायत एव श्रलं व्यञ्जनयेति भावः । श्रतनोरनल्पस्य पक्षे कन्दर्पस्य संगरस्य युद्धस्य क्रियां व्यापारम् ॥२५०॥

'सांयुगिनो रणे साधुरि'त्यमरः । यतः संयुगे युद्धे उपयथापि स्पष्ट एवार्थः ॥२५१॥

स्वरूपानभिज्ञासीति ममाप्यतनुसङ्गरे पराजेतुं समर्था एतास्त्वं नाभिजानासीति भावः । श्रमूश्चमूरुलोचनाः कामस्य चमूः सेनाः पश्य प्रतीहीत्यर्थः । सेनाङ्गान्येवाभिनयेन तर्जन्या दर्शयन्नाह उन्नताः श्रोण्य एव रथा यासां ताः, मतङ्गजस्येव क्रमेण पादविन्यासेन उज्ज्वलाः पक्षे क्रमेण शक्त्या । 'क्रमशक्तौ परिपाट्यामि'ति विश्वः । सुष्ठु पदैरिति शोभनाः पक्षे पदातिशोभनाः ॥२५२॥

"नागर कुलबालिकाविमोहन इदं ते घटेन्द्रजालं तत् पुनरलं विस्तारेण । सखीसनाथा यज्ञवेदिकं चलितास्मि" । इन्द्रजालमिति प्रकटीभूते घट्टशुल्कग्रहणादावर्थेन तात्पर्य्यमिति तव वाचैवावगम्यते व्यज्यमानेति दुर्लभेऽर्थेतु नास्त्येव न्यायः । श्रतो निर्व्विरोधमेवास्माकमितश्चलनमिति भावः प्रकटः । रहस्यस्तु कालविलम्बासहि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णः। घूर्णिताक्षि ! घनघट्टकरेण शीघ्रमाघ्रातासि । कथं चलने त्वं प्रभवितासि ? ॥२५४॥

चम्पकलता। किं क्खु भोअराअस्स अहिआरी होसि, जं करदाणेण आराहणिज्जो तुमम् ? । २५५॥

कृष्णः। चम्पकलते ! भोगरागस्याधिकारी तथ्यमस्मि, तथापि नातीव तुष्टिर्मम करदानेनाराधने। ततः प्रयत्ननिगूढ़ान् काञ्चन-कुम्भानेव स्पर्शयन्तु भवत्यः ॥२५६॥

ललिता। हन्त मुद्धाविड़म्बणचादुरीगव्विद ! पेक्ख, इमा ओ विअड्ढप्पवरा ओ गोट्ठ-जुअदिवल्ली ओ रण्णो घट्टदाणं कट्टिअ सलीलं चलन्ति। ता उज्जाण-चक्कवट्टिणं गदुअ फुक्करेहि ॥२५७॥

कृष्णः।

भुजविक्रमिणा मया कथं वा, तव हेनोरपि फुत्कृतिर्विधेया ?
द्विपदर्पहरस्य को हरेर्वा, हरिणीवृन्दविमर्द्दने प्रयासः ? ॥२५८॥

ष्णवो वयं भवता शुल्कग्रहणमिषेण चलन्त्यो निरुद्ध्यामहे इति ॥२५३॥

आघ्रातासि ईषद्गृहीतासि पक्षे घनो निविड़ो घट्टश्चलनं चापलं यस्य तथाभूतेन करेण मत्पाणिना समाघ्रातासि परामृष्टासि। आघ्राणलिङ्गेन करस्य गजशुण्डत्वं दुर्व्वारतया व्यञ्जितम्। यदि यास्यसि स्वकरेणैव त्वामाकर्षयामीत्यर्थः ॥२५४॥

"किं खलु भोजराजस्याधिकारी भवसि यत् करदानेनाराधनीयस्त्वम्" ॥२५५॥

स्पर्शयन्तु ददतु स्पर्शनं प्रतिपादनमित्यमरः। पक्षे स्पष्टः ॥२५६॥

"हन्त मुग्धाविड़म्वनचातुरीगर्व्वित पश्य इमा विदग्धाप्रवरा गोष्ठयुवतीवल्यः राज्ञो घट्टदानं कर्त्तृत्वा सलीलं चलन्ति तत उद्यान-चक्रवर्त्तिनं गत्वा फुत्कुरु" ॥२५७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा । किं कादव्वं हरिणा, जं सरहसं वलिदा पुरदो ललिदा ?॥२५६॥

कृष्णः । पङ्कजाक्षि ! निष्टङ्कितमवधार्य्यताम्,—

विद्योतसे कल्पलतेव कामदा,
धुनोषि च व्यायत-चिल्लि-कार्म्मुकम् ।
इत्यर्थपुञ्जं मम देहि पुष्कलं,
किंवा सखीभिः सह सुष्ठु विग्रहम् ॥२६०॥

ललिता । (कुटिलं विलोक्य) गोविग्राहार ! सङ्खचूड़ोवमद्दणेण विक्खादविक्कमोसि, ता जुत्ता विग्गहाहिलासुप्रदा ॥२६१॥

राधा । हन्त सहो ओ ! किदं परिस्समावणोदणम्, ता तुरिअं उक्खिवध णिअं णिअं गग्गरिअम् ॥२६२॥

कृष्णः । सखे सुबल ! संभृतेनावष्टम्भकुम्भिकापञ्चकेन सत्वरं घट्टचत्वरं परिष्क्रियतां त्वया । मया पश्चादत्र पञ्चमी धारयिष्यते, यतः पुन्नागप्रियासौ । ॥२६३॥

हरेः सिंहस्य निवृत्तिर्नाम षष्ठमङ्गमिदम् । यदुक्तम् – 'निदर्शनस्योपन्यासो निवृत्तिरिति कथ्यते' इति ॥२५८॥

'किं कर्त्तव्यं हरिणा यत् सरभसं वलिता पुरतो ललिता'' । पक्षे सरभेन सिंहविमर्द्दनेन जन्तुना संवलिता ॥२५६॥

विग्रहं युद्धं पक्षे देहम् ॥२६०॥

"गोपिकाहार ! शङ्खचूड़ोपमर्द्दनेन विख्यातविक्रमोऽसि तद्युक्ता विग्रहाभिलाषुकता'' गोपिकां हरतीति सचासौ शङ्खचूड़श्चेति तस्य, पक्षे गोपिकानां हाराश्च शङ्खसम्बन्धिन्यश्चूड़ाश्च तासाम् ॥२६१॥

"हन्त सख्यः कृतं परिश्रमापनोदनम् । तत् त्वरितमुत्क्षिपथ निजां निजां गर्गरिकाम्'' ॥२६२॥

संभृतेन सम्यक् धृतेनावष्टम्भकुम्भिका कनकघटोपरिष्क्रियतां विभूष्यतां पञ्चमी सर्व्वा अपेक्ष्य राधैवेत्यर्थः । पक्षे पञ्चमीतिथिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुबलः । (परिक्रम्य) ललिदे ! भारदुक्खप्पदाश्रो वट्टघरं लम्भेमि तुम्हकुम्भिश्रा ओ, ता सुहं चलन्तु होदीओ ।।२६४।।

ललिता । (सावज्ञस्मितमवलोक्य) हद्धी हद्धीं, अरे चिल्लाअ-चाउरिश्रा-चोरचक्कवट्टि-लीलामच्च ! सइदाए वि ललिदाए को क्खु णीसज्झसो तिणं वि परिहरिदुं अज्झवसदि ? ।।२६५।।

सुबलः । (सशङ्कं परावृत्य) पिअवअस्स ! एक्कोहं कध कुम्भपञ्चअं आहरिस्सम् ? ता इमेहिं वअस्सेहिं सद्धं सअं च्चेअ सरिणहेहि ।।२६६।।

कृष्णः । सखे ! सुबलोऽपि सुष्ठु दुर्ब्बलोऽसि, यदेष ललितायाः फल्गुभिरेव मटस्फटिभिस्त्वमुच्चाटितः ।।२६७।।

सुबलः (सनर्म्मस्मितमपवार्य्य) पिअवअस्स ! अलं वअणमेत्तसुलहेण दप्परासिणा । सुट्ठु पच्चक्खी किद-विक्कमोसि, जं ससुसिदिअहे राहिआए सद्धं वट्टन्तास्स कीलाज्जूए कूडेण जअं उग्-

---

पुन्नागस्य कृष्णस्य पक्षे महासर्पस्य श्रावण्या पञ्चम्या नागपञ्चमीत्वेन प्रसिद्धेः ।।२६३।।

"ललिते भारदुःखप्रदा घट्टगृहं लम्भयामि युष्मत् कुम्भिकास्तत्सुखं चलन्तु भवत्यः" ।।२६४।।

"हा धिक् हा धिक् अरे चिल्लातचातुर्य्यचौरचक्रवर्त्तिलीलामात्य शयिताया अपि ललितायाः कः खलु निःस्वाध्वसस्तृणमपि परिहर्त्तुमध्यवस्यते" । प्रसिद्धचौरचिल्लातस्तस्येव चातुर्य्यं यस्य तथाभूतो यश्चोरचक्रवर्त्ती तस्य लीलामात्य ।।२६५।।

"प्रियवयस्य एकोऽहं कथं कुम्भपञ्चकं आहरिष्यामि तदेभिर्वयस्यैः सार्द्धं स्वयमेव सन्निधेहि" ।।२६६।।

मटस्फटिभिराटोपैः ।।२६७।।

"प्रियवयस्य अलं वचनमात्रसुलभेन दर्पराशिना सुष्ठु प्रत्यक्षी-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घुसिअ ललिदाए आअड्ढिदमुरलीओ तुमं कोत्थुह-सङ्गोवणं कुणन्तो सुम्हेरमुहीहिं सहोहिं कडक्खिज्जन्तो सङ्काउलो तुएणं संवुत्तो आसि ॥२६८॥

कृष्ण: । (स्मृत्वा) मृषावादवैज्ञानिक ! मौनं भज । महासमीरणस्ये मे विक्रमवाटी-परिस्पन्दनारम्भे रम्भेव केयं वराकी ललिता ॥२६९॥

ललिता । विसाहे ! तं अम्ह-पिअसही-भादुअं सिरिदाम-जोइन्दं वन्देहि, जेण पराणाआमेण वलिट्टं मारुदं णिज्जिदीकदुअ महारम्भाणं गोईणं गोट्ठी उप्फुल्लीकिदा ॥२७०॥

विशाखा । (सस्मितम्) ललिदे ! साहु किंपि सुमारिदं तुए ।

(इति संस्कृतेन)

कृतविक्रमोसि यत्तस्मिन् दिवसे राधिकया सार्द्धं वर्त्तमाने क्रीड़ाद्यूते कूटेन जयं उद्घूष्य ललितया आकृष्टमुरलीकस्त्वं कौस्तुभसंगोपनं कुर्व्वन् सुस्मेरमुखीभिः कटाक्षविषयी क्रियमाणः शङ्काकुलस्तूर्णं संवृत्त आसीः" ॥२६८॥

वैज्ञानिकः कुशलः । 'वैज्ञानिकः कृतमुखः कृती कुशल इत्यपि' इत्यमरः । महासमीरणस्य महावेगस्य पक्षे महापवनस्य विक्रमस्य धाटी छलादाक्रमणम् ॥२६९॥

"विशाखे तं अस्मत् प्रियसखी भ्रातरं श्रीदामयोगीन्द्रं वन्दे येन प्राणायामेन मारुतं निर्ज्जितीकृत्य महारम्भाणां गोपीनां गोष्ठी उत्फुल्लीकृता" । योगीन्द्रं पक्षे उपायीन्द्रं उपायोऽत्र शामादीनां चतुर्णां मध्ये पराभवलक्षणो दण्ड एव ग्राह्यः प्राणायामेन पक्षे वलाधिक्येन मारुतं पक्षे माशब्दो निषेधवाची लुप्तस्त्रकत्थनमित्यर्थः ॥२७०॥

सस्मितमिति प्रस्तूयमानेऽप्युत्कर्षे परमोत्कर्षरूपोऽंशस्त्वया नाभिव्यञ्जित इत्यभिप्रायेण । 'साधु किमिति स्मारितं त्वया' ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीदामचन्द्राङ्कितपूर्व्वकायम् भाण्डीरपूर्व्वाचलमाश्रयन्तम् ।
कृष्णाम्बुदं तत्र विलोक्य वृन्दा, स्मेरेयमासीच्चपला सखी नः ॥२७१॥

अर्ज्जुनः (संस्कृतेन)

अत्र नः सवयसां गणान्तरे,
जीयते जयति वा न कः सखा ।
तत्र गोष्ठसुहृशां किमागतं,
कारणं वदत वो मदाप्लुताः ॥२७२॥

कृष्णः (राधामवलोक्य)

क्षातुमिच्छसि न काञ्चनानि चे,-
च्चातुरीं मनसि काञ्चन श्रिता ।
गौरि गैरिकविचित्रितोदरीम् ,
त्वं ततः प्रविश भूभृतो दरीम् ॥२७३॥

(इति राधामावृणोति ।)

ललिता । (मध्यमासादयन्ती) रअणारीअ ! सुणाहि, माहुरीमाहुप्पेहिं पाअपउम-प्फंस-सोहग्गभाअत्तणं अप्पणो अमरिणाअ सङ्काउलेण णिअघरावट्ठिदिमेत्तकिदत्थमणेण भत्तुणा वि दूरादो सादरं वन्दिज्जन्तीए ।

(इत्यद्धोक्ते राधिका साभ्यसूयं ललितां पश्यति ।) ॥२७४॥

स्मेरेति सदैवेयं कृष्ण एव सर्व्वोत्कर्षं निश्चितवती तदानीन्तु कृष्णादप्युत्कर्षं श्रीदाम्नि दृष्ट्वेति भावः । अतएव इयं अस्माकं चपला सखी कदाचित् कृष्णोत्कर्षं पश्यन्ती कृष्णसखी वृन्दा भवति कदाचिदस्मदुत्कर्षं पश्यन्ती अस्मत् सखीति सखीत्वे चापल्यम् ॥२७१॥

सवयसां मित्राणां गणान्तरे गणमध्ये जीयत इति पराजये जये च अस्मत् सवयस्त्वमेव कारणं ननु युष्मद्भ्रातृत्वमिति । हे मदप्लुता मदव्याप्ता इति वृथैवायं भवतीनां मद इति भावः । २७२॥

कांचन कामपि ॥२७३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता (स्मित्वा) आकोमारं पूरिसजण-परिमल-कणिआण-हिण्ण-सव्वङ्गाए जाए अम्ह-पिअसहीए अङ्गाइं सेवापज्जूसुएणावि मञ्जुणा णअजोव्वणेण सज्भसादो विअ मन्थरीहुविअ अज्जवि णिब्भरं ण परिसीलिदाइं, ताए महासदीउलचक्कवट्टिणीए इमाए अङ्गस्स पेक्खणे वि किदज्भवसा ओ जणो महासाहसिआणं धुरन्धरो भणीअदि, किं उण प्फंसणे। ता अवेहि। (सर्व्वाः स्मितं कुर्व्वन्ति ।) ॥२७५॥

मधुमङ्गलः । (विहस्य) ललिदे ! अलं इमिणा गव्वभरेण । पुच्छिज्जउ अप्पणो पिअसही गन्धव्विआ, जाए दुव्वासस्स

"रतनारीकरतिवल्लभ हे शृणु माधुरिमाहात्म्यैः पादपद्मस्पर्शसौभाग्यभाक्त्वं आत्मनो अमत्वा शङ्काकुलेन निजगृहावस्थितिमात्रकृतार्थमन्येन भर्त्रापि दूरतः सादरं वन्द्यमानायाः" ॥२७४॥

साभ्यसूयमिति मत्समक्षमेव मम स्तुत्या पत्युर्निन्दया च लज्जा च स्वाभियोगश्च व्यज्यमानौ भवेतां तौ माभूतामिति। ललितास्मित्वेति त्वयातु लोच्यत इति तेन लज्जा स्वाभियोगौ मयातु सख्या यथार्थं वक्तव्यमेव अत्र किञ्चिद्वचज्यमानं स्याच्चेदिष्टापत्तिरेव औत्सुक्यमहाराजस्य प्रावल्ये को वा लज्जादिदस्युप्रभावः । "आकौमारं पुरुषजनपरिमलकणिकानभिज्ञसर्व्वाङ्गाया यस्या अस्मत्प्रियसख्या अङ्गानि सेवापर्य्युत्सुकेनापि मञ्जुना नवयौवनेन साध्वसादिव मन्थरीभूय अद्यापि निर्भरं न परिशोलितानि। तस्या महासतीकुलचक्रवर्त्तिन्या अस्या अङ्गस्य प्रेक्षणे कृताध्यवसायो जनो महासाहसिकानां धुरन्धरो भण्यते किं पुनः स्पर्शने तदपेहि" । सर्व्वाः सस्मितमिति कृष्णं प्रलोभयति च निवर्त्तयति चेत्यभिप्रायात् ॥२७५॥

अलं अनेन गर्व्वभरेण पृच्छतामात्मनः प्रियसखी गान्धर्व्विका यथा दुर्व्वाससो मुनेर्मुखात् अस्मत् प्रियवयस्यस्य आकौमारमाश्चर्य्यं-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुणिणो मुहादो अम्ह-पिअवअस्सस्स आकोमारं अच्चरिअ-वम्हचरिअमाहुरी सअं च्चेअ आअण्णिदा ॥२७६॥

सुबलः । ललिदे ! सच्चावेदि एसो मुणिपुत्तओ, ता पत्तिआएहि जं महावीरव्वदो वि पिअवअस्सो णारीणं गणादो भाएदि ॥२७७॥

अर्ज्जुनः । आं विण्णादम् । अदो च्चेअ इमाणं कडअसद्दमेत्तेण सम्भमाउलो भविअ कम्पन्तो पुलइदङ्गो मए वारं वारं दिट्ठोत्थि ।

कृष्णः (स्मितं कृत्वा) ललिते ! नात्र विप्रतिपत्तिस्ते श्रेयसी यतः समानधर्म्मणोः साधकयोः सहवाससौहार्द्दं माधुरी झटिति महाव्रतसिद्धये साधु कल्पते ॥२७८॥

राधा । (दृगञ्चलं साचि विक्षिपन्ती सावहेलं किञ्चित् परावृत्य) णाअर ! सारसेसा ण क्खु तुम्ह-चवल चादुरी, ता अलं पिट्ठपेसेण ॥२७९॥

कृष्णः । (अपवार्य्य) वृन्दे ! पश्य, पश्य,

नर्म्मोक्तौ मम निर्मितोरुपरमानन्दोत्सवायामपि
श्रोत्रस्यान्ततटीमपि स्फुटमनाधाय स्थितोद्यन्मुखी ।

ब्रह्मचर्य्या माधुरी स्वयमेवाकर्णिता" ॥२७६॥

ललिते सत्यापयति सत्यं कथयति एष मुनिपुत्रः । तत् तस्मात् प्रतीहि महावीरव्रतोऽपि प्रियवयस्यो नारीणां गणाद्बिभेति" ॥२७७॥

"आं विज्ञात अतएव आसां कटकशब्दमात्रेण सम्भ्रमाकुलो भूत्वा कम्पमानः पुलकिताङ्गो मया वारं वारं दृष्टोऽस्ति" ॥२७८॥

"नागर सारशेषा न खलु युष्मच्चपलचातुरी तदलं पिष्टपेषेण" ॥२७९॥

निर्म्मितेत्यभ्यन्तरसुखस्य श्रोत्रस्यान्तेति गर्व्वेणावहित्थायां सत्यामप्युद्यन्मुखीति गूढ़स्मितमेवास्या हर्षव्यञ्जकम् । सौभाग्यंगर्व्वं-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा लाघवमप्यसादरगिरां भङ्गीभिरातन्वती
मैत्रीगौरवतोऽप्यसौ शतगुणं मत्प्रीतिमेवादधे ॥
(राधा किञ्चिद्विहस्य ललितायाः कर्णमूले लपति ।) ॥२८०॥

ललिता । 'कण्ह ! गोउले विक्खादगुणो तुमं जुअराओसि, त्ति अम्हे तुण्णि वट्टम्ह । जइ साम्पदं सीमुल्लङ्घणे पउत्तोसि, तदो अम्हे कीस अप्पणकज्जं उवेक्खिस्सम्ह ? ॥२८१॥

अर्ज्जुनः । किं तं कज्जं तुमहाणं, जं उवेक्खध ? ॥२८२॥

ललिता । गोवेहिन्तो णिअ-वुन्दावणस्स संरक्खणं जेव्व । इदो अवरं किं कज्जम् ?

(अर्ज्जुनः सावहेलं विहस्य हुङ्कृतिं कुर्व्वन् मूर्द्धानमाधुनोति ।) ॥२८३

विशाखा । (सस्मितमुपसृत्य) ललिदे ! गोउल-जुअदोउल-चक्कवट्टिणी अम्हपिअसही आणवेदि ।

ललिता । किं तम् ? ॥२८४॥

जनितोऽयं विब्बोकः । तथाहि । 'विब्बोको मानगर्व्वाभ्यां स्यादभीष्टेऽप्यनादर' इति । मैत्री गौरवत इति तदीयतामयप्रणयात् चन्द्रावल्यादिनिष्ठात् ॥२८०॥

'कृष्ण गोकुले विख्यातगुणस्त्वं युवराजोऽसि इति वयं तूष्णीं वर्त्तामहे यदि साम्प्रतं सीमोल्लङ्घने प्रवृत्तोऽसि ततो वयं कस्मात् आत्मकार्य्यमुपेक्षिष्यामहे' ॥२८१॥

'किं तत् कार्य्यं युष्माकं यदुपेक्षध्वे' ॥२८२॥

ललिता—"गोपेभ्यो निजवृन्दावनस्य संरक्षणमेव इतोऽपरं किं कार्य्यम्" ॥२८३॥

"ललिते गोकुलयुवतीकुलचक्रवर्त्तिनी अस्मत् प्रियसखी आज्ञापयति" ॥२८४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाखा । सव्वे गव्विदा गोवा लदंकुरपुञ्जभञ्जणदक्खाणं गाइणं लक्खकोडी रक्खन्तो फलेहिं कुक्खिम्भरिणो पुप्फपल्लवेहिं मिथो णेवच्छआरिणो सुइरं अम्ह-वुन्दावणस्स विद्धंसणं कुणन्ति । ता णिट्टङ्किदं कधेहि, एदे इदा वा विरमेन्तु, किंवा करं देन्तु ॥२८५॥

मधुमङ्गलः । (सामर्षम्) विवरीदवादिणि ! मुणिव्वदिणी होहि । अथवा थोअं पि तुम्हाणं दूसणं णत्थि । पिअवअस्सस्स कारुणिअदा च्चेअ एत्थ अणत्थआरिणी संवुत्ता, जाए डाहिणाए अडाहिणाणं तुआरिसीणं तस्स वुन्दावने पवेसो पसादीकिदो । ता ण क्खु अजुत्तो पलावो ॥२८६॥

चम्पकलता । अज्ज ! अणज्जोसि तुमं, जं अपज्जालोइअ मोहं जप्पसि ।
॥२८७॥

ललिता । (संस्कृतेन)

शृणोति नायं शतशोऽपि घुष्टं,
न च स्मरत्यात्मदृशापि दृष्टम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यां निजलोचनाभ्यां,
हीनं ततस्त्वं सखि नाक्षिपामुम् ॥२८८॥

"सर्व्वे गर्व्विता गोपा लताङ्कुरपुञ्जभञ्जनदक्षाणां गवां लक्षकोटों रक्षन्तः फलैः कुक्षिम्भराः पुष्पपल्लवैर्मिथो नेपथ्यकारिणः सुचिरं अस्मद्वृन्दावनस्य विध्वंसनं कुर्व्वन्ति तन्निष्टङ्कितं कथय । एते इतो वा विरमन्तु किम्वा करं ददतु" ॥२८५॥

"विपरीतवादिनी मुनिव्रतिनी भव । अथवा अल्पमपि युष्माकं दूषणं नास्ति प्रियवयस्यस्य कारुणिकतैवात्रानर्थकारिणी संवृत्ता । यया दक्षिणया अदक्षिणानां त्वादृशीनां तस्य वृन्दावने प्रवेशः प्रसादीकृतः । तत् न खलु युक्तप्रलापः" ॥२८६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाखा । सहि णन्दीमुहि ! अवि किं सो किर पिअसहीए महाहिसेअ-महूसवो तुए सुमरीअदि ? ॥२८९॥

नान्दीमुखी । विसाहे ! को क्खु सो पराणी भुअणे होदि, जेण महामहूसवो वि विसुमरिदुं पारीअदि ? ॥२९०॥

चित्रा । णन्दीमुहि ! अच्छिहिं पच्चक्खीकिदो वि सो महूसवो लोउत्तरदाए कण्णं मे उत्तरलेदि, ता सुणावीअदु ॥२९१॥

नान्दीमुखी । सहि चित्ते ! सुणाहि, इमाए वुन्दाए गदुअ भअवदी विण्णत्ता 'हन्त जोएसरि ! वुन्दावणरज्जे अहिसिञ्चिज्जउ राहो, ज आगासे असरीरिणी वाणी एव्वं पअडं अम्हाणं पुरदो आदिट्ठवदि' त्ति ॥२९२॥

वृन्दा । (स्वगतम्) मुकुन्दस्य निदेशादाकाशवागपदेशेनाहमार्य्यामुदयोजयम् ॥२९३॥

"आर्य्य अनार्य्योऽसि त्वं अपर्य्यालोच्य मोघं जल्पसि" ॥२८७॥

घुष्टं अभ्यस्तं उक्तं वा आत्मनो दृशा नेत्रेणापि दृष्टं महोत्सवं न स्मरति । नाक्षिपामुमित्यतिमूढः आक्षेपविषयोऽपि नैव भवतीति भावः ॥२८८॥

"सखि नान्दीमुखि अपि किं स किल प्रियसख्याः महाभिषेकमहोत्सवस्त्वया स्मर्य्यते" ॥२८९॥

"विशाखे कः खलु स प्राणी भुवने भवति येन महामहोत्सवोऽपि विस्मर्त्तुं शक्यते" ॥२९०॥

"नान्दीमुखि अक्षिभ्यां प्रत्यक्षीकृतोऽपि महोत्सवो लोकत्तरतया कर्णं मे उत्तरलयति तत् श्रावयतु" ॥२९१॥

"सखि चित्रे शृणु अनया वृन्दया गत्वा भगवती विज्ञप्ता । हन्त योगेश्वरि वृन्दावनराज्येऽभिषिच्यतां राधा । यद्यस्मादाकाशे अशरीरिणी वाणी एवं प्रकटं अस्माकं पुरतः आदिष्टवतीति" ॥२९२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नान्दीमुखी । तदो महातावसीए भअवदीए आहूदाओ पञ्च-देईओ समाअदाओ ॥२९४॥

अर्ज्जुनः । काओ क्खु ताओ ? ॥२९५॥

वृन्दा ।

देवी प्रसिद्धा भुवि देवकीसुता, या कंसमाक्षिप्य जगाम केवलम् ।
भानोः कलत्रे तनया च पञ्चमी, गङ्गा तु या मानसपूर्व्विका स्मृता ॥

चित्रा । तदो तदो ? ॥२९६॥

नान्दीमुखी । तदो कणिट्ठाए मत्तण्डमहिसीए भणिदं 'भअवदि ! अणदिक्कमणिज्जं तुम्ह-सासणं णिच्चिदं क्खु अम्हेहिं सिरे गहीदं, किन्तु कहिं महिट्ठा एसा वच्छा राहो, कहिं वा सोलह-कोहमेत्तवित्थिण्णं एदं वुन्दावणरज्जं' त्ति ण सुट्ठु पसीदइ मे हिअअम् ॥२९७॥

तदो भअवदीए विलोइदमुही देई एक्काणंसा संसिदुं पउत्ता ॥२९८॥

मुकुन्दस्येति सर्व्वतोऽधिकं सौभाग्यं तस्याः सूचितम् ॥२९३॥

"ततो महातापस्या भगवत्या आहुताः पञ्चदेव्यः समागताः" ॥२९४॥

"काः खलु ताः" ॥२९५॥

भानोः कलत्रे संज्ञाछाये तनया यमुना मानसपूर्व्विका मानस-गङ्गा इत्यर्थः ॥२९३॥

"ततः कनिष्ठया मार्त्तण्डमहिष्या' छायया भणितं भगवति अनतिक्रमणीयं युष्मत्शासनं निश्चितं खलु अस्माभिः शिरसि गृहीतं किन्तु क्व महिष्ठा एषा राधा क्व वा षोड़शक्रोशमात्रविस्तीर्णमिदं वृन्दावनराज्यमिति । न सुष्ठु प्रसीदति मे हृदयं" तेन सर्व्वब्रह्माण्डाधिपत्य एवाभिषिच्यतामिति भावः ॥२९७॥

"ततो भगवत्या निलोकितमुखी,देवी एकानंशा संशितुं प्रवृत्ता" ॥२९८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(इति संस्कृतेन) सखि सवर्णे ! समाकर्णय,—
आम्नायाध्वर-तीर्थ-मन्त्र-तपसां स्वर्गाखिलस्वर्गिणां
सिद्धीनां महतां द्वयोरपि तयोश्चिच्छक्ति-वैकुण्ठयोः ।
वीर्य्यं यत् प्रथते ततोऽपि गहनं श्रीमाथुरे मण्डले
दीव्यत्तत्र ततोऽपि तुन्दिलतरं वृन्दावने सुन्दरि ॥२६६॥

चित्रा । तदो तदो ?

नान्दीमुखी ! तदो हरिसुप्फुल्ले सम्रलजणे णिवतन्त-दिव्व-कुसुम-वरिसं गअणं पेक्खिअ भाणुणन्दिणीए भणिदम्, 'भअवदि ! इदो आअन्तुं पज्जुस्सुआवि तुम्ह-अणामन्तणेण सङ्किद-हिअआ दिव्वमञ्जूसिआए अणुगदा पिअसही एसा सरस्सई

आम्नायानां वेदानां वस्तुज्ञापकत्वलक्षणं यद्वीर्य्यं, अध्वराणां ज्योतिष्टोमादीनां विशिष्टफलोत्पादकत्वलक्षणं, तीर्थानां पावनत्व-लक्षणं मन्त्राणां दुर्घटघटनलक्षणं तपसां वरणीयविशेषप्रापकत्व-लक्षणं तथा तत्तत्साध्यानां स्वर्गाणां ऐन्द्रियकसुखप्रापकत्वलक्षणं तद्भोक्तॄणां स्वर्गिणां सुखप्रमत्ततालक्षणं तथैव सिद्धानां मणिमादीनां ऐश्वरसुखप्रापकत्वलक्षणं तपसां महतां सिद्धि-मतां योगैश्वर्य्यादिलक्षणं चिच्छक्तिर्मायातीताह्लादसत्ताज्ञानस्वरूपा अन्तरङ्गाशक्तिस्तस्या निरुपमनित्यकल्याणगुणः तन्मयपदार्थसमु-दायाविष्करणलक्षणं वैकुण्ठस्य तत्कार्य्यस्य तत्तन्मयत्वसर्व्वोत्कर्ष-लक्षणं यद्वीर्य्यं प्रथते प्रख्यातं भवति ततोऽपि जातिप्रमाणाभ्यां गहनं वीर्य्यं माथुरे मण्डले एव दीव्यति ततोऽपि तुन्दिलतरं वृन्दावने षोड़शक्रोशमात्र एव तेन का वार्त्ता ब्रह्माण्डकोट्याधिपत्यानां तानि वृन्दावनैकप्रदेशप्रतीकोऽपि ब्रह्मणा दृष्टानीति भावः ॥२६६॥

"ततो हर्षोत्फुल्ले सकलजने निपतद्दिव्यकुसुमवर्षं गगनं प्रेक्ष्य भानुनन्दिन्या यमुनया भणितम् । भगवति इत आगन्तुं पर्य्युत्सु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अम्बरे विलम्बइ, ता आआरीअदु' त्ति विएणत्ताए भअवदीए सादरं आआरिदा विरिञ्चिपुत्ती तत्थ पविसिअ दिव्वमञ्जुसिअं उग्घाड़ेन्ती भणिदुं पउत्ता । (इत्यर्द्धोक्ते)

वृन्दा । (निर्भरौत्सुक्येन नान्दीमुखीवाचमाच्छाद्य सहर्षम्) ॥३००॥

पाद्मीं पद्मभुवः स्रजं प्रणयिनी सौवर्णपट्टं शची
रत्नालङ्करणं कुबेरगृहिणी छत्रं प्रचेतःप्रिया ।
द्वन्द्वं चामरयोः प्रभञ्जनवधुः स्वाहा दुकूलद्वयं
धूमोर्णा मणिदर्पणं सरभसं मत्पाणिना प्राहिणोत् । ३०१॥

चित्रा । तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

वृन्दा । ततश्च,

स्ववर्वाद्यध्वनिडम्बरे श्रुतिहरे गम्भीरयत्यम्बरं
गायत्यम्बुदभाजि तुम्बुरुमुखे गन्धर्ववृन्दे मुदा ।
नृत्यत्यप्सरसागणे च गगने राधाभिषेकोत्सवं
कर्त्तुं ताः सुरसुभ्रुवः सरभसं भव्यास्तमारेभिरे ॥३०२॥

(इति नान्दीमुखीमवेक्ष्य सलज्जम्) ततस्ततः ?

नान्दीमुखी ! तदो पेक्खन्तम्मि साणन्दं वइन्दणन्दणे भअवदीए

कापि युष्मदनामन्त्रणेन शङ्कितहृदया दिव्यमञ्जुषिकया अनुगता प्रियसखी एषा सरस्वती अम्बरे विलम्बते तदाकार्य्यतामिति विज्ञापितया भगवत्या सादरमाकारिता विरिञ्चिपुत्री सरस्वती तत्र प्रविश्य दिव्यमञ्जुषिकां उद्घाटयन्ती भणितुं प्रवृत्ता ॥३००॥

पद्मभुवः ब्रह्मणः प्रणयिनी सावित्री । सौवर्णपट्टं स्वर्णसिंहासनं कुबेरगृहिणी ऋद्धिः । प्रचेतसो वरुणस्य प्रिया गौरी । प्रभञ्जनवधूः शिवा । धूमोर्णा यमप्रिया मत्पाणिना प्राहिणोत् प्रस्थापयामास ॥३०१

अम्बुदभाजि मेघान्तरिते इति तत्र प्रकटीभवितुं पुंसां तेषामयोग्यत्वात् ॥३०२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णिदेसेण ताहिं भुअण-पाअणतरङ्गिणीहिं सङ्गिणीहिं देईहिं तुम्हेहिं सहोहिं सद्धं पुरडपट्टोवरि णिवेसिदाए राहिए दिव्वमहोसहि--रसामिअ--पूरिदेण मणिकुम्भ--णिउरम्वेण महाहिसेअं कुणन्तीहिं वुन्दावणरज्जस्स आहिपच्चं अप्पिम् ॥२०३

चम्पकलता । (सरोमाञ्चम्) तदो तदो ?

नान्दीमुखी । तदो हत्थं उक्खिविअ सरस्सईए सरस्सई पआसिदा । 'एदं तं सोअन्धिअं दामं जं सिणेहेण अम्माए सावित्तीए पहिदं' त्ति सुणिअ देईए एक्काणंसाए तं गेण्हिअ गोउलाणन्दस्स कण्ठे णिक्खित्तम् । तदो णम्म-सुम्हेरमुहीए मिहिरदुहिदाए वाहरिदं, 'अम्महे, धम्मबिम्हारणे कम्मढ़दा वन्धुजणसिणेहाणं, जेहिं विअक्खणा वि अविआरिअ पअट्टेन्ति' त्ति समाअण्णिअ विञ्झवासिणीए भणिदं 'जउणे ! का क्खु तुए अविआरा

ततः प्रेक्ष्यमाणे सानन्दं व्रजेन्दनन्दने भगवत्या निदेशेन ताभिर्भुवनपावनतरङ्गिणीभिः सङ्गिनीभिर्देवीभिः कर्तृभियुष्माभिः सखीभिः सार्द्धं पुरटपट्टोपरि निवेशितायाः श्रीराधाया दिव्यमहौषधिरसामृतपूरितेन मणिकुम्भनिकुरम्बेन महाभिषेकं कुर्व्वतीभिर्वृन्दावनराज्यस्याधिपत्यमर्पितम् ॥३०३॥

"ततो हस्तमुत्क्षिप्य सरस्वत्या सरस्वती प्रकाशिता । इदं सौगन्धिकं दाम यत् स्नेहेन अम्बया सावित्र्या प्रहितमिति श्रुत्वा देव्या एकानंशया तद्गृहीत्वा गोकुलानन्दस्य कण्ठे निक्षिप्तम्" ॥३०४॥

"ततो नर्म्मसुस्मेरमुख्या मिहिरदुहित्र्या व्याहृतं अहो धर्म्मविस्मरणे कर्म्मठता वन्धुजनस्नेहानां यैः स्नेहैर्विचक्षणा अपि अविचार्य प्रवर्त्तन्ते । इति समाकर्ण्य बिन्ध्यवासिन्या भणितम् । यमुने का खलु त्वया अविचारा दृष्टा प्रवृत्तिः तत्श्रुत्वा यमुनया भणितम्" ॥३०५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिट्ठा पउत्ती ?' तं सुणिअ जउणाए भणिदं, 'देइ ! अम्ह-वहिणीए राहिआए पेसिदा सोगन्धिअमाला कीस तुए अप्पभादुणो दिण्णा ?' त्ति सुणिअ विहसन्तीए देईए हरिसेण हरि-कण्ठादो चारुहारेण सद्धं उत्तारिअ तं दिव्वसोअन्धिअमालं पिअसहीकण्ठे णिक्खिवन्तीए ससिदं, 'अइ ! गेण्ह अप्पणो मालं' त्ति ॥६०४–३०६॥ (कृष्णः स्मितं करोति ।)

विशाखा । तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

नान्दीमुखी । 'तदो अलं कठिणहिअअसङ्गिणा अम्हाणं इमिणा हारेण' त्ति हसन्तीए हंसपुत्तीए कोदुएण राहिआए हारो क्खु हारिणि हरिकण्ठे अप्पिदो ॥३०७॥

ललिता । तदो एक्काणंसाए कसारिवक्खत्थलादो गहिदेण कुरङ्ग-णाहिणा राहिआए तिलअं णिम्मिदम् ॥३०८॥

वृन्दा । (सानन्दम्) ततश्च भगवत्या सोल्लासमभ्यधायि,—

सार्द्धं वल्लीवधुभिर्विलसत सुखिनः शाखिनो भूरिफुल्ला
रङ्गं भृङ्गैर्विहङ्गाः प्रथयत पशवः प्रौढ़िमाविष्कुरुध्वम् ।

"देवि अस्मत् भगिन्या राधिकायाः सौगन्धिकमाला कस्मात् त्वया आत्मभ्रात्रे दत्ता इति विहसन्त्या देव्याः कण्ठाच्चारुहारेण सार्द्धं उत्तार्य्य तां दिव्यसौगन्धिकमालां प्रियसखीकण्ठे निक्षिपन्त्या शंसितम् । अयि गृहाण आत्मनो मालामिति" ॥३०६॥

"ततोऽलं कठिनहृदयसङ्गिना अस्माकमनेन हारेण इति हसन्त्या हंसपुत्र्या कौतुकेन राधिकाया हारः खलु हारिणि हरिकण्ठे अर्पितः" । हंसपुत्र्या यमुनया ॥३०७॥

"तत एकानंशया कंसारिवक्षःस्थलाद्गृहीतेन कुरङ्गनाभिना मृगमदेन राधिकायास्तिलकं निर्म्मितम्" ॥३०८॥

सार्द्धमिति नवाधिकारे प्रजानामाश्वासनं वाहिनीनां पतिभिः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आलीभिर्वाहिनीनां पतिभिरुपचिता श्रीमती राधिकेयं
वृन्दामुद्यानपालीं शुचिमिह सचिवीकृत्य वः शास्ति राज्यम् ॥
(इत्यानन्दनिष्पन्दमभिनीय) ॥३०६॥

जग्राह कुन्दलतिकोत्कलिकाशतानि,
पत्रांकुरेण सुमना विरराज चित्रा ।
स्मेरा वभूव ललिता नवमालिकासौ,
फुल्लात्र चम्पकलता च विशाखिकापि ॥३१०॥

ललिता। णन्दीमुहि ! तदा दिणिन्द-णन्दिणोए जं भणिदं तं णूणं तुए विसुमरिदम् ।

नान्दीमुखी । हला, कधं विसुमरिदव्वं, जं एदाए अम्हाणं अन्तिए मन्तिदं, 'अज्ज पहुदी अप्पणो कीलावणे ललिदा-पहुदिश्रो अम्ह-पिअसहीओ सुहेण सच्छन्दं कुसुमाइ ओचिणन्तु ।' तं सुणिअ विञ्झवासिणीए भणिदं 'जउणे ! तहवि माहवस्स

सेनापतिभिः शुचिं सद्गुणवदमात्यं उपधा शुद्धे अमात्ये 'शुचिः उपधा धर्म्मादौ यत् परीक्षणमि'त्यमरः ॥३०६॥

उत्कलिका उद्गतकलिका उत्कण्ठा च सुमना मालती पत्रांकुरेण चित्रा सती विरराज । पक्षे चित्रा सती सुमनाः सुचित्ता पत्राकुरेण पत्रभङ्गेन विरराज । नवमालिका स्मेरा विकसिता वभूव । विशाखिका विगलितशाखापि चम्पकलता फुल्ला वभूव । पक्षे स्पष्टम् ॥३१०॥

"नान्दीमुखि तदा दिनेन्द्रनन्दिन्या यद्भणितं तन्नूनं त्वया विस्मृतम्" । "कथं विस्मर्त्तव्यं यदेतया अस्माकमन्तिक एव मन्त्रितम् । अद्य प्रभृति आत्मनः क्रीड़ावने ललिता प्रभृतयः अस्मत्प्रियसख्यः सुखेन स्वच्छन्दं कुसुमान्यवचिन्वन्तु" ॥३११॥

"तत्श्रुत्वा बिन्ध्यवासिन्या भणितम् । यमुने तदपि माधवस्या-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आअत्ता कुसुमाणां समिद्धि त्ति ॥३११-३१२॥

वृन्दा । (राधामवेक्ष्य सौत्सुक्यम्)

देव्या दत्तविशेषका विरचितोत्तंमा शनेरम्बया
त्वष्टुर्नन्दनया निवद्धकवरा स्वीयालिभिर्म्मण्डिता ।
चञ्चच्चामरया सखि द्युसरिता सौर्य्या च संवीजिता
पुत्र्या पद्मभवस्त्वमुच्छ्रितमणिच्छत्रा न विस्मर्य्यसे ॥

राधा (सलज्जम्) वुन्दे ! विरमेहि ॥३'३॥

कृष्ण: (स्वगतम्)

दृशमधिकदिदृक्षुरप्ययुञ्जं,
विवुधवधूत्रपयाहमानतास्यः ।
हृदि मणिवरविम्विता तदेमां,
सपदि विलोक्य मुदा स्खलन्निवासम् ॥३ ४॥

सुवल: । (अपवार्य्य) अज्जुण ! सा किर महाहिसेअत्थलो राहीए उग्गदप्पमदत्तणेण उन्मदराहि त्ति जणेहिं उग्घुसिज्जइ ॥३१५॥

मधुमङ्गल: । (अपवार्य्यं) पिअवअस्स ! सव्वं सुमरन्तोम्हि ॥३१६॥

राधा । सहि वुन्दे ! गणीअदु अट्ठ-वारिसिओ काणणकरो ॥३१७॥

यत्ता कुसुमानां समृद्धिरिति" । माधवस्य वसन्तस्य कृष्णस्य च ॥३१२

देव्या एकानंशया दत्तं विशेषकं तिलकं शनेरम्बया छायया त्वष्टुर्नन्दनया संज्ञया सौर्य्या यमुनया पद्मभुवः पुत्र्या सरस्वत्या ॥३१३

हृदि स्वहृदि वरमणिः कौस्तुभः ॥३१४॥

"अर्ज्जुन सा किल महाभिषेकस्थली राधाया उद्गतप्रमदत्वेन उन्मदराधेति जनैरुद्घुष्यते" ॥३१५॥

"प्रियवयस्य सर्व्वं स्मरणास्मि नासत्यं प्रगल्भन्ते गोपिकाः" ॥३१६॥

"सखि वृन्दे गण्यतां अष्टवार्षिकः काननकरः" अत्र राधाया व्यक्तयौवने मध्यकैशोराद्य एवाभिषेकप्रकरणादवगतः । श्रीकृष्णस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा । (सस्मितम्) वृन्दावनेश्वरि ! वृन्दशः प्रातिस्विकीर्धवला पालयतामसंख्यानां गोसंख्यानामनन्त एव काननकरः, तत् किं गणनाप्रयासेत ? ॥३१८॥

ललिता । विसाहे ! वुन्दावणचक्कवट्टिणी आणवेदि, गेण्ह हढेण पढ़मं पडुम्मण्णस्स वडुणो मणिमण्डणम् ।

मधुमङ्गलः (अपवार्य्य) भो पिअवअस्स ! णिच्चिदं एत्थ समाहाणं दुक्करं, ता पलाअणं ज्जेअ अम्हाणं सरणम् ॥३१९॥

तु तदानीं शेषकैशोरमेव नित्यं स्थितं तच्च पौगण्डमध्य एवायं हरिर्दिव्यन् विराजत इति भक्तिरसामृतसिन्धूक्तेः पौगण्डवयस्येवाविर्भूतं 'एकादशसमास्तत्र गूढ़ार्च्चिः सबलोऽवसदि'ति श्रीभागवतोक्त्या व्यवस्थापितश्च । ततोऽत्राष्टवार्षिकः इत्यभिषेकानन्तरमष्टौ संवत्सरा व्यतिक्रान्ता इत्युक्तिन संगच्छते तत्र 'व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवमि'ति । 'वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छती'ति श्रीमद्भागवताद्युक्तेऽप्रकटप्रकाशगतैवेऽयं दानलीलेति केचिदाहुः । अन्ये तु 'कदाचित् स्यन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टये'ति दशमप्रमाणेनैव हिन्दोलनदानलीला प्रकटलीलागतापीत्याहुः । तन्मते एकादशसमाव्याप्य गूढ़ार्च्चिः तदनन्तरञ्च प्रकटार्च्चिः सन्नावसदिति व्याख्यया अष्टवार्षिकत्वमुपपाद्यते । यद्वा अभिषेकपूर्व्वतोऽपि केनाप्यगृहीतकराणामेषां करग्रहणमुचितमिति तदानीं कृष्णस्याष्टवर्षवयस्त्वादष्टवार्षिक इत्युक्तमिति ॥३१७॥

धवला गाः प्रातिस्विकीः प्रत्येकवल्लवस्वामिकाः वृन्दशः शतकोटिसंख्या—प्रमाणेन चारयतां गोसंख्यानां गोपानां असंख्यानां संख्यातुमशक्यानाम् । तेनैते सर्व्वस्वमेव संदण्ड्य काननकरैरेव मूल्यभूतैर्भवत्या क्रीता एव कृष्णादयोऽभवन्निति द्योतितम् ॥३१८॥

"विशाखे वृन्दावनचक्रवर्त्तिनी आज्ञापयति गृहाण हठेन प्रथमं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णः। हंहो गोष्ठस्व ! ललितालगुड़ताड़नमाशङ्क्य मा संकुच, पुरस्तादेष सुदर्शनोऽस्मि।

राधा। (कृष्णमपाङ्गेन दरालिङ्ग्य) सुअल ! अलं विलज्जिदेण, काणणकरो उवणीअदु ॥३२०॥

कृष्णः (सस्मितमवेक्ष्य)

एकस्य त्वं प्रभुरसि स तु द्वादशानां वनाना-
मेतच्चाल्पं निखिलजगतीवर्त्तिनामेव देवः।
सामन्तश्रीस्त्वमिति स महामन्मथश्चक्रवर्त्ती
पथ्यं राधे शृणु हठममुं मा कृथास्तस्य शुल्के ॥३२१॥

विशाखा। भो सुअल ! एव्वं होदु। तथावि तस्स उज्जाणचक्कवट्टिणो निदेशवट्टिणा तुह घट्टज्झक्खेण वुन्दावणचक्कवट्टिणीए अम्ह-पिअसहीए काणणकरो कधं मोअइदव्वो ? ॥३२२॥

सुबलः (साभ्यसूयम्) विसाहे ! णिच्चिदं खट्टारूढ़ासि, जं समूढ़-दुम्मद-घुम्मिदा तुमं तत्तं ण जाणन्ती पलवसि ॥३२३॥

पटुम्मन्यस्य वटोर्मणिमण्डनम्"। "भो प्रियवयस्य निश्चितं अत्र समाधानं दुष्करं तस्मात् पलायनमेवास्माकं शरणम्" ॥३१९॥

स्वस्थानस्थः परान् द्वेष्टि यः स गोष्टस्व उच्यते । जुगुप्सित-सौर्य्यतया सम्बोधनं सुदर्शनश्चक्रं सुन्दरश्च ॥

"सुबल अलं विलज्जितेन काननकर उपनीयताम्" ॥३२०॥

सामन्तश्रींस्त्वन्तु मण्डलेश्वरीत्यर्थः ॥३२१॥

"भो सुबल एवं भवतु। तथापि तस्य उद्यानचक्रवर्त्तिनो निदेश-वर्त्तिना तव घट्टाध्यक्षेण वृन्दावनचक्रवर्त्तिन्या अस्मत्प्रियसख्याः कथं मोचयितव्यः" ॥३२२॥

"विशाखे निश्चितं खट्टारूढ़ासि यत् समूढ़दुर्म्मदघूर्णिता त्वं तत्त्व-मजानती प्रलपसि"। खट्टारूढ़शब्दोऽयं जुगुप्सितगर्व्ववद्वाचकः। पक्षे खट्टां आरूढ़ासि घूर्णाकुलासीत्यर्थः ॥३२३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाखा । (सोत्प्रासस्मितम्) किं एत्थ तत्तम् ? कधेहि, सूणिस्सम् ।।३२४।।

सुबलः । किं वित्थरेण, संक्खित्तसारं सुणाहि । जो क्खु महाम्मम्हचक्कवट्टी सो जेव्व णिच्चिदं पिअवअस्सरूवेण वट्टन्तो जाणीअदु । दोणं किर परमत्थदो भिण्णदा णत्थि ।।३२५।।

अर्ज्जुनः । विसाहे ! इदं वि थोअ च्चेअ ; ता सुणाहि । सो किर अस्सुदअरसाहम्मो सम्मोहणमाहुरीभर-णव्वो सव्वोवरि विरेहन्तो पिअवअस्सस्स सअलगोउलवइत्तणेण गोइन्दाहिसेअमहूसवो कस्स वा गव्वं ण क्खु खव्वेदि ? ।।३२६।।

मधुमङ्गलः । (सोल्लासम्) हन्त ललिदे ! सुट्ठु भणादि अज्जुणो ज उअणिसदाहिं वणं क्खु एदं कण्हवणं वण्णिज्जइ ।

वृन्दा । निरधारि पूर्व्वपरयो,–र्न्यायविदग्धैः परविधिर्बलवान् ।
राजनि नवेऽभिषिक्ते, पुरातने कस्य वा गणना ? ।।३२७।।

"किमत्र तत्त्वं कथय श्रोष्यामि" ।।३२४।।

"किं विस्तरेण संक्षिप्तसारं श्रृणु यः खलु महामन्मथचक्रवर्त्ती स एव निश्चितं प्रियवयस्यरूपेण वर्त्तमानो ज्ञायतां द्वयोः किल परमार्थतो भिन्नता नास्ति"। कथापक्षे तस्यातिविश्वासास्पदत्वात् । सिद्धान्तपक्षे महामन्मथस्य तत्स्वरूपशक्तिवृत्तित्वात् इत्यर्थः ।।३२५।।

"विशाखे इदमपि अल्पमेतत् तत् श्रृणु स किल अश्रुतचरसाधर्म्मः सम्मोहनमाधुरीभरनव्यः सर्व्वोपरिविराजमानप्रियवयस्यस्य सकलगोकुलपतित्वेन गोविन्दाभिषेकमहोत्सवः कस्य वा गर्व्वं न खलु खर्व्वयति" ।।३२६।।

"ललिते सुष्ठु भणति अर्ज्जुनः उपनिषद्भिर्वनं खल्विदं कृष्णवनं वर्ण्यते" । उपनिषद्भिर्गोपालतापनीभिः ।।३२७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुमङ्गलः । मुष्णध वाश्रालत्तणम् । अम्ह–पिअवअस्सस्स च्चेअ कन्ताराहीसदा, अदो करहारीहिं तुम्हेहिं राअउलपुरिसा अम्हे झत्ति खण्डकुण्डलिआहिं सम्माणिज्जम्ह ।

कृष्णः । सखे सुबल ! श्यामलमण्डपिकां मण्डय, यदत्र साम्प्रतं शुल्कदासिकाः प्रवेशनीयाः ॥३२८॥

राधिका । हन्त तक्करचक्कवट्टिसामन्त सुअलः ! मह पिअसहीए सामलाए व्वदवेई सामलमण्डविआ एसा कीस तुम्हेहिं घट्टघट्टणेण दूसिज्जइ ? ॥३२९॥

कृष्णः । वक्राणां चक्रवर्त्तिनि ! कृतं राधाचक्रस्य चंक्रमणया, यदेष तरसा दुर्लक्ष्यं मनोऽपि भिन्दता धन्विनां मूर्द्धन्येन महामन्मथेनाधिष्ठितो महाघट्टरङ्गः ॥३३०॥

राधिका (संस्कृतेन)

वक्रत्रिधा त्वमादौ, मध्ये चान्ते च वंशिकारसिक ।
कलकृतजगतीप्रलयो, वक्रेश्वर एव देवोऽसि ॥३३१॥

कृष्णः (किञ्चिद्विहस्य)

"मुष्णथ वाचालत्वं अस्मत्प्रियवयस्यस्यैव कान्ताराधीशता श्लेषेण कान्ताराधीशतेति । अतः करहारीभिर्युस्माभिः राजकुलपुरुषा वयं खण्डकुण्डलिकाभिः संमन्यामहे" ॥३२८॥

"हन्त तस्करचक्रवर्त्तिसामन्त सुबल मत्प्रियसख्याः श्यामलाया व्रतवेदी एषा मण्डपिका कस्मात् युष्माभिर्घट्टघट्टनेन दूष्यते" ॥३२९

चंक्रमणया भ्रमणेन मनोऽपि भिन्दतेति राधाचक्रवेधस्तस्यातिसुकर इति भावः ॥३३०॥

वंशिकारसिकेत्यनेन वंशीवादनकाल एव भङ्गीत्रयोपलब्धेः, वक्रेश्वरस्तन्नाम्ना शिवलिङ्गभेदः, प्रणयकर्त्तृत्वेन साधर्म्यम् ॥३३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाचि कचे भ्रुवि दृष्टौ, स्मिते प्रयाणेऽवगुण्ठने हृदि च ।
त्वामित्यष्टसु वक्रा,-मष्टावक्रायितां वन्दे ।।३३२।।

चम्पकलता । अलक्ख-वङ्किमावि तुमं लक्ख-वङ्किमासि ; ता अप्पणो समाणधम्मिणा जणेण कीलेहि । विसुद्धधम्माणं अम्हाणं इदो जुत्ता गदो ।

कृष्णः । पुण्यवति ! महादानं विना गतिर्दुर्लभा ।।३३३।।

चम्पकलता । सन्तजणाणं सव्वपधीणा गदो पसिद्धा ।।३३४।।

चित्रा । पुरिसुत्तम ! पुण्णसिलोओसि, ता धम्मकम्म-पउत्ताणं अम्हाणं कुण मोक्खणम् ।

कृष्णः । चित्रे ! विचित्रेयमस्य चक्रवर्त्तिनः प्रक्रिया, यत्र धर्म्मेण दुर्ल्लभो मोक्षः, किन्तु कामप्रयोगेण ध्रुवं लभ्यते ।।३३५।।

नान्दीमुखो । सत्थआराण मुणीणं वि अविसंवादिणी एसा रीदो,

अष्टावक्रायितमिति अष्टावक्र ऋषिर्वक्रेश्वरोपासक एवेति वन्दे इति तद्गिरैव मम वक्रेश्वरत्वेन मदुपासकत्वं तव सिद्धमिति तां प्रति साधुवादः ।।३३२।।

"अलक्ष्यवक्रिमापि त्वं लक्षवक्रिमासि तदात्मनः समान-धर्म्मिणो जनेन सह क्रीड़ाविशुद्धधर्म्माणामस्माकं इतो युक्ता गतिः" लक्षवक्रिमा लक्षसंख्यकवक्रत्ववान् ।।३३३।।

"सज्जनानां सर्व्वपथोना गदिः प्रसिद्धा" ।।३३४।।

"पुरुषोत्तम पुण्यश्लोकोसि तद्धर्म्मकर्म्मप्रवृत्तानामस्माकं कुरु मोक्षणम्" ।।३३५।।

"शास्त्रकाराणां मुनीनामपि अविसम्वादिनी एषा रीतिः यदेते कामस्यानन्तरमेव मोक्षं पठन्ति । धर्म्मं किल दूरतः प्रथम कक्षा-रोहणे" धर्म्मार्थकाममोक्षैश्चतुर्व्वर्गं इति अतएव मोक्षं प्रति कामस्यैव सांमुख्यं धर्म्मस्य तु व्यवहितमेवेति भावः ।।३३६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जं एदे कामस्स अणन्तरं च्चेअ मोक्खं पढ़न्ति, धम्मं किर दूरदो पढ़मकक्खारोहणे ॥३३६॥

कृष्ण: (स्मित्वा राधां पश्यन्) हन्त शुल्कक्रीति ! प्रीतिरेव नाथस्य तवाद्य गतिः, तदानन्दय महादानीन्द्रमेनमभीष्टसेवया ॥३३७॥

ललिता। मोहण ! भूरिणा तवोहरेण च्चेअ घट्टीपालस्स दासीत्तणं सिज्झदि, एदाए उण महसहोए तं दुल्लहं जं अतवस्सिणी एसा ॥३३८॥

नान्दीमुखी। णिउञ्जलीलाकुञ्जरिन्द ! ललिदा भणादि, सोलुक्किएण तुए च्चेअ सेआउलेहिं उवासणिज्जा अम्ह-सही। जं एसा सअल-जोव्वणवदीमण्डलचक्कवट्टिणी, ता इमिणा त्रिवरीदेण अलं जप्पिदेण ।

कृष्ण: (सहर्षम्) नान्दीमुखि ! दुरतिक्रमेयं ललिताकृताज्ञा, तदेव सेवितुकामः प्रथमं हृदयङ्गमे शातकुम्भकुम्भे पञ्चशाखपल्लव-मर्पयामि। (इति राधामासादयति।) ॥३३९॥

ललिता। (सभ्रूभङ्गमुपक्रम्य) णाअरम्मण्ण ! झिज्जदु एसा दे दुल्लीलदावल्लरी ॥३४०॥

हे शुल्केण क्रीत क्रीतात् करण पूर्व्वादिति ङीप् ॥३३७॥

"भूरिणा तपो भरेण एव घट्टिपालस्य दासीत्वं सिद्ध्यति एतस्याः पुनर्मम सख्यास्तद्दुर्ल्लभं यत् अतपस्विनी एषा" पक्षे असंतप्ता अदोनेत्यर्थः ॥३३८॥

"निकुञ्जलीलाकुञ्जरेन्द्र ललिता भणति । भूरिणेत्यादि वाचा व्यञ्जयतीत्यर्थः। शौल्किकेन त्वयैव सेवाकुलैरुपासनीया अस्मत् सखी यदेषा सकलयौवनवतीमण्डलचक्रवर्त्तिनी तदनेन विपरीतेन अलं जल्पितेन" ॥३३९॥

"नागरम्मन्य झिज्जतु विश्राम्यतु एषा दुर्ल्लीलतावल्लरी" ॥३४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णः । कृपणे ! विपणायितासौ स्ववशा भवत्या शुल्केन, तदत्र 'विक्रीते करिणि किमंकुशे विवादः ?' (इति मन्दं मन्दं पदं स्पन्दयति ।) ॥३४१॥

ललिता । कण्ह ! अणहिण्णो णासि ललिदा-दुल्ललिच्चाणं, ता किंत्ति अप्पणो माहप्पं पेक्खाविदुं पउत्तासि ? ॥३४२॥

कृष्णः । सुवीरम्मन्ये ! पश्य, विक्रमिणां चक्रवर्त्ती पुरस्तादेव चंक्रमीति; तदलं क्लीवभङ्गकारिणा कृत्रिमभुजङ्गमेनैवामुना मुधाटोपतरङ्गेण । तूर्णं विश्राणय घट्टशुल्कानि ॥३४३॥

ललिता । हन्त घट्टीघण्टाघोसण ! जइ सुलुक्कग्गहे दीहाग्गहोसि, तदा सञ्झाओसरे अम्ह-दुआरं आअच्छेहि, सुट्ठु घणं घोलं दाइस्सम्ह ।

(कृष्णः स्मितं कृत्वा नान्दीमुखीमुखमवलोकते ।) ॥३४४॥

विपणायिता विक्रीता स्ववशा स्वाधीना पक्षे करिणी । किमङ्कुशे इति यदीयं मह्यं विक्रीतैव ततोऽस्य स्पर्शे किं विप्रतिपद्यसे इति भावः ॥३४१॥

"अनभिज्ञो नासि ललिता दुर्ल्ललित्यानां तत् किमिति आत्मनो माहात्म्यं प्रेक्षयितुं प्रवृत्तोऽसि" ॥३४२॥

विश्राणय देहि विश्राणनं वितरणमित्यमरः ॥३४३॥

"घट्टीघण्टाघोषण यदि शुल्कग्रहे दीर्घाग्रहोऽसि तदा सन्ध्यावसरे अस्मद्द्वारमागच्छ सुष्ठु घनं तक्रं दास्यामि" । घनं घोलमिति सर्व्वदिनपर्य्यन्तप्रतिनियतं याचककर्म्मकारादिजनप्रदानावशिष्टतया मन्थनीतलस्थमित्यर्थः । सन्ध्यावसर इति तदानीं सर्व्वजनानुपादेयत्वेऽपि जाताम्लातकतया सलवणं तत् भवतामतिरोचकं भवेदेवेति भावः ॥३४४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नान्दीमुखी । ललिदे ! कामहेणुविन्दवइणो वल्लविन्दस्स घरे किं घणं घोलं वि णत्थि, जं तस्स किदे तुम्हाणं घरे गन्तव्वम् ॥३४५

कृष्ण: । सुदीर्घाक्षि राधिके । फल्गुनि ललिताप्रलापारभटीपटले त्वं निवद्धप्रत्याशा मा खलु शुल्कनिर्यातनाय वैमुख्यमपेक्षिष्ठाः । तदेष सन्निकृष्टो रहस्यं वर्णयामि । (इत्युरसि पाणिमाधित्सति ।) ॥३४६॥

ललिता । दुल्लहफले हठिल्ल ! ललिदाए पुरदो भुअणपाणो गन्धवाहोवि राहीए त्थणम्बरञ्चलस्स प्फसणं वि ण कादुं पहवेदि । एत्थ हत्थं णिक्खेविदुं किदज्झवसाअस्स दे मुद्धदा च्चेअ पज्जवस्सदि ॥३४७॥

कृष्ण: । कृष्णकुण्डलिनश्चण्डि कृतं घट्टनयानया ।

फुत्कृतिक्रिययाप्यस्य भवितासि विमोहिता ॥३४८

ललिता । (संस्कृतेन) कृतं विभीषिकया, यत:,

विलसति सुसिद्धमन्त्रे, मण्डितमतिराहितुण्डिकी ललिता ।

सुकरं मूर्द्धोन्नमनं, न जिह्मगस्यात्र कृष्णस्य ॥

"ललिते कामधेनुवृन्दपते: सर्व्ववल्लवेन्द्रस्य गृहे किं घनं तक्रं नास्ति यत्तत्कृते युष्माकं गृहे गन्तव्यम्" ॥३४५॥

शुल्कनिर्यातनाय शुल्कार्पणाय ॥३४६॥

"दुर्ल्लभफले हठिन् ललितायाः पुरतः भुवनप्राणो गन्धवाहोऽपि राधायास्तनाम्बराञ्चलस्य स्पर्शनमपि न कर्त्तुं प्रभवति । अत्र हन्तं निक्षिप्तुं कृताध्यवसायस्य ते मुग्धतयैव पर्य्यवस्यति" । श्लेषेण मुग्धता आनन्दमूर्च्छा ॥३४७॥

कृष्णकुण्डलिनः कालसर्पस्य । पक्षे कृष्णस्य कुण्डलधारिणः घट्टनया चालनेन फुत्कृतिः फणाग्रस्पर्शाघातः पक्षे चुम्बनं लक्ष्यते ॥३४८

ललिता आहितुण्डिकी व्यालग्राहिणी विलसति सुसिद्धमन्त्रे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णः । नान्दीमुखि ! घट्टाधिकारिणामभिरूपायामप्यनृतवृत्तौ पराङ्मुखी मे दक्षिणस्य रसना, पाणिश्च हठचेष्टायां पृष्ठदायी । तदत्र किं दूषणमासां रामाणां विप्रतिपत्तौ ? ।।३४९।।

ललिता । (सनर्म्मस्मितं संस्कृतेन)

मिथ्या जल्पतु ते कथं नु रसना साध्वीसहस्रस्य या
विम्बोष्ठामृतसेवनादघरिपो पुण्या प्रयत्नादभूत् ।
कस्मादेव वलात् करोतु च करः सोढुं क्षमः सुभ्रु वां
रक्तः सुष्ठु न नीविबन्धमपि यः का वान्यबन्धे कथा ?

कृष्णः । (किञ्चिद्विहस्य) ललिते ! सत्यं भवत्यः कृतपुण्यपुञ्जानां शिरोमणयः, यासां भागधेयसिद्धौषधिनाकृष्टा भगवत्याः पारिपार्श्विका नान्दीमुखीयं प्रत्युपस्थिता ।।३५०।।

ललिता । णान्दीमुहि ! भअवदी-पाएहिं सावेदासि, तुरिअं इदो दूरीहोहि । पेक्खम्ह किं एसो अम्हाणं करेदि ।।३५१।।

नान्दीमुखी । ललिदे ! महासंकडं एदं तुम्हाणं, जं हठिल्लचक्कवट्टिणो हत्थे पड़िदाओ त्थ । ता एत्थ समए परिच्चाओ ण क्खु सिणेहस्स अणुरूवो ।।३५२।।

व्युत्पन्ना अतएव जिम्भगस्य सर्पस्य, पक्षे कुटिलचर्य्यस्य तव मूर्द्धोन्नमनं फणोत्क्रमणं पक्षे चुम्बनाद्यौद्धत्यं लक्ष्यते ।।३४९।।

रक्तः अनुरागी नीव्या बन्धं सोढ़ुं न क्षमः कृपालुतयैव यः शीघ्रं तं बन्धं सोढ़ुं न क्षमते स कथं वलात् करिष्यतीत्यर्थः । अन्यबन्धे कञ्चुलिकादिबन्धे ।।३५०।।

"नान्दीमुखि भगवतीपादैः शापितासि त्वरितं इतो दूरीभव प्रेक्षामहे किं एष अस्माकं करोति" ।।३५१।।

"ललिते महाशङ्कटं एतद्युष्माकं यत् हठिलचक्रवर्त्तिनो हस्ते पतितास्थ । तदत्र समये परित्यागो न खलु स्नेहस्यानुरूपः" । तेन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्ज्जुनः । पिअवअस्स ! जांओ पगब्भाओ सुलुक्के विप्पड़िवज्जन्ति, ताओ तुरएां अम्ह-पुरदो आरिणज्जन्तु त्ति उज्जाणचक्कवट्टिणो सासणं कहं तुए विसुमरिदम् ?

कृष्णः (हर्षमभिनीय) साधु स्मारितमर्ज्जुनेन । हन्त ललिते ! सखायो मे सख्यश्च ते घट्टमेवाधितिष्ठन्तु, त्वन्तु मया सार्द्धमेकाकिनी स्वयं प्रस्थाय निष्कुटचक्रवर्त्तिनः सुष्ठु गोष्ठीगङ्गावगाहनेन खेलय निजलोचनमीनयोर्मिथुनम् ॥३५३॥

ललिता । धम्मधुरोण ! ताए च्चेअ कुलङ्गणाए अप्पणो दोउलं रक्खिदं, जाए पुराणसिलोअमउलिणा तुए सद्धं एकागिणीए णिज्जणे चलिदम् ॥३५४॥

कृष्णः । किं वानया क्षेपिष्ठे घट्टकर्म्मणि दीर्घसूत्रता प्रस्तावनया । प्रसह्य तरसा शुल्कमेवाङ्गीकरवाणि । (इति राधिकामनुसाधयति ।) ॥३५५॥

ललिता । (सोल्लुण्ठं विहस्य) हन्त सोम्म सुउमार ! अत्तणो णेत्तचत्तरे राहिआतणुप्फंस-साहसिअदा तुअम्मि वट्टदि त्ति

यद्यपि त्वया शपथो दत्तस्तथापि मया न शक्यते गन्तुं धर्म्मापेक्षतोऽपि स्नेहापेक्षाया लोके बलवत्वेन दर्शनादिति भावः ॥३५२॥

"प्रियवयस्य याः प्रगल्भाः शुल्के विप्रतिपद्यन्ते तास्तूर्णं अस्मत् पुरत आनीयन्तामिति उद्यानचक्रवर्त्तिनः शासनं त्वया कथं विस्मृतम्" ॥३५३॥

"धर्म्मधुरीन् तयैव कुलाङ्गनया आत्मनो द्विकुलं रक्षितम् । यया पुण्यश्लोकमौलिना त्वया सार्द्धं एकाकिन्या निर्जने चलितम्" ॥३५४॥

कृष्णः क्षेपिष्ठे क्षिप्रता मे ॥३५५॥

"हन्त सौम्य सुकुमार आत्मनो नेत्रचत्वरे राधिका-तनुस्पर्शसाहसिकता त्वयि वर्त्तत इति सर्व्वथा न प्रत्येति एषा ललितेति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय, ... समिति, करौंदी ... वाराणसी-5

सव्वधा ण पत्तिआएदि। एसा ललिदा त्ति पसिद्धा सिद्धाणु-सासना वल्लवी। ता पेक्खिदुं किदकोदूहला चिट्ठदि वित्थारेहि अप्पणो विक्कम-सव्वस्सम् ॥३५६॥

कृष्णः। (किञ्चिद्विहस्य) नमस्तुभ्यं महाचण्डि! चामुण्डे! नमस्तुभ्यम्। नूनं मुण्डमालाख्यमात्मनो मण्डनं विमुच्य दुर्व्वार-मार-संहाराय गोपिकारूपेणोपस्थितासि ॥३५७॥

विशाखा। सहि ललिदे! विजइणी होहि।

ललिता। (स्मितं कृत्वा स्वगतम्) किदं सुट्ठु संलावविलसिदम्। ता दोण्णं अहिट्ठामिअ-पूरस्स ओगाहणे तित्थं आरम्भि-स्सम् ॥३५८॥

(प्रकाशम्) विसाहे! तत्थ गदुअ णिवेदेहि भअवदीं अम्हाणं वाढं एदं विडम्बणम्।

प्रसिद्धा सिद्धानुशासना वल्लवी तत् प्रेक्षितुं कृतकौतूहला तिष्ठति सुष्ठु विस्तारय आत्मनो विक्रमसर्व्वस्वमिति" सर्व्वमेतद्व-चनडाम्बर्य्यं ललितायाः। एतेनैवोपाधिना श्रीकृष्णबलात्कारमाशा-सानायाः स्वसख्याः वाम्यरूपप्रौढ़िरक्षार्थमेव अन्यथा चिरादासन्न-कान्तायाः प्रतिक्षणमनुभूतरूपगुणनर्म्मोद्रकायाः सहसैवात्यौत्सुक्य-चुलुकितधैर्य्यपुञ्जत्वे दाक्षिण्यमयः प्रकट एव उत्मादोऽपि संभाव्येत सच दानघट्टविवादवचनसमरप्रतिकूल एवेति ॥३५६॥

किञ्चिद्विहस्येति प्रायोऽज्ञानसूचक एव हासः सच युष्मत् सखी चापल्यप्रकटोत्थापनपूर्व्वकं तत् प्रौढ़िध्वंसकस्वविजयेच्छोर्मम प्रसभो नाभिप्रेत इति तदाज्ञापयति चेति ॥३५७॥

"सखि ललिते विजयिनी भव"। "कृतं सुष्ठु संलापविलसितम्। तद्द्वयोरभीष्टामृतपूरस्यावगाहने तीर्थमारप्स्ये" ॥३५८॥

"विशाखे तत्र गत्वा निवेदय भगवतीं अस्माकं वाढ़मिदं विड़-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नान्दीमुखी। (स्वगतम्) एसा भअवदी माहवीमण्डवन्तरिदा पेक्खन्ती सव्वं सुणादि ॥३५९॥

(प्रकाशम्) ललिदे ! भअवदी क्खु गोउलेसरीए पासे वट्टदि।

राधिका (सपरिहासं विहस्य जनान्तिकम्) हला ललिदे ! अप्पणोदि भुइट्ठो अम्हेसु तुम्ह–सिणेहो अज्ज च्चेअ सुट्ठु पच्चक्खीकिदो, जं घट्टआलदो जादं अम्हाणं जादणं तत्थ अप्पसमप्पणेण मोआविदुं उवक्कमन्ती तुमं इङ्गिदेण लक्खीअसि, ता धण्णासि ॥३६०॥

ललिता। अइ सूरव्वदेक्कविस्सुदे ! असमवाणीसमरे च्चेअ सच्चं कुसलम्हि, तुमं उण असमवाणसमरे, जं पुणो पुणो दिट्ठपुरिसआर–सोट्ठव–सारासि। ता पसीद, कड़क्खजिम्भणवाणेण णं महावीरम्मणं जिम्भअन्ती क्खणं एत्थ चिट्ठ। अम्हे थोअं अगदो गदुअ पड़िवालेम्ह तुमम् ॥३६१॥

स्वनं" "एषा भगवती माधवीमण्डपान्तरिता सर्व्वं शृणोति" ॥३५९॥

"ललिते भगवती खलु गोकुलेश्वर्य्या पार्श्वे वर्त्तते"। "हला ललिते आत्मनोऽपि भूयिष्ठः अस्मासु युष्मत्स्नेहः अद्यैव सुष्ठु प्रत्यक्षीकृतः। यत् घट्टपालात् जातां अस्माकं यातनां तत्र आत्मसमर्पणेन मोचयितुं उपक्रामन्ती त्वं इङ्गितेन लक्ष्यसे तत् धन्यासि"। इङ्गितेनेति सहसैव चण्डिममान्थर्य्यं तव कारणं अन्यच्च दुर्व्वारमारसंहाराय गोपिकारूपेणोपस्थितेति त्वां प्रति यदैव कृष्णेनोक्तं तदैव सहि ललिते विजयिनी होहीति विशाखया तत्र मारसंहारे विजययुक्ता भवेति भङ्ग्या त्वयि परिहास एव व्यञ्जितस्तत् श्रुत्वा त्वया स्मितमेव कृतं नतु तां प्रति किञ्चित् प्रत्युक्तं इति तत्र तवाभिलाषोऽवगत इति ॥३६०॥

"अयि सूर्य्यव्रतैकविश्रुते" पक्षे वीरव्रताख्याते "असमवाणीस-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधिका । (सप्रणयाभ्यसूयम्) अवेहि अप्पणो आआरसंगोवणे-क्कदक्खे ! अवेहि । दाणिं ज्जेअ पेक्खिस्सम् ।

कृष्ण: । (स्वगतम्) सम्प्रति मन्थरितचण्डिमेव संलक्ष्यते ललिता । (प्रकाशम्) साधु साधु ललिते ! समयाभिज्ञासि, यदद्य मुधा विवादघटां विघटय्य घट्टमधितिष्ठसि ॥३६२॥

ललिता । छलकेलिछइल्ल ! एसो हठिल्लदा-लउड़ीमेत्त-ओट्टम्भणो बल्लवाणं गणो विअ ण क्खु सारग्गाहिणीणं वल्लवीणं गणो ॥३६३॥

विशाखा । (संभ्रममभिनीय) ललिदे ! महापमादो महापमादो ।

ललिता । कीदिसो एसो ?

विशाखा । अइ कलहलोलुहदा-विम्हारिदधम्मे ! विरमेहि । तेहिं जण्णिएहिं संदिसिअ पेसिदं अम्हाणं जं हवणिज्जं हेअङ्गवीणं हरन्तीहिं तुम्हेहिं कुलङ्गणाणं कुलकण्णआणं वा दूसणआरिणि

मरे एव सत्यं कुशलास्मि त्वं पुनरसमवाणसमरे यत् पुनः पुनर्दृष्ट-पुरुषकारसौष्ठवसारासि तत् प्रसीद कटाक्षजृम्भणवाणेन एनं महा-वीरम्मन्यं जृम्भयन्ती क्षणमत्र तिष्ठ वयमल्पमग्रतो गत्वा प्रतीक्षामहे त्वाम्" । सूर्य्यव्रतेति तव सूर्य्यव्रतारम्भस्य कारणं प्रयोजनं च सर्व्वं जानन्त्येवेति भावः । असमवाणी वक्रवाग्विलासः असमवाणः कन्द-र्पश्च पुरुषकारः पुरुषार्थसाधकत्वं पुरुषायितत्वञ्च ॥३६१॥

"अपेहि आत्मन आकारसंगोपनैकदक्षे अपेहि इदानीमेव प्रेक्षिष्ये" ॥३६२॥

"छलकेलिविदग्ध एष हठिल्लता लगुड़ोमात्रावष्टम्भनो वल्लवानां गण इव न खलु सारग्राहिणीनां वल्लवीनां गणः" ॥३६३॥

"ललिते महाप्रमादो महाप्रमादः" । ललिता "कीदृश एष" । विशाखा "अयि कलहलोलुपता विस्मारितधर्म्मे विरम । तैर्याज्ञिकैः संदिश्य प्रेषितं अस्माकं यत् हवनीयं हैयङ्गवीनं हरन्तीभिर्युष्माभिः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामिजणे दिट्ठि-क्खेवोवि सव्वधा ण कादव्वो। (इति नासिकाग्रे तर्जनीमासज्य) हद्धी हद्धी, तुए उण उम्मत्ताए मोहेण मोहं जेव्व जप्पन्तीए वहुआलं वअणं वि संमीसिदम् ॥३६४॥

ललिता। (विषादमभिनीय) विसाहे! सुट्ठु कधेसि, सव्वं मुद्धाए मए विसुमरिदम्। ता चिन्तेहि एत्थ किंपि णिक्किदम्।

वृन्दा। (विहस्य) यज्ञपुरुषस्य विष्णोरनुस्मरणमेव मुनयः सर्व्वाघविध्वंसनं व्याहरन्ति, ततः स्मर्य्यतामसौ। (ललिता 'विण्णु विण्णु' इति कीर्त्तयन्ती नासिकामभिस्पृश्य कर्णं स्पृशति।) ॥३६५॥

कृष्णः (सस्मितम्) ललिते! सत्यं विदूषितासि, तदत्र तरसा सन्निधेहि। सद्य एव दोषास्पृष्टां करवाणि भवतीम्। (इत्यनुसृत्य भुजाश्लेषं नाटयति।) ॥३६६॥

ललिता। (ससाध्वसमपसृत्य सनिर्व्वेदमिव) हन्त हन्त, परकलत्तमिलावण-विलास-साहसिएण कुलबालिआहं प्फसणे दूसिदम्हि।

राधिका (स्मितं कृत्वा) ललिदे! अम्ह-सङ्गादो तुएणं अवेहि, जं रदहिण्डअ-प्फंस-कलङ्किदासि ॥३६७॥

कुलाङ्गनानां कुलकन्यानां वा दूषणकारिणि कामिजने दृष्टिक्षेपोऽपि सर्व्वथा न कर्त्तव्यः"। "हा धिक् हा धिक् त्वया पुनरुन्मत्तया मोहेन मोघमेव जल्पन्त्या वहुकालं वचनसंमिश्रितम्" ॥३६४॥

"विशाखे सुष्ठु कथयसि सर्व्वं मुग्धया मया विस्मृतम्, तच्चिन्तयात्र किमपि निष्कृतम्" ॥३६५॥

दोषैरस्पृष्टां पक्षे दोषा भुजेन स्पृष्टाम् ॥३६६॥

"हन्त परकलत्रम्लापनविलाससाहसिकेन कुलबालिकाहं स्पर्शे दूषितास्मि"। स्मितमिति मदङ्गस्पर्शयितुकामयैवानया स्वस्पर्शपरा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता। अइ ! विणोदं कुणन्तीए अलिअं च्चेअ एदं भणिदं मए। कुदो मादिसीए पइव्वदासिहण्डिणीए प्फंस–महासाहसे एसो भुअ–भुअङ्गमो उत्थादुं पहवेदु ? ॥३६८॥

राधा। अइ असच्चभासिणि ! विण्णादं विण्णादं, चिट्ठ चिट्ठ। किदब्भुत्थाणाइं तुह तणुरुहाइं च्चेअ सक्खित्तणं तण्णन्ति ॥३६९

ललिता। रअणारीअ ! सुट्ठु क्खुहिदम्हि, जं तुए दूसिदं मं सहीओ ण प्फंसन्ति। अदो 'न दुःखं पञ्चभिः सह' त्ति भणिदी जधा पअडीहोदि तधा करेहि।

कृष्णः। चम्पकलते ! पयोधरोल्लेखि–दीर्घशाखोऽयं तमालः, तदेनमालम्ब्य परिफुल्ला भव ॥३७०॥

चम्पकलता। (सकम्पं किञ्चिदपसृत्य) छइल्ल ! पुणो वि ललिदं जेव्व मिलाणं करेहि, जं 'न शयानः पतत्यधः' त्ति वअणं सुणीअदि।

भवोऽपि प्रथमं स्वीकृतमित्यभिप्रायात्। ललिते "अस्मत् सङ्गात् तूर्णमपेहि यत् रतहिण्डकस्पर्शकलङ्किताासि,' रतहिण्डकः स्त्रीचौर॥ ६७

"अयि विनोदं कुर्व्वत्या अलिकमेव इदं भणितं मया कुतो मादृश्याः पतिव्रता शिखण्डिन्याः स्पर्शमहासाहसे एष भुज–भुजङ्गम उत्थातुं प्रभवतु" ॥३६८॥

"अयि असत्यभाषिणि विज्ञातं विज्ञातं तिष्ठ तिष्ठ। कृताभ्युत्थानानि तव तनुरुहाण्येव साक्षित्वं तन्वन्ति" ॥३६९॥

"रतनारीक सुष्ठु क्षुभितास्मि यत् त्वया विदूषितां मां सख्यो न स्पृशन्ति। 'अतो न दुःखं पञ्चभिः सहे'ति भणितिर्यथा प्रकटीभवति तथा कुरु" ॥३७०॥

"छविल पुनरपि ललितामेव म्लानां कुरु। न शयानः पतत्यधः इति बचनं श्रूयते" "अपि नाम प्रियसखीं विशाखां कठिनोरुपञ्च-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता । अवि ग्गाम पिअसहीं विसाहं कढिणोरु-पञ्च-साहोवसोहिदं अइरादो पेक्खिस्सम् ॥३७१॥

कृष्ण: । विशाखिके ! तरुणालिङ्गिता सुच्छाया भव, तदितश्चम्पकलतेव मा भङ्गमुपयासीः ।

विशाखा (तूर्णमपसर्पन्ती) कलङ्किणि ललिदे ! कधं 'विदूषयति निर्लज्जः स्वयं दुष्टः परानपि' त्ति वअण-पमाणं कादुं पउत्तासि ? ता सुप्पअड जेव्व दे आऊदम् । अल अलिएण विलक्खणभावेण । दिट्ठिआ चिन्ताउलासु अम्हेसु अतक्किदं सुलुक्कस्स योग्गा किदासि तुमं देव्वेण । (ललिता किञ्चिदपसृत्य तं प्रेक्ष्य हगञ्चलं कुञ्चयति ।) ॥३७२-३७३॥

कृष्ण: । (स्मित्वा राधां दिधीर्षन्) विलोलाक्षि ! ललिता-लोचनभङ्गीवात्यया वाढमान्दोलितपाणिपल्लवोऽस्मि, तदद्य नारोपय सभ्ये मयि साभ्यसूयं चक्षुः ॥३७४॥

राधा । (ससाध्वसं विशखामनुसरन्ती) सहि ! परित्ताहि अत्ताणअं च्चेअ, जं राहाए मालिण्णे विसाहा मलिणा भणीअदि ॥३७५॥

शाखोपशोभितां अचिरात् प्रेक्षिष्ये" । पक्षे पञ्चशाखः पाणिः कठिनः इति पुरुषपाणेः काठिन्यं सल्लक्षणमेव ॥३७१॥

तरुणा वृक्षेण पक्षे तरुणेन मया यूना । सुच्छाया पक्षे सुकान्तिः ॥३७२

"तत्सुप्रकटमेव तवाकूतं अलं अलिकेन विलक्षणभावेन दिष्ट्या चिन्ताकुलासु अस्मासु अतर्कितं शुल्कस्य योग्यकृतासि त्वं देवेन" ॥३७३

सभ्ये इति त्वत्सख्या यदभिप्रेतं अनुतिष्ठामि तत्तवैवेति विचारयेति भावः ॥३७४॥

"सखि परित्राहि आत्मानमेव यद्राधाया मालिन्ये विशाखा मलिना भण्यते" राधा-विशाखयोरैक्यादिति ललितायां वहिरङ्गत्वं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता । अइ गन्धव्विए ! धुत्तमउलिणा लुब्धएण अणुद्दुदा तुमं कीस णं पञ्चमुहीं मुक्किअ एक्कं कुरङ्गिअं सरणं गच्छसि ? ता मह अङ्कं अलङ्करेहि, तुरिअं सङ्काउलो भविअ पलाएदु एसो ।।३७६।।

राधिका । (कुतुकेन भूरिणा भ्रूभङ्गेनाधिक्षिपन्तीव सनर्म्मस्मितं संस्कृतेन)

विश्रम्भघातिनि चिरादुपरुध्य शुद्धा,
विश्रम्भतस्त्वमिह नः स्वगृहादनैषीः ।
लोभाद्व्रतं यदि निजं व्यधुनोस्तदस्तु,
किं दूषयन्त्यपि सतीस्तपसे न देवि ? ।।३७७।।

ललिता । हद्धी हद्धी । सहि वुन्दे ! भणाहि, कधं सुद्धा हुविस्सम् ।

वृन्दा । ललिते ! कृतमेतया चिन्ताचर्य्यया । निकुञ्जमहातीर्थे रतिवल्लभजागर्य्याव्रते प्रारब्धे का तावदघस्य सम्भावनापि ?

कृष्णः । केलिकुतूहलितया कुतः स्वकर्म्मणि मन्थरोऽस्मि, यदद्य शुल्कार्थमुद्यमः खलु साधीयान् ।

प्रकटमर्पयति ।।३७५।।

"अयि गान्धर्व्विके धूर्त्तमौलिना लुब्धकेन अनुद्रुता त्वं कस्मादेनां पञ्चमुखीं त्यक्त्वा एका कुरङ्गिकां शरणं गच्छसि तन्ममाङ्कं अलंकुरु त्वरितं शङ्काकुलो भूत्वा पलायतु एष" । गन्धर्व्वः सरभो रामः सृमरो गवयः शश इति गन्धर्व्वः प्रकृष्टपशुविशेषः तस्य पत्नी गान्धर्व्विका । पक्षे हे गान्धर्व्विके लुब्धकेन मृगयुना लोभिना च । पञ्चानां सखीजनानां मध्ये मुख्यां पञ्चमुखीं ललितां पक्षे सिंहभार्य्याम् ।।३७६।।

विश्रम्भो विश्वासः ।।३७७।।

"सखि वृन्दे भण कथं शुद्धा भविष्यामि" ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नान्दीमुखी। ललिदे ! पेक्ख, पच्चासीददि मज्झण्हो। ता कधो-अदु केत्तिओ सुलुक्को तुम्हाणं सम्मदो ॥३७८॥

ललिता। हन्त दाणिन्द ! जइवि अम्हाणं पञ्चपाइआ च्चेअ एत्थ जुत्ता, तहवि तुम्ह-मुहं अवेक्खिअ एसा मणिमुद्दिआ उवणीदा। (इति चित्रांगुलेराकृष्य मुद्रिकां पुरस्तादुपन्यस्यति।)

कृष्णः। (सव्याजामर्षम्) सखे ! क्षिप्र क्षिप्यतामद्रिमूर्द्धनि क्षुद्रेयं मुद्रिका। (सुबलः प्रक्षेपमुद्रामभिनीय मुद्रिकां करे सङ्गोपयति।) ॥३७९॥

ललिता। (सरोषम्) वुन्दे ! दिट्ठं तुए जं दुल्लहा मणिमुद्दिआ पक्खित्ता।

नान्दीमुखी। हला, जह तस्स णअणिहीणं अहिवइणो कुवेरस्स महाचिन्तामणिमणीसिदेण सादर-पसारिदे हत्थे फुट्ट-कपद्दिआ-णिक्खेवो, तह जेव्व एसो तुम्ह ववहारो ॥३८०॥

ललिता। (स्वगतम्) दोणं सुट्ठु उक्कण्ठदाणं आसासणं भङ्गीए करिस्सम्। (इति परिक्रम्य जनान्तिकम्) हला राहि ! जधारिहं दाणं विणा दुल्लहं अम्हाणं इदो पत्थाणं ; ता तुह

"ललिते पश्य प्रत्यासीदति मध्याह्ने तत् कथ्यतां कियान् शुल्कः युष्माकं सम्मतः" ॥३७८॥

"हन्त दानीन्द्र यद्यप्यस्माकं पञ्चपादिका एवात्र युक्ता तदपि युष्मन्मुख अपेक्ष्य एषा मणिमुद्रा उपनीता"। पादिका चत्वारिंशत्कपर्द्दिका ॥३७९॥

"वृन्दे दृष्टं त्वया दुर्लभा मणिमुद्रिका प्रक्षिप्ता" "यथा तस्य नवनिधीनां अधिपतेः कुवेरस्य महाचिन्तामणिमनीषितेन सादर-प्रसारिते हस्ते छिद्रकपर्द्दिकानिक्षेपस्तथैवैष युष्मद्व्यवहारः" ॥३८०॥

"द्वयोरुत्कण्ठतयोराश्वासं भङ्ग्या करिष्ये" "हला राधे यथार्थं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कण्ठ–ट्ठिदं हारं च्चेग्र सुलुक्कीकरेम्ह । (इति वलादिव हार-मुत्ताय्र्यं सनर्म्मस्मितम्) उक्कण्ठिदे ! कीस ग्रघोरासि ? एसा णिसिट्ठत्था मोत्तिग्रावली दूदी कण्हं ग्रलंकादुं चलिदा, ता ग्रहिसारे सज्जा होहि । ३८१–३८२॥

राधिका । ग्रइ संभोग्र-संरम्भिणि ! ग्रलं इमिणा दम्भ–गम्भीरि-मारम्भेण । एत्थ विबाद–महामहे ग्रदक्खिणावि तुमं दक्खि-णासि णिम्मिदा पणएण सहीहिम् ॥३८३॥

ललिता । (कृष्णमवेक्ष्य) घट्टणाह ! एसा ग्रणग्घा मोत्तिग्रा-वली मए उपणिहीकिदा । ग्रदोपदोसे सुव ण्णोवणएण पुणो तुग्रत्तो मोग्रावइदव्वा ।

कृष्ण: । (सहर्षं हारमादाय स्वगतम्) सोऽयं शङ्खचूड़स्य चूड़ा-मणिरेव नायकीकृतोऽस्ति, य: सानुकम्पमार्य्येण प्रलम्बरिपुणा राधिकायं प्रसादीकृत: । तदनेन ममाधुना प्रत्याशावीजस्यांकुरा-वस्थता विस्तृता । (इति हारेण स्वकण्ठं प्रसाधयति ।) ॥३८४

दानं विना दुर्ल्लभं अस्माकमित: प्रस्थानं तत्तव कण्ठस्थितं हारमेव शुल्कीकुर्म्म:" ॥३८१॥

"उत्कण्ठिते कस्मादघीरासि एषा निसृष्टार्था मौक्तिकावली दूती कृष्णं अलं कर्त्तुं चलिता" ।'विन्यस्तकार्य्यभारा या द्वाभ्यामेकतरेण वा । युक्त्योभौ घटयेदेषा निसृष्टार्था निगद्यते' । "तदभिसारे सज्जा भव" ॥३८२॥

"अयि संभोगसंरम्भिणि अलमनेन दम्भगम्भिरिमारम्भेण अत्र विवाद-महामखे अदक्षिणापि त्वं दक्षिणा निर्म्मिता प्रणयेन सखीभि:" ॥३८३॥

"घट्टनाथ एषा अनर्घा मौक्तिकावली मया उपनिधीकृता" । 'पुमानुपनिधिर्न्यास' इत्यमर: ।"अत: प्रदोषे सुवर्णोपनयेन पुनस्त्वत्तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधिका । (जनान्तिकम्) ललिदे ! पेक्ख भाअधेअं तवस्सिणीए मोत्तिआवलीए ।

ललिता ।

तुह णिसेविअ उण राहि, त्थणसम्भुं मोत्तिआवली सुद्धा ।
हरिणो विहरइ हिअए, तुह कहणिज्जो कहं महिमा ? ॥३८५॥

राधिका । कुडिले ! अलं पलावेण । पेक्खीअदु इदो वि पउरं भंगुराए भमर-कलङ्किदाए वणमालाए सोहग्ग-लीलाइदम् (इति संस्कृतमाश्रित्य) ॥३८६॥

विशुद्धाभिः सार्द्धं व्रजहरिणनेत्राभिरनिशं
त्वमद्धा विद्वेषं किमिति वनमाले रचयसि ।
तृणीकुर्व्वंत्यस्मान् वपुरघरिपोराशिखमिदं
परिष्वज्यापाद महति हृदये या विहरसि ॥३८७॥

मधुमङ्गलः । कल्लाणि ललिदे ! महाघट्टवालिन्दो तुम्हेहिं आणन्दिदो, ता एसो वुहुक्खिदो एक्काए हेअङ्गवीणगब्भाए गुरुअगग्गरीए काअत्थोवि काअत्थो किज्जउ ॥३८८॥

मोचयितव्या" सुवर्णानां पक्षे सुवर्णायाः राधाया उपनयेन ॥३८४॥

"ललिते पश्य भागधेयं तपस्विन्या मौक्तिकावल्याः" । "तव निषेव्यपुनः राधे स्तनशम्भुं मौक्तिकावली शुद्धा । हरेर्विहरति हृदये तव कथनीयः कथं महिमा" ॥३८५॥

"कुटिले अलं प्रलापेन प्रेक्ष्यतां इतोपि प्रचुरं भंगुराया भ्रमर-कलङ्किताया वनमालायाः सौभाग्यलीलायितमिति" । तस्या मत्सम्बन्धः कोऽस्तीति वृथा श्लाघया मां पीड़यसीति भावः ॥३८६॥

विशुद्धेति महाभावोन्मादेन मादनो नामायम् । यदुक्तं 'अत्रेर्ष्यया अयोग्येऽपि प्रवलेर्षा विधायिता' ॥३८७॥

"कल्याणि ललिते महाघट्टपालेन्द्र युष्माभिरानन्दितः तदेष वुभुक्षितः एकया हैयङ्गवीनगर्भया गुरुतरगगर्य्या कायस्थोऽपि कायस्थः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाखा । हंहो लोलुह ! मा क्खु एव्वं भणाहि, सत्ततन्तुणो किर हेअङ्गवीण एदम् ॥३८९॥

मधुमङ्गलः । विसाहे ! धण्णाओ क्खु जण्णिअ-बम्हणीओ, जाहिं अप्पघरस्स वि तं अङ्गिरस-सत्तं उवेक्खिअ तस्स सुट्ठु मिट्ठण्णेहिं सव्वे वक्षआ भुञ्जाविदा । तुम्हेहिं उण परघरस्स सत्ततन्तुणो जोग्गेहिं वि णअणीदेहि णवतन्तुओ वि एक्को एसो वि ण भुञ्जावीअदि ।

कृष्णः । ललिते ! यदेष महाघट्टेश्वरस्य ममोपहाराय हारो निसृष्टस्तदतीव सम्यगनुष्ठितम् । साम्प्रतमुद्यानचक्रवर्त्तिनोऽप्यभीष्टशुल्केन सपर्य्या पर्य्यालोच्यताम् ॥३९०॥

ललिता (सप्रणयरोषम्) तुए जाणिअ पत्तम्हि, ता ण क्खु अजुत्ता एसा विड़म्बण-कदत्थणा ॥३९१॥

क्रियताम्" काये तिष्ठतीति कायस्थः । अधुनायं न काये तिष्ठतीति किन्तु कृतगर्गरीस्थ एव तद्गतप्राणत्वादिति भावः । तेन मत्काये गर्गरीघृतं स्थापयित्वा मज्जीवनमेव स्थापयेति द्योतितम् ॥३८८॥

"हे लोलुप माखल्वेवं भण सप्ततन्तोर्यज्ञस्य किल हैयङ्गवीनमिदम्" ॥३८९॥

"विशाखे धन्याः खलु याज्ञिकब्राह्मण्यः याभिः आत्मगृहस्यापि तत् आङ्गिरससत्रमुपेक्ष्य तस्य सुष्ठु मिष्टान्नैः सर्व्वे वक्षवा भोजिताः । युष्माभिः पुनः परगृहस्य सप्ततन्तोर्योग्यैरपि नवनीतैर्नवतन्तु कोऽपि एक एषोऽपि न भोज्यते" ॥३९०॥

"त्वया ज्ञात्वा प्राप्तास्मि तस्मान्न खलु अयुक्ता एषा विड़म्बनकदर्थना" इति । मया सर्व्वशुल्कतयैव दत्तोऽपि हारस्त्वया स्ववर्त्तनमात्रे पर्य्यवसितः कृतः इति यथा सुखमेवाहमद्य त्वया विड़म्बयितुं प्राप्तेति भावः ॥३९१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नान्दीमुखी। महादाणिन्द ! अप्पणो अहिमदं दाणं दिढ़ं कहिज्जउ, जहा मज्झत्थीभविअ मए परिच्छिज्जइ।

कृष्ण:। नान्दीमुखि ! समाकर्ण्यंताम्, ॥३६२॥

वदितुमधिकमार्य्यपारिषद्यास्तवाग्रे,
कथमुचितमथेष्टं केवलं मे परार्द्धम्।
इह यदि तदभावं वक्षि किं तत्र कुर्य्यां,
भवतु मयि परार्द्धयां न्यस्य शिष्टाः प्रयान्तु ॥३६३॥

नान्दीमुखी। रङ्गिल्लपुंगव ! चित्ता तुम्ह चित्ताणुवट्टिणी, ता एसा च्चेअ सुलुक्काइदा।

कृष्ण:। हन्तोपकण्ठवर्त्तिनी चित्रा, तदसौ नातिदुर्ल्लभा।

(प्रविश्य)

पौर्णमासी। नागर ! नागरीमूर्द्धाभिषिक्त ! यत्र निबद्ध-महास्पृहोऽसि तां किल परार्द्धेनापि दुर्ल्लभामनर्घामेव जानीहि।

कृष्ण: (सापत्रपमभिवाद्य) भगवति ! केवलं शुल्कवित्तानामुपलब्धये गृहीताग्रहोऽस्मि, न तु काकिनीपादमूल्यानां भवद्गोपीनाम् ॥३६४॥

"महादानेन्द्र आत्मनोऽभिमतं दानं दृढ़ं कथ्यतां यथा मध्यस्थीभूय मया परिच्छिद्यते" ॥३६२॥

आर्य्याया: पारिषद्या: पारिषदि साध्व्यो परिषदोऽन्य इत्यत्रण्योऽपि इति जयादित्य:। परार्द्धं एक दश शत सहस्रेत्यादिनामष्टादश यत्र एक संख्योत्तरा: सप्तदशविन्दवस्तिष्ठन्ति। परार्द्धयां परार्द्धमूल्यां पक्षे श्रेष्ठां राधां न्यस्य उपनिधीकृत्य नतु परार्द्धकनकटङ्कान् तयैव प्रयोजनं सिद्धेर्दिति भाव:। 'पुमानुपनिधिर्न्यास इत्यमर:' ॥३६३

"रङ्गिलपुङ्गव चित्रा तव चित्तानुवर्त्तिनी तदेषैव शुल्कोचिता"। चित्रेति पञ्चसु कनिष्ठत्वाच्च सैव नान्दीमुख्या तथा वक्तुं शक्या नतु ललिताद्या: इति भाव: ॥३६४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधिका । भअवदि ! दिट्ठिआ विड़म्बणम्बुरासिणो पारं अम्हेहिं दिट्ठं, जं सअं एत्थ तत्थहोदी समाअदा ।

पौर्णमासी (जनान्तिकम्) ॥३९५॥

दानीन्द्रस्य प्रसभमनुरीकृत्य मानोद्धराणां,
दानं विश्वप्रकटमटवीमण्डलाखण्डलस्य ।
संरब्धानां कलहलहरीलुब्धता-दुर्म्मुखीणां
पातः शातोदरि न भविता किं विड़म्वाम्वुधौ वः ? ॥३९६॥

ललिता । भअवदि ! पेक्ख, 'दुल्लहो हारो अम्हेहिं दिण्णो, तहवि ण मुक्किअम्ह ॥३९७॥

पौर्णमासी । ललिते । पश्य, भवतीनां कलहकूटकषायेण पाटलितचित्तदुकूलः प्रतिकूल इव शिखण्डचूड़स्तिष्ठति, तदद्य विना प्रियोपहारमहार्य्य-संरम्भडम्वरोऽसौ मनस्वी ॥३९८॥

नान्दीमुखी । भअवदि ! आणवेदु, इमाणं मज्झे एदं भारं का क्खु वहिस्सदि ॥३९९॥

"भगवति दिष्टचा विड़म्बनाम्बुराशेः पारमस्माभिर्दृष्टं यत् स्वयमत्र तत्र भवतो समागता" ॥३९५॥

अनुरीकृत्य अनङ्गीकृत्य मानोद्धराणां गर्व्वोन्नतानां शातोदरि हे कृशोदरि ॥३९६॥

"भगवति पश्य दुर्लभो हारोऽस्माभिर्दत्तस्तदपि न मुच्यामहे" ॥३९७॥

पाटलित श्वेतरक्तीभूतम् । एतच्चित्तस्य स्वतः शुद्धत्वात् संप्रति युष्मत्कलहकटुकृतत्वाच्च श्वेतरक्तत्वमित्यर्थः । शिखण्डचूड़ः पिञ्छचूड़ः प्रियस्य वस्तुनः पक्षे प्रियाया उपहारं विना अहार्य्यः त्याजयितुमशक्यः संरम्भडम्वरो यस्य सः मनस्वी वीरः ॥३९८॥

"भगवति आज्ञापय आसां मध्ये एतं भारं का खलु वक्ष्यति"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पौर्णमासी । या पञ्चसु सरोजाक्षी परमाराधिका भवेत् ।
धीरा सैवास्य विज्ञेया धुरीणाराधने धुरि ॥

(ललिता मनागिव स्मित्वा राधिकां पश्यन्ती दृगन्तं कूणयति ।

राधिका चिन्तामिव नाटयन्ती वृन्दा-कर्णमूले लगति ।) ॥४००॥

वृन्दा । भगवति ! वेदिमध्यमेयं निवेदयति 'हन्त विश्ववेदिनि ! प्रपञ्चितचारुचातुरी-चमत्कृति ललितामेवात्र महासङ्कटे निरटङ्कयदालिमण्डलं, केवलमसौ प्रतीक्षायास्तवानुज्ञां प्रतीक्षमाणा समक्षमवतिष्ठते' ॥४०१॥

ललिता । (स्मितं कृत्वा) हिअअ-रअणस्स विजअम्मि संवुत्ते अलं इमाए हठरङ्गरक्खाए ।

पौर्णमासी । नायुक्तमुक्तं ललितया ॥४०२॥

राधिका । (किञ्चिदुच्चैरिव) भअवदि ! पसीद पसीद । इमस्सिं दुरन्तव्वसणे कढोर-घट्टीवालहत्थे मा क्खु कादरो पइदि-दक्खिणो एसो जणो सुलुक्कीअदु । (इति संस्कृतेन) ॥४०३॥

भ्राम्यत्येष गिरेः कुरङ्गकुहरे कृष्णो भुजङ्गाग्रणीः
स्पृष्टो येन जनः प्रयाति विषमां कामप्यसाध्यां दशाम् ।

वोढुं पारयिष्यतीत्यर्थः ॥३९९॥

या पञ्चसु मध्ये परमाराधिका परमाराधनयोग्या भवतीत्यर्थः । पक्षे परः श्रेष्ठः प्रेममयः मारः कन्दर्पस्तेन आराधिका तत्सुखोत्पादयित्री पक्षे श्रेष्ठा राधिका इति ॥४००॥

आलिमण्डलं कर्त्तृ निरटङ्कयत् निरनैषीत् असौ ललिता प्रतीक्षायाः पूज्यायाः । पूज्यः प्रतीक्ष्य इत्यमरः ॥४०१॥

स्मितमिति तदवहित्था समुद्घाटनार्थं "हृदयरत्नस्य विजये सवृत्ते अलमनया हठरङ्गरक्षया" ॥४०२॥

"अस्मिन् दुरन्तव्यसने कठोरघट्टीपालहस्ते मा खलु कातरः प्रकृतिदक्षिण एष जनः शुल्क्यताम्" ॥४०३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाभद्रं न च भद्रमाकलयितुं शक्तास्मि दृष्टिच्छटा-
मात्रेणास्य हताहमिच्छसि कुतः प्रक्षेप्तुमत्रापि माम् ?
(इति लीलया शुष्कं रुदती पादोपकण्ठे लुठति ।)

पौर्णमासी । (भुजाभ्यामाश्लिष्य) वत्से ! मा रोदनं कृथाः । सर्व्व-मिदं ते शुभोदर्कं भविष्यति ॥४०४॥

कृष्णः । भगवति ! सत्यं भागधेयभागस्मि, यदत्र साधीयसि समये तवोपस्थितिर्बभूव । ततः स्वीकृतशुल्कमेवात्मानमवधारयामि । ॥४०५॥

पौर्णमासी (जनान्तिकम्) रामनीयकनिधे ! रमणीमणिरेव तवो-पकण्ठस्थलशोभनीनभूव । किमन्येन फल्गुना शुल्केन ? ॥४०६॥

कृष्णः (सानन्दमात्मगतम्) दिष्ट्या मदभीष्टा शुल्कीकृता भगवत्या राधिका । (प्रकाशम्) भगवति ! सत्यमस्य मेदुर–महाराग-कौमुदीडम्बर–करम्बितस्य रमणीरत्नस्य लब्धये भवत्याः प्रसादवीथिमन्तरेण नान्या युक्तिरभिवर्त्तते ॥४०७॥

पौर्णमासी । (सनर्म्मस्मितम्) नागरेन्द्र ! मया चिन्तामणिरियं प्रस्तुता, भवता तु कान्तामणिरवधारिता ॥४०८॥

कृष्णः । (सलज्जस्मितम्) भगवति ! मद्गिरामप्यत्रैव विश्रान्तिः,

---

भ्राम्यतीति कामपीति असाध्यामिति दृष्टिच्छटामात्रेणेत्यादि-भिस्तद्विषयकः स्वप्रेमैव भङ्ग्या पक्षे व्यञ्जितः ॥४०४॥

साधीयसि समीचीने समये स्वीकृतशुल्कं प्राप्तशुल्कम् ॥४०५॥

रमण्याः श्रीराधायाः मणिः शङ्खचूड़रत्नं हारनायकीभूतं श्लेषेण स्त्रीरत्नं राधैव ॥४०६॥

मेदुरः स्निग्धः महान् राग आरुण्यं प्रेमा च तस्य कौमुदीडम्ब-रेण करम्बितस्य युक्तस्य ॥४०७॥

चिन्तामणिः हारनायकीकृता नतु राधारूपेत्यर्थः । कान्तामणिः कान्तैव मणिरित्यर्थः ॥४०८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदेतस्य ललनाललामस्य सङ्गमे भवत्पारिषद्याः साचिव्यविद्या-सम्पदेव हेतुरासीत् ॥४०६॥

पौर्णमासी । चातुरीविद्यामहोपाध्याय ! कृतं वैलक्ष्यवैभवेन । चिन्तामणिलाभ एवावश्यं कान्तामणि-लाभाय कल्पते । न हि प्रत्युषशोभायामुपस्थितायां भानुजायाः श्रियो विष्णुपदसेवायां व्यभिचरिष्णुता घटते । ततस्त्वमद्य पूर्णोऽसि ॥४१०-४११॥

वृन्दा । पूर्णिमायामुपस्थितायां को नाम कलानिधेरपूर्णताव-काशः ? ॥४१२॥

पौर्णमासी । वृन्दे ! राधामनुरुध्यमानेन विधुनैव मधुरीकृतेयं माध-वीया पौर्णमासी ।

वृन्दा । तदेनं पूर्णमेव पूर्णिमा समक्षमुपलक्षयतु विशाखासख्या ।

पौर्णमासी । वैदग्धाचन्द्रिकाचन्द्र ! वाढमत्र प्रतिभूरभुवम् । सायं

अत्रैव चिन्तामणावेव राधैव चिन्तामणिरिति भावः । लल-नाया ललामस्य भूषणस्य श्लेषेण ललनासु भूषणभूताया राधाया इत्यर्थः । पारिषद्या नान्दीमुख्याः ॥४०६॥

वैलक्ष्यभावेन विस्मितबाहुल्येन । विलक्षो विस्मयान्वित इत्य-मरः चिन्तामणीति यदैवास्या हारः प्राप्तस्तदैवेयमेव प्राप्ताभूदिति भावः ॥४१०॥

भानुजायाः सूर्य्यसम्बन्धिन्याः श्रियः शोभायाः विष्णुपदमा-काशम् । पक्षे भानुजाया राधायाः श्रियः विष्णोस्तव पादसेवायाम् । संहारनामाऽयं सप्तमभङ्गम् । यदुक्तम्–संहार इति तत् प्राहुर्यत्का-र्य्यस्य समापनमिति ॥४११॥

कलानिधेश्चन्द्रस्य पक्षे कृष्णस्य ॥४१२॥

राधां विशाखानक्षत्रं अनुराध्यमानेन चन्द्रेणैव माधवीया वैशाखी तस्यां विशाखानक्षत्रयोगो भवेदेवेत्यर्थः । पक्षे विधुना कृष्णेन । पूर्णिमा कर्त्री विशाखैव सखी तया एनं विधुं उपलक्षयतु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तवाभीष्टमेव शुल्कमर्पयिष्यामि । तदनुमन्वस्व, साम्प्रतममूरध्वरवेदीप्रसाधनाय साधयन्तु ।

कृष्णः (सापत्रपम्) यथाज्ञापयति भगवती ।

पौर्णमासी । सर्व्वानन्दकदम्बमूर्त्ते ! यद्यपि वाढ़मेतया हृदयङ्गमया ते लीलया कृतार्थास्मि, तथापि किमप्यभ्यर्थयितुमिच्छामि ।

कृष्णः (सहर्षम्) भगवति ! शीघ्रमाज्ञापय किं ते भूयः प्रियं करवाणीति ॥४१३॥

पौर्णमासी । निरवद्य-केलिमाधुरी-सुधासिन्धो ! साधीयसि प्रसङ्गे कृता हि प्रार्थना निश्चितमेव फलगर्भिणी भवेदित्यधुना निवेदयामि—

सहचरीकुलसंकुलया गुणै,रधिकया सह राधिकयानया ।
तमिह नर्म्मसुहृन्मिलितः सदा, घटय माधव घट्टविलासिताम् ॥

किञ्च—राधाकुण्डतटी-कुटीरवसतिस्त्यक्तान्यकर्म्मा जनः
सेवामेव समक्षमत्र युवयोर्यः कर्त्तुमुत्कण्ठते ।
वृन्दारण्यसमृद्धि-दोहदपद-क्रीड़ाकटाक्षद्युते
तर्षाख्यस्तरुरस्य माधव फली तूर्णं विधेयस्त्वया ॥

कृष्णः । (सहर्षाभ्युपगमम्) भगवति ! तथास्तु । तदेहि, प्रातिस्विकाभीष्टकृत्याय प्रयाम । (इति निष्क्रान्ताः सर्व्वे ।) ॥४१४॥

पक्षे विशाखायाः सख्या राधया तेन तयोराधामाधवयोस्तत्रैव रहः केलिकुञ्जे ललितादिभिः प्रवेशः कारितः पौर्णमास्या वलादि-सूचितम् । ततः कचित् क्षणान्तरं विरचितदिव्या कल्पौ तावागतौ विलोक्याह वैदग्धीति ॥४१३॥

साधीयसि श्रेष्ठे । वृन्दारण्यस्य तद्वासिमात्रस्यापि समृद्धेर्दोहदपदं अभीष्टो विषयः क्रीड़ाकटाक्षद्युतिरपि यस्य हे तथाभूत ! । तर्षो मनोरथः ॥४१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीश्रीदानकेलिकौमुदी नाम भाणिका समाप्ता ।
प्रथिता सुमनःसुखदा, यस्य निदेशेन भणिका-स्रगियम् ।
तस्य मम प्रियसुहृदः, कण्ठतटीं क्षणमलंकुरुताम् ॥
गते मनुशते शाके चन्द्रस्वर-समन्विते ।
नन्दीश्वरे निवसता भाणिकेयं विनिर्म्मिता ॥

सुमनसः पुष्पाणि सुमनसो भक्ताश्च । तस्य प्रियसुहृदः श्रीराधा-कुण्डवासिनः श्रीरघुनाथदासस्येत्यर्थः ॥

दानकेलिकलेरन्ते राधामाधवयोर्युगम् ।
कामलोभमदाक्रान्तमेकाकारमहं भजे ॥
इति श्रीदानकेलिव्याख्या समाप्ता ।

गोविन्दस्य कृपां वन्दे यस्योद्गमनमात्रतः ।
लोलास्फूर्त्तिः सदा भूयाद्रूपेण सह मोदते ॥
[ग्रथिता सुमनः सुखदा यस्य निदेशेन भाणिका स्रगियम् ।
तस्य मम प्रियसुहृदः कुण्डतटीं क्षणमलंकुरुताम् ॥
गते मनुशते शाके चन्द्रस्वरसमन्विते ॥१४१६॥
नन्दीश्वरे निवसता भाणिकेयं विनिर्म्मिता ॥]

अथ भाणिकालक्षणम् ॥
भाणिकाश्लक्ष्णने पथ्या मुखनिर्व्वहणान्विता ।
भारती कैशिकीवृत्तियुतैकाङ्कविनिर्म्मिता ॥
उदात्तनायिकामञ्जुपुरुषात्राङ्गसप्तकम् ।
उपन्यासोऽथ विन्यासो विरोधः साध्वसं तथा ॥
समर्पणं निवृत्तिश्च संहारश्चापि सप्तमः ।
उपन्यासप्रसङ्गेन भवेत् कार्य्यस्य कीर्त्तनम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्व्वेदवाक्यव्युत्पत्तिर्विन्यास इति कथ्यते ।
भ्रान्तिनाशो विरोधः स्यान्मिथ्याख्यानं तु साध्वसम् ॥
उपालम्भवचः कोपपीड़येह समर्पणम् ।
निदर्शनस्योपन्यासो निवृत्तिरिति कथ्यते ॥
संहार इह तत् प्राहुर्यत् कार्य्यस्य समापनम् ।
शेषं नाटकवज्ज्ञेयं बुधैः प्रस्तावनादिकम् ॥
रूपकं द्विविधं पाठ्यं ज्ञेयश्च , तत्र भाणिकेयं गेयरूपा ॥

अथ दाननिर्व्वर्त्तनकुण्डाष्टकम् ।

नमः श्रीदाननिर्व्वर्त्तनकुण्डाय ॥

स्वदयितगिरिकच्छे गव्यदानार्थमुच्चैः
कपटकलहकेलिं कुर्व्वतो नव्ययूनोः ।
निजजनकृतदर्पैः फुल्लतो रीक्षकेऽस्मिन्
सरसि भवतु वासो दाननिर्व्वर्त्तने नः ॥१॥

निभृतमजनि यस्माद्दाननिर्वृत्तिरस्मिन्
तत इदमभिधानं प्राप यत्तत् सभायाम् ।
रसविमुखनिगूढ़े तत्र तज्ज्ञैकवेद्ये
सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तने नः ॥२॥

अभिनवमधुगन्धोन्मत्तरोलम्बसंघ-
ध्वनिललितसरोजव्रातसौरभ्यशोते ।
नव मधुर-खगालीक्ष्वेलिसञ्चारकम्रे
सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तने नः ॥३॥

हिमकुसुमसुवास-स्फार-पानीयपूरे
रसपरिलसदालीशालिनोर्नव्ययूनोः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतुलसलिलखेलालब्धे सौभाग्यफुल्ले
सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तने नः ॥४॥

दरविकसितपुष्पैर्वासितान्तर्दिगन्ता-
खगमधुपनिनादैर्मोदितप्राणिजाताः ।
परित उपरि यस्य क्ष्मारुहा भान्ति तस्मिन्
सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तने नः ॥५॥

निज निज नवकुञ्जे गुञ्जिरोलम्बपुञ्जे
प्रणयि नव सखीभिः संप्रवेश्य प्रियौ तौ ।
निरुपमनवरङ्गस्तन्यते यत्र तस्मिन्
सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तने नः ॥६॥

स्फटिकसममतुच्छं यस्य पानीयमच्छं
खग-नर-पशु-गोभिः संपिवन्तीभिरुच्चैः ।
निज निज गुणवृद्धिर्लभ्यते द्रागमुष्मिन्
सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तने नः ॥७॥

सुरभिमधुरशीतं यत् पयः प्रत्यहं ताः
सखिगणपरिवीतो व्याहरन् पाययन् गाः ।
स्वयमथ पिवति श्रीगोपचन्द्रोऽपि तस्मिन्
सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तने नः ॥८॥

पठति सुमतिरेतद्दाननिर्वर्त्तनाख्यं
प्रथितमहिमकुण्डस्याष्टकं यो यतात्मा ।
स च नियतनिवासं सुष्ठु संलभ्य काले
कलयति किल राधाकृष्णयोर्दानलीलाम् ॥९॥

इति श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचितं
श्रीदाननिर्वर्त्तनकुण्डाष्टकम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0: In Public Domain, Digitization by eGangotri

भाषा—दानकेलिकौमुदी

गुरु-गौराङ्घ्रिरजसां कृष्णदासेन लिप्सुना।
मयानुवाद्यते सन्तः ! श्रीदानकेलिकौमुदी ॥

गोवर्द्धन की दानघाटी में शुल्क (कर) ग्रहण छल से रोकी हुई श्रीराधा की किलकिञ्चित स्तवकिनी रूप दृष्टि हम सब की शोभा वृद्धि करे जो अन्तर में ईषत् हास्य–निबन्धन से उत्फुल्ल है, जिस के पक्ष्म समूह जलकण से परिव्याप्त है, अन्तःभाग किञ्चित् पाटलवर्ण है, पुनः जो रसिकता के द्वारा उत्सिक्त है, जिसका अग्र-भाग संकुचित है एवं मधुरता के द्वारा जिस की तारा किञ्चित्वक्र है। तात्पर्य–श्रीराधा सखीगण के साथ गोवर्द्धन तट (तरहटी) स्थित मार्ग होकर यज्ञार्थ घृत लेकर जा रही थी, वहाँ दानघाटी में अवस्थित होकर कौतुक करते हुए शुल्क–ग्रहण छल से श्रीकृष्ण-ने मार्ग–रोध किया जिस से कि उस समय कृष्णदर्शन कर श्रीराधा का किलकिञ्चित भाव प्रगट हुआ। गर्व, अभिलाष, रोदन, क्रुद्ध, हास्य, असूया, भय तथा क्रोध ये सात भाव हर्ष के कारण एक ही समय में जब उदित होते हैं तब उस दशा को किलकिञ्चित भाव कहते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण--संदर्शन से हर्षोदय के कारण अन्तर में ईषत हास्य, "कोई देख न ले" इस विवेचना से नेत्र के पांख अश्रु-जल से व्याप्त, जिस से अपने भाव–गोपन हेतु रोदन व्यक्त है। श्री कृष्ण के द्वारा मार्ग-रोध करने पर उन के नेत्रों का अन्तः भाग अरुण वर्ण हो गया जो क्रोध को प्रकट करता है। "रसिकता के द्वारा नेत्र परिवर्द्धित" यहाँ अभिलाष सुव्यक्त हो रहा है, "न जाने क्या होगा।" इस भावना से चक्षुः संकुचित होना भय को व्यक्त करता है। पुनः मधुरता के द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्षुः का तारा जो व्याभुग्न अर्थात् ईषत् वक्र हुआ है उस से गर्व एवं असूया प्रकट हो रहे हैं। स्तवकपक्ष में–"अन्तःस्मेरता" अर्थात् भीतर ईषत् उत्फुल्लता है, "जलकण" इस शब्द से मकरन्द का उद्गम है, "किञ्चित् पाटलिता" इस शब्द से श्वेत एवं अरुण वर्ण का उद्गम होना है, "रसिवता" इस शब्द से मधुर रस का उद्गम है। "कुञ्चति" शब्द से कोरकता "एवं मधुर-व्याभुग्न-तारोत्तारा' शब्द से माधुर्य्य तथा कुटिलाकार व्यक्त हो रहा है ॥ १ ॥

मुरारी श्रीकृष्ण में राधिकानुराग जय प्राप्त हो रहा है जो कि विभु अर्थात् सर्वव्यापक होकर भी क्षण क्षण में वृद्धिशील है, जो गुरु अर्थात् सर्वश्रेष्ठ होकर भी गौरवचर्य्या अर्थात् सम्मानादि से रहित है और जो बार बार वक्रिमा-भाव को धारण करके भी विशुद्ध है ॥ २ ॥

नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार रङ्गस्थल में आकर कह रहा है–अब सविस्तार नान्दिपाठ का प्रयोजन नहीं है ॥ ३ ॥

सूत्रधार—(चारों ओर दृष्टिपात करके) अहो ! मेरी इस मङ्गलाचरणचन्द्रिका से सन्दीपित मनोहर-भाव वाली साधु-मण्डली नन्दीश्वर पर्वत की उपत्यका में अर्थात् निम्नस्थ-भूमि में क्यों भ्रमण कर रही है ? ॥ ४ ॥

(पुनर्वार अवलोकन कर)

कोई भक्त तो लीला-श्रवणजात हर्ष से पुलकित होकर शरीर में प्रफुल्लता का विस्तार कर रहा है, कोई बहुकाल तक श्रीकृष्ण-विच्छेद का अनुभव कर शुष्कवदन एवं विवर्ण होकर विदीर्ण मन हो रहा है, कोई तदाकार-अन्तःकरण-वृत्ति हो जाने पर कृष्ण साक्षात्कार में तत्परिजनत्व-भावना से गर्व-मद एवं हर्ष को धारण कर गर्जन करता हुआ इधर उधर भाग रहा है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई दर्शनानन्द जाड्य-मोह से निष्पन्दता को धारण कर गिरता जा रहा है। अतः श्रीकृष्ण-विलास के उदय होने पर भक्तों की इसी प्रकार दशा होने लगी है ॥ ५ ॥

(क्षणकाल मन में परामर्श कर) हाँ इस का कारण जान गया, यह तो अतिश्रेष्ठ प्रेम मदिरा का उत्सव आडम्बर है ॥६॥

क्यों कि—प्रेमसमूह के उदय होने पर साधुगण अपनी भाववृद्धि एवं विकारों को स्थगित नहीं कर पाते हैं। जिस प्रकार कि-चन्द्रमा के उदय होने पर समुद्र अपनी वृद्धि तथा विकारों को सम्बरित नहीं कर सकता है। दोनों अश्रान्त, गम्भीर, दुरधिगमपार अर्थात् जिन के पार का अधिगम करना असाध्य, असीम अर्थात जिन की सीमा का अवधारण नहीं किया जा सकता एसे हैं। वे साधुगण किसी से अहार्य्य परम-मर्य्यादा तथा श्रीहरि के परमास्पद को धारण कर के भी आज अपनी वृद्धि एवं विकारों का सम्बरण नहीं कर पा रहे हैं।

(पुनः दृष्टिपात करके) हाँ ऐसा ही है। क्यों कि श्रीकृष्ण की केलिचर्य्या विश्वविलक्षण और अतिविमोहिनी है ॥ ७ ॥

(इस प्रकार परामर्श कर मस्तक घूर्णन पूर्वक धैर्य्यावलम्बन कर) अहो ! श्रीराधा के साथ गोपराजनन्दन की प्रेम-प्रवलित मधुर विवाद-गोष्ठी कर्णकुहर प्राप्त होकर आत्मारामगण को भी ब्रह्मानन्द से निवृत्त कर देती है ॥ ८ ॥

(अनन्तर नट प्रवेश कर आनन्द के साथ)

यह नाट्यकला—मुख, प्रतिमुख, गर्व, विमर्ष एवं निर्वहण नामक पञ्च सन्धि को तिरस्कार कर तथा उपन्यास, विन्यास, विरोध, साध्वस, समपर्ण, निवृत्ति एवं संहार इन सात अङ्ग से बलिष्ठ होकर मानो (स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोष, राष्ट्र, दुर्ग एवं वल इन सप्तांग राज्यश्री को भाँति) संस्कृत और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राकृतवाणी युगल से भूषित होकर शोभा प्राप्त हो रही है ॥ ९ ॥

सूत्रधार—भो पाण्डित्य-पारदर्शिन् नटाचार्य्य ! आपने सम्यक् रूप से ज्ञात किया होगा, मैं सुहृदों की अनुज्ञा प्राप्त कर दानकेलिकौमुदी नामक भाणिका का अभिनय करने के लिये उद्यत हो रहा हूँ। इसी लिये यहाँ निज अभीष्ट देवता का स्मरणात्मक मङ्गलाचरण पाठ करता हूँ ॥ १० ॥

(ऐसा कह कर अञ्जलि जोड़ कर)

जिन्होंने नाम के द्वारा रसज्ञों को आकृष्ट किया है, जो अपने चरित्र के द्वारा व्रजराज नन्द एवं साधुओं के आनन्द को उद्दीप्त करने वाले हैं और जिन का रूप चराचर सब को उत्सव प्रदान करता है वे सनातनात्मा अर्थात् नित्य-विग्रहवाले प्रभु श्री-कृष्ण जय युक्त हो रहे हैं। महाप्रभुपक्ष में–जिन की जिह्वा हरिनाम के द्वारा आकृष्ट है, जो अपनी शीलताचरण के द्वारा साधुओं में आनन्द उद्दीपन करते हैं और रूप नामक निज व्यक्ति मुझ में उत्सव-प्रदान करने वाले वे सनातनगोस्वामी जय युक्त हो रहे हैं ॥ ११ ॥

नट— भाव ! (अर्थात् हे सूत्रधार !) देखिये देखिये ! सङ्गीतनिष्ठ तृतीय-ग्राम के अध्यापक आप के गान्धर्वविद्याप्रबन्ध के द्वारा समस्त रसिक-चूड़ामणि मृगधर्म्म का अर्थात् चित्त की एकाग्रता का अवलम्बन कर रहे हैं जो कि आत्म-विषयक अनुसन्धान में असमर्थ हो रहे हैं ॥ १२ ॥

सूत्रधार — प्रकटित -मनोज्ञा -अलङ्कारशालिनी (अर्थात् सङ्गीतनिष्ठ ललित अलङ्कार-युक्त गान्धर्व-गान जिसकी यह भाणिका महाविद्या रसिकेन्द्र-समूह की नान्दीमुखी अर्थात् मङ्गलाभिमुखिणी क्यों नहीं होगी।

पक्षान्तर में—ललिता के द्वारा अलंकृत गान्धर्व्वा अर्थात् श्रीराधा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस से प्रकाशित होगी वह महती विद्यावाली रसिकश्रेष्ठों की मङ्गलाभिमुखिणी क्यों नहीं होगी ॥ (नेपथ्य में)अहे नटाचार्य्य ! यथार्थ कह रहे हो, क्योंकि यह नान्दीमुखी आज रसिक बृन्द चूड़ामणि ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण में गान्धर्व्वविद्या को पक्षान्तर में राधिका को अर्पण कर आनन्दनप्रदायिनी होगी ॥

सूत्रधार—यहाँ बनदेवी बृन्दा सुबल के साथ क्यों आगमन कर रही है। अत एव नाटयविषय में नटों को नियुक्त करने के लिये यहाँ से हम प्रस्थान करें। (ऐसा कह कर सूत्रधार एवं नटाचार्य्य दोनों प्रस्थान करते हैं)॥ १३ ॥

यहाँ प्रस्तावना अर्थात् उपस्थित विषय का प्रस्ताव है। (तदनन्तर सुबल के साथ कथोपकथन करती बृन्दा प्रवेश करती है)

बृन्दा—("अहे नटाचार्य्य ! उत्तम उत्तम" यह पूर्वोक्त वचन कह कर—) भो सुबल ! इस मङ्गलवार्त्ता में तुम को प्रफुल्लमुख क्यों नहीं देख रही हूँ ? ॥ १४ ॥

सुबल—इस प्रसङ्ग में ज्ञानशून्य के कारण मैं मुग्ध हो रहा हूँ अतः स्पष्ट करके कहो ॥ १५ ॥

बृन्दा—आज श्रीराधिका पार्श्वदेश में सखियों से परिमण्डित होकर गुरुजन की अनुज्ञा से गोविन्दकुण्ड के तटवर्त्ति यज्ञ-मण्डप में हैयङ्गवीन (ताजा घी) बेचने के लिये जावेगी। इस बात को ज्ञात कराने के लिये पौर्णमासी के उपदेशानुसार नान्दीमुखी ने गोविन्द के निकट गमन किया है ॥ १६ ॥

सुबल—(आनन्द के साथ) निखिल माधुरी-श्रेष्ठा राधिका आज इस लघु-प्रयोजन के लिये क्यों गुरुजन के द्वारा अनुज्ञता हुई है ? ॥ १७ ॥

बृन्दा— मुनिजनों ने इस कार्य का उपदेश दिया है कि-जिस दिन जिस के द्वारा हवनयोग्य मनोहारी हैयङ्गवीन यज्ञ में उपहारी-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृत होगा उस दिन उस की अभीष्टसिद्धि होगी। यह मख की प्रक्रिया है ॥ १८ ॥

सुबल—किस महान व्यक्ति का यह यज्ञ है ?

वृन्दा—सुविख्यात नाम वाले वसुदेवजी का ॥ १९ ॥

सुबल—मधुपुरी का त्याग कर उन्होंने क्यों इस बन के बीच यज्ञारम्भ किया है ?

वृन्दा—मरे कंस के जीवित रहते किस प्रकार मथुरा में यज्ञ-सिद्धि हो सकती। इसीलिये उन्होंने गर्ग के जामाता भागुरिजी को अपने प्रतिनिधि रूप में नियुक्त किया है ॥ २० ॥

सुबल—स्पष्ट जाना जाता कि यह यज्ञ आभिचारिक है ॥२१॥

वृन्दा—नहीं नहीं, यह शान्तिकर यज्ञ है। जिस में अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय मित्रपुत्र श्रीकृष्ण एवं निजपुत्र बलराम की शान्ति ही फल है।

सुबल—(क्षणकाल चिन्ता करके कौतुक के साथ)॥ २२ ॥ आज प्रियवयस्य श्रीकृष्ण की चिरकाल से हृदयस्थित गुरुतर केलिघट्टाधिकारित्व का अनुरूप दानग्रहण विलास लीला लालसा सिद्धि हुई ॥ २३ ॥

वृन्दा—सुबल ! हम सब के सम्बन्ध में यह दानलीला निधि की भाँति आचरित हो रही है। अतः आओ मानसगङ्गा के तट पर अवतरण करें (ऐसा दोनों करने लगे)॥ २४ ॥

सुबल—मानसगङ्गा के दक्षिणपार्श्व में बन के बीच हंससमूह की ध्वनिघटा का श्रवण करो ॥ २५ ॥

वृन्दा—यह हंस समूह की ध्वनि नहीं है परन्तु पशुपाल-बालाओं की नूपुरध्वनि है। (पुनः आनन्द के साथ निरूपण कर) ॥ २६ ॥

हे सुबल ! दूर से देखो, रक्तवर्ण वस्त्र से आच्छादित मस्तक पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुण्डलाकार वेडा है, उस पर हैयङ्गवीन पूर्ण अचलायमान सुवर्णघट को धारण कर श्रीराधिका सखीगण से परिवृता होकर मानसगङ्गा तट पर स्वेच्छापूर्वक उपस्थित हो रही है ॥ २७ ॥

सुबल—अहो ! चञ्चल स्वभाववाली सहचरियों से बार बार श्रीराधा उद्दीप्ता हो कर अपनी मधुरिमा के द्वारा वृन्दाटवी को उज्वलान्वित कर रही है जिस प्रकार कि इन्द्रधनुलता से जलद-मण्डली मण्डित होती है ॥

वृन्दा--श्रीराधा-रूपमाधुर्य्य-सम्बधी बचनों के उद्देश्य में आकस्मिक भाव का अवधारण कर रही हूँ। (ऐसा कह कर वदन अवनत पूर्वक लज्जा के साथ) ॥ २८ ॥

श्रीकृष्ण ने लज्जा त्याग कर ईर्षावती अथच निजाभीष्ट लक्ष्मी का तृणाज्ञान पूर्वक परित्याग कर मल्लक्षण वृन्दा नामक जन को बहु सम्मान प्रदान किया है वह यह वृन्दा जिस के दासत्व में अवसर प्राप्त नहीं होता, इस पृथ्वी में कौन व्यक्ति उसर ाधा की प्रशंसा करने में समर्थ हो सकता है ॥ २६ ॥

जो भी हो, तो भी अपनी वाणी को सौरभशालिनी करने के लिये किञ्चित्त राधा-सौरभ का वर्णन करूँगी ।

(ऐसा कह कर सुबल के प्रति दृष्टिपात करके) ॥ ३० ॥

श्रीराधा के बलवान मुखमण्डल से चन्द्रमा की अथवा पद्म की सुषमा तिरस्कृत हो जाती है इस प्रकार की प्रशंसा किन अ-पण्डितों से की जाती है। क्यों कि दूर से मुखमण्डल का अनुभव कर विशुद्ध सुधाशालिनी चन्द्रश्रेणी अथवा पद्मश्रेणी अपनी सौन्दर्य्य दर्पश्री का परित्याग पूर्वक विशीर्ण हो जाती है ॥ ३१ ॥

सुबल—उस का यह उत्कर्ष थोड़ा सा है ।

वृन्दा--सुबल ! तुम गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर श्याममण्डप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पीछे शिखण्डमौलि श्रीकृष्ण को ले जाओ। मैं इन गोपाङ्ग-नाओं के मनोहर विलास कौशल को देखने के लिये धीर से जा रही हूं। (ऐसा कह कर सुवल के साथ गमन करने लगी)

अब विष्कम्भक होता है –

(तदनन्तर सखीचतुष्टय से आसज्जिता राधा प्रवेश करती है) ॥३२

राधा--अहो! बनश्रेणी की कैसी नयन-लोभनीयता है। (संस्कृतभाषा का अवलम्बन कर) ललिते! देखो देखो, यह बनश्रेणी, ध्वज-वज्र-अङ्कुश तथा पङ्कजादि चिन्हों से अङ्कित पदपङ्क्ति के द्वारा उज्वल हार ही है और नखर के द्वारा जिसकी विकाशोन्मुख कलिकाएँ छिन्न भिन्न होकर भूतल में गिरी हुई हैं। जिस का अवलोकन कर मेरा अन्तर कम्पित हो रहा है ॥३३-३४॥

ललिता--(हँस कर) विशाखे! देखो देखो, (ऐसा कह कर संस्कृत में) जहाँ कानन में सुधा-सिक्त वेणुमाधुरी के द्वारा पशु-पक्षियों के समस्त शारीरिक कर्मों का विस्मरण होता जा रहा है, उन का मन अतिदृढ़ समाधि (चित्तैकाग्र्य से विरत नहीं हो रहा है ॥ ३५ ॥

राधा--(स्वगत) स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि आज ब्रजेन्द्र-नन्दन अलक्षित-भाव से आकर हैयङ्गवीन उपहरण-कारिणी हम सब के मार्ग का अवरोध करेंगे ॥ ३६ ॥

(प्रकाश्य में) हे सखि ललिते! वर्त्तमान हम सब के इस गमनावसर में कुछ हँसती हुई पौर्णमासी ने क्या कहा है ॥३७॥

ललिता--उन्होंने यह कहा है कि –आज तुम सब का कोई अपूर्वलाभ उपस्थित देख रही हूँ ॥ ३८ ॥

राधा--ललिते! तुम कथा-प्रसङ्ग में महातापसी सर्वज्ञा पौर्णमासी को जिज्ञासा करो ॥ ३९ ॥

ललिता--कैसी जिज्ञासा ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा--नान्दीमुखि आदि ने पूर्वजन्म में कैसा महाव्रत किया है ?

ललिता--तुम ने उन की महाव्रत-कारिता का अवगत किस प्रकार किया ?

राधा--हाय दुःख हाय दुःख, हे मुग्धे ! तुम इस प्रकार जिज्ञासा कर रही हो, जिस का दुर्ल्लभ-गन्धलेश तुम जैसे व्यक्तियों को स्वप्न में भी सुदूर है, उस मन्द मन्द आन्दोलित मकरकुण्डलों की किरण पराग कन्दली से सुन्दर मुखारविन्द का अत्याश्चर्य्य महामाधुरी मकरन्द को जो नेत्र रूप भ्रमरों के द्वारा निरन्तर पान कर रही हैं ॥ ४२ ॥
इसी लिये कह रही हूँ कि-उस परमाभीष्ट अलाभ से दुःख रूप तुषानल से ज्वालायमान हम सब की उस महाव्रत में दीक्षा उपयुक्त है क्यों कि नान्दीमुखि आदि की यह पदवी जिस प्रकार भविष्यत् जन्म में दुर्ल्लभ न होगी ॥ ४३ ॥

विशाखा--राधे ! नान्दीमुखी आदि से तथा गोपकन्यागण से अथवा अविशेष समुदाय गोकुलवासिजन से कोई एक महाव्रतकारिणी महाभागिनी लक्षित हो रही है ॥ ४४ ॥

राधा--(उत्कण्ठा के साथ) हे विशाखे ! निश्चय करके कहो कि वह गुणवती -शिखामणी कौन है ?

ललिता (स्वगत) तुम से द्वितीय व्यक्ति कौन है ?

राधा----सखि ! मैंने जान लिया, जान लिया, सत्य कहती हो, (संस्कृत में) अन्य कोई नहीं है, एक मात्र मुरली की प्रशंसा की जा सकती है क्यों कि उस ने श्रीकृष्ण अधरामृत-माधुरी के पान द्वारा उन्मत्ता होकर केलि रूप मधुरध्वनि कर समस्त गोकुल को व्याकुलित कर लिया है ॥ ४५-४६ ॥

ललिता--(हास्य पूर्वक कहने लगी) सत्य, मुरली गौरवर्णा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, वह अपनी ध्वनि के द्वारा धीरगण के मन को तरलित करती है, पुनः वह उत्तम वंशोत्पन्ना है अर्थात् त्वक्सार प्रयुक्त सार विशिष्टा है। पुनश्च महारसशालिनी एवं माधुर्य्यवर्षिणी है।।४७।। राधापक्ष में-मुरली कूजन के द्वारा जिस का धीरमन चञ्चल हो रहा है, जो गौरी अर्थात् गौरवर्णा है, जो सद्वंशोत्पन्ना है पुनः जो रसिका है और माधुर्य्यवर्षिणी है।। ४७ ।।

राधा—अहे क्यों हँसी करती हो ? आत्मीयजनो के प्रसाद से मन्दभाग्य इस व्यक्ति के द्वारा उनके मुख-मण्डल का दो तीन बार मात्र दर्शन हुआ है। परन्तु स्वभावसिद्ध मादकता प्रयुक्त मधुर माधुरी मधु ने हृदय को उन्मथित कर समस्त विस्मरण कर दिया। अतः ध्यानयोग से भी उन का दर्शन दुर्लभ हो रहा है।।४८

(ऐसा कह कर औत्सुक्य प्रकाश पूर्वक संस्कृतभाषा में) हे कृशोदरि सखि ! हम सब वेणुकुल में जन्म प्राप्त करने के लिये तपस्या करेंगी, वेणुजन्म को सामान्य मत समझो, सब से वेणु जन्म ही उत्कृष्ट है क्यों कि यह मुरली बहु तपस्या के द्वारा मुकुन्द की बिम्बाधर-मधुरिमा को अङ्गीकार कर रसास्वादन कर रही है।।

वृन्दा—(प्रवेश करके) सखि ललिते ! क्यों कथाभिनिवेश से संरब्ध हृदया हो कर इन्द्रध्वजवेदी की पदवी में आरोहण-शील अपने को नहीं जान रही हो ।। ४९ ।।

सब—(मुख फिरा कर) सखि ! सत्य कह रही हो, क्यों कि हम सब गोवर्द्धन पर्वत के पृष्ठदेश में आयी हुई हैं। अतः गोवर्द्धन की दक्षिणदिशा में गोविन्दकुण्ड के तटवर्त्ति मार्ग का अनुसरण करें (ऐसा कह कर वैसा ही करने लगीं)

वृन्दा—(निवारण कर) चम्पकलते ! देख देख ।। ५० ।। विधाता ने निश्चय प्रभु श्रीकृष्ण के परम सन्तोष विधान के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन की निखिल प्रेयसीवर्ग से अत्यद्भुत विविध-माधुर्य्य का आकर्षण कर श्रीराधा का निर्माण किया है। क्यों कि श्रीहरि अन्य नारी स्पृहा का परित्याग कर केवल श्रीराधा में ही रमण करते रहते हैं ॥ ५१ ॥

राधा—(दक्षिण दिशा में दृष्टिपात करके) अहो ! मानस-गङ्गा के प्रफुल्लित कमल-समूह में निपतित भ्रमरों की कलध्वनि की कैसी कोमलता है ? ॥५२ ॥

वृन्दा—(अभिलाष के साथ) अहो सम्मुख में कमलपुञ्ज में मत्त मधुकर का अवलोकन करो, पुष्पपरागों के द्वारा इस के शरीर का उत्तरभाग पीतवर्ण हो रहा है वह बार बार घूँमता हुआ कौतुक पूर्वक मधुकर रमणीसमूह का संरोध कर ध्वनि-धृष्टता के द्वारा मस्तक कम्पन कर बिहार कर रहा है ॥ ५३ ॥

राधा—(स्वगत) निश्चय वृन्दा ने कुछ मन में विचार कर यह कहा है (प्रकाश्य कर) हे वृन्दे ! ये समस्त कुसुमकीड़े भ्रमरियाँ धन्य हैं क्यों कि निरन्तर कान्त के साथ क्रीड़ा करती हैं, सूर्य्योपासका मन्दभागिनी हम सब के सम्बन्ध में दूर से भी क्षण काल कान्त-सन्दर्शन सुदुर्लभ हो रहा है ॥ ५४ ॥
(संस्कृत में) हे सखि ! हमारे दोनों श्रवण माधव-गुणानुबाद का श्रवण नहीं कर रहे हैं। अतः इन का वधिर होना उत्तम है। दोनों नेत्रों ने उन का अवलोकन नहीं किया है। इसी लिये उन का अन्धत्व होना उचित है ॥ ५५ ॥

वृन्दा—हे सखि राधे ! तुमको मन्दगामिनी क्यों देख रही हूँ ?

ललिता—सखि राधे ! तुम तो दिन रात दिव्यलीला के द्वारा विहार करती हो तो भी क्यों निर्व्वेद प्रकाश करती हो ?

वृन्दा—हे राधे ! तुम तो हैयङ्गवीन की भाँति कोमलाङ्गी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो, किस प्रकार हैयङ्गवीन-कलश को वहन कर चल रही हो, बड़े खेद की बात है, तुम्हारे मस्तक में मल्लिपुष्प का अर्पण करने पर व्यथा-बोध होता है, अहो आज उस मस्तक पर कलश देख रही हूँ, कृपा करके मेरे मस्तक पर हैयङ्गवीन-कलसा को अर्पण करो ॥ ५६-५७ ॥

राधा—सखि! कलसी भार मुझे मन्थर नहीं कर रहा है। मेरे मना करने पर भी ललिता ने बलपूर्वक इन भूषणों को पहराया है। अतः अलङ्कारभार से मैं मन्थर हो रही हूँ ॥ ५८ ॥

विशाखा—राधे! कुछ समय अवस्थान करो, मैं भली भाँति भूषण भार को उतार देती हूँ। (ऐसा कह कर यथोचित भूषणों को उतारने लगी) ॥ ५९ ॥

वृन्दा—जब कि अनलङ्कृता श्रीराधा का सन्दर्शन कर चन्द्रावली की सखी पद्मा अति लज्जित हो जाती है तब मणिमय-भूषणरचना की आवश्यकता क्या है ॥ ६० ॥

राधा—हे वृन्दे! इस यज्ञ में हैयङ्गवीन उपहरण-कारिणी हरिणनयना हम सब का सर्वाङ्गयोग्य भूषणसमूह का लाभ होगा मुनिजनों से ऐसा सुना गया है ॥ ६१ ॥

वृन्दा--केवल भूषणों की उपलब्धि ऐसा नहीं परन्तु यज्ञ में घृत लेकर गमन के समय अपनी अभीष्टपूर्त्ति भी। अतः अभीष्टप्रदायक गोवर्द्धनस्थ ब्रह्मकुण्डादि तीर्थों को अञ्जलि बाँध कर प्रार्थना करो (ऐसा सब करने लगीं) ॥ ६२ ॥

चम्पकलता--सखि चित्रे! ब्रह्माण्ड घट के स्रष्टा कमलयोनि ब्रह्मा के कुण्ड के द्वारा गोवर्द्धनशिखर की भूमि दक्षिणदिशा की ओर शोभायमान हो रही है ॥ ६३ ॥

चित्रा--सखि! इसी स्थल पर भक्तवत्सल हरिराय नामक नारायण-मूर्त्ति निवास कर रही है ॥ ६४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा--देखो देखो, हे सखि ! यह गोवर्द्धन बहुशिरवाला अनन्तदेव से भी विशेष प्राप्त हो रहा है क्यों कि अघनाशन श्रीहरि इस के क्रोडदेश में मस्तक में तथा उदरभाग में प्रेयसियों के साथ अद्भुतलीला का विस्तार कर रहे हैं ॥ ६५ ॥

ललिता— (श्रीराधा का अवलोकन कर संस्कृत में)
हे गौरि ! गोवर्द्धन की सौरभयुक्त निविड़ शोभाशालिनी विशाल पाषाणखण्ड के प्रति दृष्टिपात करो, हे सखि ! यहाँ रसिकेन्द्र ने बैठ कर तुम्हारे वक्षःस्थल पर मृगमद पङ्क के द्वारा सुन्दररूप में तिलक रचना की है ॥ ६६ ॥

चम्पकलता —(परस्पर में मन्त्रणा कर के संस्कृत में) सखि ! सुनो, ऊपर में वलाका अर्थात् वकपङ्क्ति शोभायमान हो रही है, और चारों ओर विद्युतविलास हो रहा है, मेघ अपनी कान्ति के द्वारा पर्वतशृङ्ग के नीलमण्डप को दुगुणा शोभित कर रहा है। अर्थान्तर-श्रीकृष्ण गुञ्जाहार एवं पीताम्बर पहन कर अपनी कान्ति के द्वारा गोवर्द्धन उपरिस्थित नीलमण्डप की शोभा को द्विगुण बढ़ा रहे हैं ॥ ६७ ॥

ललिता—(आनन्द के साथ) चम्पकलते ! सत्य कहती हो, यह मेघ नहीं है, परन्तु कण्ठ में लम्बित विस्तीर्ण हार-वाले पीताम्बर, पर्वत के कुञ्जप्रदेश का अवलम्बन कर विराजमान हैं। अतः हम सब का मनोरथवृक्ष पुष्पित हुआ है ॥

राधा—(वृन्दा के प्रति दृष्टिपात करके कम्पितशरीर से संस्कृत में) ॥ ६८ ॥

हे सखि ! सम्मुख में पर्वत शिखर में स्थित होकर आकाश की गौरवर्ण कान्ति को अङ्गीकार कर जगत् रूप वेणुवृत्त में कन्दर्प-भ्रमि स्वरूप घूण समूह को अर्पण कर तथा धैर्य्य रूप अन्धकार का भेदन कर नीलोत्पलनयनाओं के अमृतनिधान नेत्रबन्धु अर्थात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेत्र शीतलकारी किस अद्भुतचन्द्र का उदय हो रहा है ॥

बृन्दा— सखि राधे ! सुनो, ॥ ६६ ॥

त्रिभुवन की समस्त मृगनयनाओं के वाञ्छितार्थ पूरण के लिये समर्थवान् भुजद्वय का आन्दोलन कर कुलाङ्गना व्रजबालाओं की मदनवेदना का-उन्मादन रूप व्रत प्रणयि वक्षःस्थल के द्वारा शोभायमान रसिकमौलि श्रीकृष्ण उदय प्राप्त हो रहे हैं ॥ ७७ ॥

राधा—(विस्मय के साथ संस्कृत में) सखि ! श्रीहरि बहु बार हमारे नेत्रपथ में पथिक हुए परन्तु पहले कभी इस प्रकार अपूर्व मधुरिमा नहीं देखी, जिस की एक अङ्ग की किञ्चिन्मात्र शोभा का पान करने में नेत्र समर्थ नहीं हो रहा है, अब यह नेत्र एक ही समय में सर्वाङ्ग-शोभा को किस प्रकार पान कर सकता है ॥ ७१ ॥

बृन्दा—हे राधे ! तुम जब जब सम्मुख में माधव को देखती हो, तब तब उन को अपूर्व करके कहती रहती हो । क्या वे तुम्हारे लिये वास्तविक नित्यनूतन हैं अथवा अनुराग एवं उन्माद के कारण इस प्रकार नेत्रद्वय विस्मयापन्न हो रहा है ? ॥

(तदनन्तर मधुमङ्गल, सुबल, अर्ज्जुनादि सखासमूह से उपास्यमान होकर नान्दीमुखी को जिज्ञासा करते करते श्रीकृष्ण उपस्थित हुए) ॥ ७२ ॥

कृष्ण—(उत्कण्ठा के साथ) अहो ! गोवर्द्धन पर्वत के समीप में उपस्थित, कर्णकुण्डलस्थ मणिशिला पर कटाक्षवाणों को शणित करने वाली, भ्रुधनु-कम्पन से सर्वस्व हरण सूचनकारिणी यह रमणी कौन है ? जो कि निजविभ्रम के द्वारा सर्व जगद्धैर्य्यसर्वस्वहारी मुझ को भी व्यग्र कर रही है ॥ ७३ ॥

(पुनर्वार निरूपण करके) हाय ! किस प्रकार से वह प्रियतमा मेरी हृदयकपोतपालिका की भूषण स्वरूप पाराचती हुई ? (ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कह कर नान्दीमुखी को अभिनन्दन कर आनन्द के साथ) जो उच्च शब्द-सम्पत्ति के द्वारा बसन्तादिराग का वर्द्धन कर कर्ण प्रदेश के अलङ्कार का विस्तार कर रही है, जो मधुरास्फुटध्वनि के द्वारा युक्त है वह षड्जादिस्वरों से अधिक परिवादिनी अर्थात वीणा प्राप्त है। अर्थान्तर में-जो मुक्ताहार की शोभा के द्वारा अपने अनुराग का वर्द्धन कर कर्णदेश की शोभा विस्तार कर रही है, जो चौषठकला से अञ्चित (युक्त) है आज हमे वह राधा परिवादकारिणी की भाँति प्राप्त हो रही है ॥७४॥

नान्दी —हे गोकुलानन्द ! तुम्हारे पार्श्वस्थित ये समस्त गोपिकाएँ जिस प्रकार मुझ को न देखें उस प्रकार प्रच्छन्नरूप में ठहरती हूँ। (ऐसा कह कर छिप गई) ॥ ७५ ॥

कृष्ण—हे सखागण ! तुम सब शीघ्रता पूर्वक महाघट्ट के अधिकार सूचक शृङ्गवाद्यादि करो, मैं भी निजबिम्बाधर में वंशी अर्पण करता हूँ। (सब वैसा ही करने लगे)

वृन्दा—(स्वगत) क्यों ये समस्त गोपिकाएँ केलिमुरलीध्वनि को श्रवण कर घूर्णित मस्तक होकर वृक्षों को धारण कर रही हैं- वेणु की यह मधुरध्वनि तरु-लताओं को प्रफुल्लित कराने के लिये औषधि विशेष है और मानो कोकिलादि ब्राह्मणबालकों के कुहु रूप वेदपाठ-पारायण के स्थगित करण में सन्ध्याकालीन मेघ-गर्जन है, चन्द्रवदना गोपबालाओं की कामाग्नि-शिखा का उद्दीपन में मन्द मन्द बहने वाला पवन है और श्रीराधा के धैर्य्यरूप पर्वतराज को दमन के लिये वज्र स्वरूप है। इस प्रकार से वेणुध्वनि विलास कर रही है ॥ ७६ ॥

कृष्ण—(श्रीराधा के प्रति कटाक्षपात कर आनन्द के साथ) अहो ! कन्दर्पबान्धव अर्थात यौवन वयस के द्वारा आज श्रीराधा के अङ्ग उल्लास युक्त होने पर मुखकमल कृपा, औदार्य्य एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माधुर्य्यादि गुणयुक्त नर्मवाक्य के साथ सख्य विधान करने को इच्छा कर रहा है, दोनों नेत्र क्रम से कुटिल-निरीक्षण के साथ मैत्रीलाभ के लिये वाञ्छा कर रहे हैं, और पदयुगल लीला-युक्त मन्दगति के साथ सङ्गविधानार्थ अभिलाष कर रहे हैं ॥७७॥

राधा—(यत्नता से भावगोपन का अभिनय पूर्वक वाम-स्कन्ध अन्य ओर कर संस्कृत में) ॥ ७८ ॥

भूमण्डलवर्त्तिनी युवतिओंके नयन रूप भृङ्गों के द्वारा नीलोत्पल-दल से अधिक शोभा वाली अपनी अङ्गशोभा का आस्वादन करा कर, मत्त हस्तिशावक के लीलातरङ्ग उलंघन कारी गोवर्द्धन पर्वत स्थित यह अरण्यधूर्त्त मेरे धैर्य्य का ग्रास कर रहा है।

कृष्ण—(पर्वतशृङ्ग से अवतरण पूर्वक राधा को देख कर आनन्द के साथ) श्रीराधा अपने स्थूल पयोधरयुगल में हार को स्थान देकर मानो उस के प्रति अनुग्रह विस्तार कर रही है, उस ने बल करके ख्यात कुटिल केश को चूड़ामणि अर्पण किया है, मृगनयनी उस के नेत्र से कर्ण तक कज्वल विन्यस्त हो रहा है मानो दोनों नेत्र ईर्षा प्रकट कर सारल्य परित्याग कर कौटिल्य-भाव का अवलम्बन कर रहे हैं ॥ ७९-८० ॥

ललिता—(अपवार्य्य) [राधे ! जिस व्यक्ति को पर्वतशृङ्ग से अवतरण करना देख रही हो वह हठ पूर्वक कुहक प्रदर्शन कर किसी वाणिज्य महास्वार्थ लाभ के लिये आ रहा है। अतः अन-देखें की भाँति विश्वस्तचित्त से यहाँ से चली चलें नहीं तो यह हम सब को उद्वेगान्वित करेगा ॥ ८१ ॥

राधा—सखि ! धीरे धीरे चलो, क्यों कि यह पर्वततट स्फु-टित प्रस्तर समूह से विरचित है ॥ (ऐसा कह कर दृष्टिपात पूर्वक गमन करने लगी) ॥ ८२ ॥

कृष्ण—सखे सुबल ! ये समस्त रमणियाँ क्यों हम सब की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवज्ञा करती, विलास के साथ नूपुर झनझनाती, मनोहर आलाप करती जाने को प्रवृत्त हो रही हैं। अतः अर्जुन के साथ शीघ्र इन को प्रत्यावर्त्तित करो ॥ ८३ ॥

सुबल—(शीघ्रता से अर्जुन के साथ परिक्रमण कर) अहो ! आश्चर्य्य ! तुम सब क्यों गर्व के साथ घट्टचत्त्वरनाथ का अनादर कर घृतविक्रयार्थ चली जा रही हो, अतः निवृत्त होकर सुन्दरता पूर्वक हम सब को प्रबोधित करो ।

सब—(अवहेला पूर्वक अनसुनी की भाँति चलने लगीं)

सुबल—(वेग से दौड़ कर) अहो, आत्ममाहात्म्य का विस्तार मत करो शीघ्र लौट कर आजाओ ॥ ८४ ॥

सब—(निर्वेद की भाँति प्रत्यावर्त्तन कर के) अहे ! क्रूरभाषिन् ! क्यों तुम हम सब को परावर्त्तित कर रहे हो ? ॥ ८५ ॥

सुबल—अहे ! पहले तुम सब पृथ्वीपर मस्तक रख कर महाघट्टदानीन्द्र को प्रणाम करो ॥ ८६ ॥

विशाखा—(ईषत् हास्य के साथ) अहो ! क्या व्रजराजनन्दन हमारे वन्दन योग्य नहीं है ? अवश्य हो सकते थे। परन्तु भगवती पौर्णमासी ने निषेध किया कि-इस अलौकिक-यज्ञ में हैयङ्गवीन उपहरणादि में तुम सब व्रतधारण करने वाली हो अतः ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रणाम मत करना ॥

अर्ज्जुन— विशाखे ! यह हमारे वृन्दावन के राजा महादानीन्द्र हैं। इन्होंने अब व्रतारम्भ किया है। अतः व्रतधारणवालाओं के द्वारा व्रतधारणकारी को प्रणाम करने पर कोई दोष नहीं है ॥

ललिता—वह व्रत कैसा है ?

कृष्ण—(ईषत् हास्य के साथ) वस्त्रादि उपार्ज्जन में अक्षम अर्ज्जुद ब्राह्मणों को वस्त्रदान रूप महाव्रत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पक्षान्तर में-अर्व्वुद संख्यक युवतियों के ओष्ठाधरखण्डन रूप महाव्रत ॥ ८६ ॥

ललिता—घट्टाधिकारिता उचित हो रही है क्यों कि इस प्रकार महापदवी-समारोहण के बिना अपनी व्रतरक्षा दुष्कर होती है ॥

कृष्ण—(कुछ हँस कर सम्मुख में दृष्टिपात करके)

सखे मधुमङ्गल सुनो ॥ ९० ॥

बार बार पतित स्वेदविन्दु के द्वारा स्वर्णपदक अभिषिक्त हो रहा है। अहो! राधा तो ललितादि पञ्चजन सखियों के बीच में विराजमान है वह किस प्रकार स्तम्भित होकर पञ्चालिका अर्थात पुतली धर्म को प्राप्त हो रही है ॥ ९१ ॥

मधुमङ्गल—(श्रीकृष्ण के कान में निभृतोक्ति-मुद्रा अर्थात छलाभिनय कर उच्चस्वर से) भो प्रियवयस्य! भाग्यवस बढ़े हो, देखो श्रीराधिका भय के कारण गर्व्वितसखियों के साथ स्तम्भित हो रही है। ॥ ९२ ॥

बृन्दा—(मन्दहास्य के साथ) अहे पुरुषकुञ्जर! तुम्हारा मध्यभाग सिंह के समान है, क्रोडदेश वराह की भाँति कठिन है, दोनों भुजा सर्प के समान हैं और नेत्र व्याघ्र की भाँति है। अतः यह भीरुस्वभाव वाली हरिणाक्षी राधा तुम से क्यों भय भीत नहीं होगी ॥ पुण्डरीक्ष—अर्थात कमलनयन! पक्षान्तर में व्याघ्रनयन। "व्याघ्रेऽपि पुण्डरीको ना इत्यमरः"।

ललिता—"ललिता के द्वारा सुरक्षित गोपालिकाओं को भय" यह शब्द कभी किसी के कर्णकुहर में प्रवेश नहीं हुआ है। तब तो गोकुलरक्षण-व्रतधारि इस राजकुमार के समक्ष हम सब को भय कैसा? ॥ ९४ ॥

कृष्ण—हे भूषिताङ्गि ललिते! उत्तम कह रही हो, अतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन को सखीमण्डलकेसाथ पाण्डुर अर्थात् सफेदपीलामिश्रित वर्ण की शिलापर उपवेशन करा करसमुदाचार का अवधारण कराओ।

ललिता—गोकुलयुवराज ! देखो, प्रचण्डरश्मि वाला भगवान् तपनदेव गगनमण्डल में आरोहण कर रहा है, अतः शीघ्र यज्ञ-मण्डप प्राप्ति के लिये तुम्हें जिज्ञासा करती हूँ ॥

कृष्ण—(नेत्र घुमा कर मधुमङ्गल को संकेत करने लगे)॥९६॥

मधुमङ्गल—ललिते ! आज तुम सब सङ्गवकाल में अर्थात प्रातःकाल के बाद तिन मुहूर्त्त समय पर आई हो। तब तो तुम सब से शुल्क ग्रहण करना उचित नहीं है। परन्तु हैयङ्गवीन वहन भार से तुम सब की कटि टेड़ी हो रही है। अतः इस घाटि में आकर कुछ काल विश्राम कर स्निग्धता सम्पादन करो। और अवज्ञा-जनित दोष के निवारण के लिये आपकी सम्मति से किञ्चित् प्रदान कर यथा सुख से प्रस्थान करो ॥ ९७ ॥

विशाखा—अहो गोवर्द्धन में दानघाटी यह पहले तो कभी नहीं देखी ॥

कृष्ण—विशाखे ! सत्य कहती हो, तुम जैसे जन यह सब किस प्रकार देख सकते हैं क्यों कि अभी भी देखती हुई नहीं देख रही हो ॥

ललिता—(परस्पर में मन्त्रणा करके) अहे सखियां ! पहले तो मधुर सम्भाषण उचित है ॥ ९८ ॥

सब—ठीक कह रही हो,

ललिता—(प्रणय के साथ निकट में जाकर) हे गोकुला-नन्द ! हम सब एक गाँव में निवास करती हैं और विशुद्ध स्वभाव वाली हैं। सुयशस्वि साधुशिरोमणि तुम जैसे व्यक्ति का प्रातिकूल्याचरण उचित नहीं है। अतः शीघ्र आज्ञा प्रदान करो ॥ ९९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण—(करुणा प्रदर्शन की भाँति) अहे सुकुमारि ! दुरन्त शासन वाले अटवी-चक्रवर्त्ती के द्वारा अति आग्रह पूर्वक मैं इस भयानक घाटिकर्म में नियुक्त हो रहा हूँ। मैं अस्वतन्त्र हूँ कुछ नहीं कर सकता ॥

विशाखा—क्या कंस के द्वारा ?

कृष्ण—नहीं नहीं।

विशाखा—तो किस के द्वारा ?

कृष्ण—जिस की क्रीड़ाकटाक्ष-छटा से कंसादि पराजित हुए है उस महामन्मथ के द्वारा ॥ १०० ॥

ललिता—(चकित होकर आश्चर्य्य के साथ) अहो ! कहीं तो मन्मथनामक चक्रवर्ती नहीं सुना ॥ २०१ ॥

मधुमङ्गल—(अट्टहास्य के साथ) ही ही, आश्चर्य आश्चर्य, इन्होंने महामन्मथ का नाम सुना ही नहीं। महाकटक में प्रमद-मञ्जरी नामक जिस की राजधानी है। मधुमङ्गल, सुबल एवं विजयादि जिन के अमात्य श्रेष्ठ हैं, और उत्तम रमणियाँ जिस का विहारस्थल है ॥

कृष्ण—अधिक तो कहना क्या है, यह समस्त कुरङ्ग, भृङ्ग, कोकिलादि निरन्तर आदेशवर्ती होकर जिस का दूतत्व अङ्गीकार कर रहे हैं॥ २०२ ॥

चम्पकलता —(सशब्द हास्य के साथ) ललिते ! यह व्रजेन्द्रनन्दन दानापहरण चेष्टाशील है। इन के साथ विरोध करना उचित नहीं है क्यों कि चोरचक्रवर्ती इन के चोरगण चारों ओर घूम रहे हैं ॥

कृष्ण—ललिते ! तुम नीति-तन्त्र को जानती हो, अतः हैयङ्गवीन-कलसों को उतार कर शुल्क कार्य्य का निद्धारण करो ॥

विशाखा—हे मोहन ! घाटी-प्रांगन में कुलाङ्गनाओं का तिल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय–ग्रन्थालय, भरतमिलाप, चौखंडी वाराणसी

मात्र काल–विलम्ब विडम्बन है ॥ १०३ ॥

चित्रा —(सरलता के साथ) हे गोकुलानन्द ! यथार्थ श्रवण करो, घाटीदान विषय में एक कपर्द्दक प्रदान करने पर भी यज्ञीय घृतादि अशुद्ध हो जाता है ऐसा सुनने में आता है । नहीं तो पञ्चतात्रिका (वीस कौड़ी) प्रदान में हम कातर क्यों होतीं ॥ १०४ ॥

ललिता—सखि राधे ! तुम महाभार से क्लिष्ट हो गयी हो, अतः यहाँ एक दण्ड विश्राम के लिये घड़ा को उतारो (ऐसा कह कर सब घडा उतारने लगीं)

कृष्ण—सखे सुबल ! तुम्हारी यह सुहृज्जन ललिता आज दानघाटी में प्रथम अतिथि हो रही है। अतः यथेष्ट रूप से अपूर्व माधुर्य्य शालि पांच पर्णवीटिका के द्वारा इस का सम्मान करना उपयुक्त है ॥

सुबल —(रत्न–संपुट उद्घाटन पूर्वक) ललिते ! पञ्च ताम्बूल बीडी ग्रहण करो (ऐसा कह कर सम्मुख में रखने लगा)

विशाखा—सुबल ! ताम्बूल से प्रयोजन नहीं है, क्यों कि ये सब अपने को व्रतधारिणी बता रही हैं ॥ १०५ ॥

ललिता—सुबल ! मेरे मुख को क्या देख रहे हो, अविश्वासिनी विशाखा मेरे पर कोप कर यह कह रही है कि घाटीपालक समस्त टकवाटिका अर्थात् सर्वस्व अपहारार्थ मनो–देह–इन्द्रिय मोहनकारी औषध विशेष का प्रयोग करते हैं। अतः इन के नागवल्ली पल्लव का प्रयोजन नहीं है ॥ १०६ ॥

मधुमङ्गल—ललिते ! आप सब स्वभाव से विम्बोष्ठी हैं, अर्थात् सब के होठ में स्वभावतया रक्तिमा मौजूद है। अतः ताम्बूल का प्रयोजन नहीं है, आप सब ने कब ताम्बूल का भक्षण किया है ? अर्थात् ताम्बूलभक्षण का अभ्यास नहीं है तो भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कल्याणार्थ इस अवशिष्ट पञ्चवीटिका को ग्रहण करो ॥ १०७ ॥

कृष्ण—(ताम्बूल का उपयोग कर चर्वित ताम्बूल प्रदान करने की इच्छा करते हुए भ्रूभङ्गि के साथ) राधे ! यह ताम्बूलामृत द्विज संस्कृत है, इस के आस्वादन में शङ्का मत करना । तुमने पहले कभी इस का आस्वादन नहीं किया है । अतः सम्पुट से ताम्बूलवीटिका को ग्रहण करो ॥ १०८ ॥

ललिता—लक्ष-कामुकी उपभोग से पवित्र मुखविम्ब के उद्गार को यदि मेरी सखी ग्रहण नहीं करती तो वह अपनी आत्मा को पवित्र किस प्रकार कर सकती ?॥ १०९ ॥

सुबल—ललिते ! हम सब विपरीतकारिणी हैं अर्थात अनादर पात्र में आदर करने वाली हैं। जो भी हो सौभाग्य वश हम सब तुम सब से उपदेश प्राप्त हुए हैं, अब दान का अनुमोदन करो ॥

चम्पकलता—क्या तुम सब ब्राह्मण हो जिस कारण तुम सब को दान देने के लिये अनुमोदन करेंगी ॥ ११०–१११ ॥

मधुमङ्गल—चम्पकलते ! मैं कुलीन याज्ञिक ब्राह्मण हूँ इस लिये पेट भर कर मिसरी के साथ मक्खन प्रदान करो ॥११२॥

विशाखा—सखि चम्पकलते ! ये सब केवल पेट भरने वाले हैं, घाटी छल से भिक्षा माँग रहे हैं। अतः इन को बीस कौड़ी प्रदान करो, जहाँ तहाँ चने कीन कर चबा चबा कर गोचारण करें ॥ ११३ ॥

कृष्ण—सखे ! उदरभर परायण ! घाटीदानग्राही हम सब में तुम महापात्र (अमात्य) हो, अतः आज हैयङ्गवीन के द्वारा उदरपूर्त्ति में भी तुम्हारी दरिद्रता व्यक्त हो रही है ॥ १·४ ॥

राधा—हे ललिते ! ये सब महादानी आप की प्रशंसा कर रहे हैं। अतः स्पष्ट जाना जाता है कि परमोत्तम वर्णवाली तुम सब को सर्वोत्कृष्ट पदार्थ प्रदान करेंगे ॥ ११५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके) हे वरवर्णिनि ! सत्य कहती हो, अतः यह निज महावैभव का प्रदान करूँगा (ऐसा कह कर आलिङ्गन मुद्रा से सुबल को आलिङ्गित करने लगे)॥ ११६ ॥

राधा—(रोमाञ्च के साथ आत्मगत संस्कृत में) हे सुबल ! पहले तुम ने किस सिद्धक्षेत्र में कितनी तपस्या की है ? क्यों कि श्रीकृष्ण हँसते हँसते विपुल पुलकोल्लास प्रकाश के साथ गुरुजनों के समक्ष भी विस्तीर्ण उत्सङ्ग (क्रोड) में तुम को रख कर आलिङ्गन एवं प्रणय वश तुम्हारे स्कन्धदेश में भुजग समान भुजद्वय अर्पण कर रहे हैं ॥ ११७ ॥

(ऐसा कह कर क्रोधाभिनय करती भ्रू द्वय कुटिली कर प्रकाश्य से) ललिते ! हम जैसी पतिव्रताओं में तुम्हारे कुञ्जराज की विदूषकता (लाम्पट्य) दृष्टि हुई। जो भी हो, तुम अनर्थकारिणी हो, यहाँ बल पूर्वक हमें लाई हो। (ऐसा कह कर ललिता को तिरस्कार करने लगी) ॥ ११८ ॥

ललिता—(छल पूर्वक संस्कृत में) हे कुहुकण्ठ ! (कोकिल) तुम निकट में नवमुकुलिता आम्रलताओं को देख कर भी कापट्यालम्बन पूर्वक यहाँ से अति धृष्टता से क्यों भागती हो ? इस स्निग्धा सौरभवती आम्रलता ने भ्रमर को पति रूप से आश्रय कर लिया है। अतः तुम उत्कण्ठा का परित्याग करो, तुम्हारे लिये यह सुलभ नहीं है ॥ ११९ ॥

विशाखा—(संस्कृत में) विशुद्ध चरितवालों को कुटिलजनसंसर्ग से शीघ्र ही वैगुण्य संघटन होता है। इसका प्रमाण यह कि—धनु में स्थित वाण गुण से विच्युत होकर शीघ्र दूर में चला जाता है ॥ १२० ॥

चित्रा—बड़ा खेद है, हे घट्टाध्यक्ष ! यदि अभीष्ट साधन में इच्छा रखते हो तो बहुजनों से युक्त यमुनाघाट में चत्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(चबूतरा) बनाना उपयुक्त था ॥ २२१ ॥

चम्पकलता—अयि विशुद्धचित्तवाली सखि चित्रे ! ये सब शुल्क उपलक्ष से लुण्ठन करने के लिये इस दुर्गम वन में अवस्थान कर रहे हैं, अतः तुम सब शान्त हो ॥ १२२ ॥

कृष्ण—सखे सुबल ! चित्रा मित्र की भाँति आचरण कर रही है, अतः आज गोष्ठ के गोपुर (प्रधान द्वार) में घट्टचत्वर निर्माण करो, क्यों कि इस वन के बीच ये सब चञ्चलाक्षी रमणियाँ चारों ओर पलायन करेंगी ॥ १२३ ॥

सुबल —प्रियवयस्य ! सत्य कह रहे हो, देखो तो हजार सखियाँ राधा के पास थीं परन्तु अब तो केवल तीन चार सखी उपस्थित हैं ॥ १२४ ॥

राधा—(स्वगत) मैंने प्रातःकाल ही कुन्दलता के साथ सखियों को यज्ञ के लिये भेजा है। अब तक यज्ञ-समाधान हो गया होगा। अतः निश्चिन्त होकर यहाँ विलम्ब करने पर कोई हानि नहीं है ॥ १२५ ॥

मधुमङ्गल—सुबल ! निश्चय रूप से सखियों को समागत जानो बसन्तलक्ष्मी के बिना कोकिलरमणियों की सम्भावना नहीं है ॥ १२६ ॥

विशाखा—(ईषत हास्य के साथ) उस से उन समस्त सखियों की चरणलक्ष्मी के द्वारा तुम्हारा घाट अशोकत्व लाभ कर उत्फुल्ल होगा। शास्त्रप्रसिद्धि (कवि-प्रसिद्धि) यह है कि सुलक्षणा युवतियों के चरणाघात से अशोक वृक्ष प्रफुल्लित होता है। अतः सखियाँ यहाँ आकर घाट में पदाघात करेंगी तब तो परभाश्रय निजोपजीव्य स्वरूप यह घाट जातभाग्य होकर सफल होगा ॥ १२७ ॥

कृष्ण—(बांए ओर देख कर आनन्द के साथ) अहो कैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुवर्णवर्णवाली सखियों के संचार के द्वारा यह ब्रह्मकुण्ड की अभ्रवर्त्तिभूमि अलंकृता हो रही है ॥ १२८ ॥

ललिता—(ईषत् हँसती) पुराण में कहा गया है—लुब्धव्यक्तिगण जगत् को धनमय, कामुकव्यक्तिगण कामिनीमय देखते हैं। उसी प्रकार परमार्थी जगत् में सर्वत्र नारायणमय देखते हैं। यह पौराणिक बचन आज प्रत्यक्षीकृत हुआ है ॥

मधुमङ्गल—भो प्रियवयस्य ! ललिता मिथ्या हास्य नहीं कर रही क्यों कि कमल-किञ्जल्क-पुञ्ज से पिञ्जरित हंसीगण के साथ तुम ने सख्यविधान किया है ॥ १२९ ॥

कृष्ण—(हास्य के साथ) अब भविष्यत् चिन्ता का प्रयोजन नहीं है। सम्प्रति घट्टशुल्क का पुण्याह में प्रवृत्त हो।

राधा—(भ्रूविक्षेप पूर्वक) त्रिलोकी के बीच में ऐसा साहसिक शिखामणि कौन है कि गोकुलवालाओं के निकट दान ग्रहण करने के लिये मुख से उच्चारण कर सकता है। उस पर पुनः हम सब सूर्य्योपासिका के निकट ॥ १३१ ॥

श्रीकृष्ण— ईषत् हास्य करके) हे लक्ष्मीमुखि ! दाक्षिण्य-वश शिक्षा प्रदान कर रहा हूँ ॥ १३२ ॥

अक्षय रूप से उद्यान चक्र-वर्त्ति के उदय होने पर अब मृगाक्षियों द्वारा इस प्रकार वाक्य प्रावल्य अत्यन्त अयोग्य है ॥ १३३ ॥

राधा—सखि ललिते ! धृष्टघट्टपाल के चालन से पतित हो गई हैं, अतः यहाँ कुण्ठित होना उपयुक्त नहीं है ॥ १३४ ॥

कृष्ण—सुबल ! यौवन गर्व्व से गर्व्वित इनके कठोर बचनों के स्फुर्ज्जन को सुना है। (ऐसा कह कर अर्द्धनिःसृत जिह्वा दंशन के साथ) अहे ! कष्ट है, कष्ट है, इस राधा का अर्वाचीन यौवन गर्व अत्यन्त क्रीड़ा कर रहा है। जो भी हो, मैं महा-घट्ट साम्राज्यपट्ट में अभिषिक्त होकर चत्वरिकों के बीच घट्टपाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्रवर्ती हुआ हूँ ॥ १३५ ॥

ललिता—(संस्कृतभाषा में) क्षुद्रवंश में जात जिस की छिद्रवाली वंशी है, कठोर स्वरूपा जिसकी यष्टि है, एवं वक्र-स्वरूप की मलिन शृङ्गिका है, ये सब सर्व प्रकार से उत्तम रूप में जिस के अङ्ग का आलिङ्गन कर रही है उस का इस दुर्गम वन के बीच घट्टपालवृत्ति के अवलम्बन में क्या विचित्रता है ?

सुबल—अहे दुर्म्मुखि मुखराएँ ! तुम सब के द्वारा इन महादान के अधीश की अवज्ञा करना उचित नहीं है ॥

श्रीराधा—महादान के अधीश होंवे, उस से हमें क्या, पक्षान्तर में सर्प हों, उस से हमारा क्या (ऐसा कह कर संस्कृत में) ॥ १३७ ॥

हे कृष्ण-भुजङ्ग ! कुलस्त्रियों के धर्षण से राजा कभी क्षमा नहीं करता है। क्यों कि उन के दंशन करने पर वे प्रतिदंशन कर सकती हैं अर्थात् उन को दातों से दंशन करने पर लोकनिन्दा व राजदण्डादि अमङ्गल से निष्कृतिलाभ नहीं है। सर्पपक्ष में—महासर्प भी नकुलस्त्रियों के धर्षण में समर्थ नहीं हो सकता क्यों कि उस के दंशन से वे प्रतिदंशन कर सकती हैं ॥ १३८ ॥

कृष्ण—हे कुटिलापाङ्गि ! हृदयङ्गम बचन कह रही हो इस लिये श्रवण करो (हर्ष के साथ) हे राधे ! तुम मङ्गलमय मूर्त्ति धारण कर रही हो, तुम्हारा ललाट अर्द्ध चन्द्र-शोभा को धारण कर रहा है, अपूर्व कान्ति के द्वारा तुम्हारा शरीर विभूषित है, मुझ कृष्ण-मार्ग में तुम्हारी दृष्टि विलास कर रही है। तुम विशाखा नाम्नी सखी के साथ युक्त हो, नेत्राञ्चल की कान्ति के द्वारा तुम कन्दर्प की विदग्धता विधान कर रही हो, अतः भोगि राज मुझे अपने वक्षः स्थल में स्थान प्रदान करो ॥

पक्षान्तर में अर्थ-हे राधे ! तुम शिवमूर्त्ति को धारण कर रही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो, अर्द्धचन्द्र से तुम्हारा ललाट विराजमान है, तुम अपने शरीर में नवीन कान्तियों की विभूति को धारण कर रही हो, तुम्हारे नेत्र अग्नि रूप हो रहे हैं, तुम विशाखा अर्थात् कार्त्ति-केय के साथ युक्त हो, और नेत्र के द्वारा कन्दर्प को दग्ध किया है। अतः भोगीन्द्र अर्थात् सर्प समान मुझे अपने वक्षःस्थल में अङ्गीकार करो ॥ १३९ ॥

ललिता—कृष्ण! तुम्हारे सहचर गण भली भाँति जानते हैं कि यह ललिता धूर्त्तहरिणी तुम्हारी कूटवागुरा अर्थात मृग-बन्धनी के द्वारा पराजित नहीं हो सकती। अतः विफल धृष्टता का परित्याग करो। राधा-प्राप्ति में ललिता प्रतिबन्धिनी ऐसा तात्पर्य्य है ॥ १४० ॥

कृष्ण—(सुबल के प्रति दृष्टिपात करने लगे)

सुबल–ललिते! इन सबबातोंको क्यों नहीं जानती हैं कि-चम्पक-पुष्पापहरण में गृह समीपस्थ उद्यान–स्वामी के द्वारा मणिभूषण लुण्ठित होने पर महाप्रभाववाली सूर्य्योपासिका किस रमणी के दन्ताग्र में तृणगुच्छ रूप मरकतमणि की आश्चर्य्य शोभा प्रका-शित नहीं हुई थी ॥ १४१ ॥

कृष्ण—सखे! तुम उस कुतूहल को भूल गये थे, अतः इस अवसर में पुनः सुन्दर रूप से स्मरण करा रहा हूँ (ऐसा कह कर ईषत् हास्य करके) हाय! इस पर्वत में मैंने हारादि वित्त का हरण कर कई बार इन रमणियों को जैनदीक्षा ग्रहण करायी। वसनरहिता वे सब विनय वाक्य के साथ नतवदन से दीनता प्राप्त होने पर दूरवर्त्तिनी लतारूप सखियाँ पत्र दान के द्वारा अनुग्रह करने लगी थीं ॥ १४२ ॥

विशाखा—अब इस प्रकार दर्परूप डिण्डिम रव का प्रयोजन नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता--सखि विशाखे! दुःख की बात है। प्रभात काल में विदलित अनर्घ मणिकांचन-राशियों की किरणों से सम्यक्पूजित श्रीराधा की कंचुलिका का लुण्ठन वृत्तान्त सखीगण के द्वारा सास (जटिला) के निकट कहने में प्रवृत्त होने पर, किस महा-प्रचण्ड दर्पमत्ता की कण्ठकाकलीने मुख में तर्ज्जनी अग्र निक्षेप पूर्वक हा हा रव उच्चारण के साथ चाटुपूर्ण कारुण्य के द्वारा किस व्यक्ति को आर्द्रीभूत नहीं किया है? ॥ १४३ ॥

सुबल--यहाँ वह कण्टकवन रूपिणी जटिला दुर्लभा है अतः तुम सब के छीपने में कोई कारण नहीं देख रहा हूं ॥ १४४ ॥

चम्पकलता--ललिता का अनुभाव रूप वह भास्कर जययुक्त हो रहा है, जो तस्कर विक्रम को कुण्ठित कर रहा है ॥ १४५ ॥

बृन्दा--(श्रीकृष्ण को देख कर) हे युवराज! ललिता अत्यन्त उग्रकर्म्मवाली है। अतः यहाँ पर एक सछिद्र कौड़ी भी नहीं मिल सकेगी ॥ १४६ ॥

कृष्ण--(ईर्ष्या के साथ) बृन्दे! तुम विपक्षता प्राप्त कर गोपिपक्ष की अञ्चल-संचारिणी हो रही हो, यह उपयुक्त है, चञ्चल गोपरामारूप आम्रलता से शुल्क स्वरूप में विकाशोन्मुख कलिका ग्रहण विषय में आज मेरा पुंस्कोकिलकेलि की विदग्धता को देखो ॥ १४७ ॥

राधा--सखि बृन्दे! तुम अपने परस्व ग्रहणाभिनिवेशी कोकिल को निषेध करो। अब तो आम्रलताएँ दुर्मुख भ्रमर के द्वारा पालित हो रही हैं, उन के हस्तरूप पल्लव के द्वारा पराभव प्राप्त कर यह कोकिल जैसी तुम्हारी सखीरूपा नवमालिका तथा मल्लीपुष्पों को न हँसावे ॥

कृष्ण--(कौतुक के साथ हँस कर) हे सुवर्णगौराङ्ग! घाटी-शुल्क प्रदान के निमित्त अथवा पर्वतकन्दरा में आतिथ्य ग्रहण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिये तुम्हारी जो अभिरूची है, उसे गोचर कराओ ॥

राधा--(ईर्ष्या के साथ अवज्ञा-अभिनय कर तूष्णी हो जाती है)

कृष्ण--राधे! तुम प्रचुर रूप-लीला के द्वारा समस्त पद्माक्षी रमणियों में श्रेष्ठा हो, कपट उद्घाटन निबन्धन से तुम्हारी अदक्षिणता व्यक्त हो रही है। अतः क्यों निरुत्तरा नहीं होगी? ॥ १५० ॥

नान्दीमुखी--(धीरे धीरे से निकट में जाकर) हे नागरेन्द्र! मैं आदेश कर रही हूँ ॥

कृष्ण—नान्दीमुखि! शीघ्र कहो आप क्या आज्ञा करती हैं?

नान्दीमुखी—यह कर रही हूँ-श्रीराधादिक हम सब की बालिकाएँ हैं वे सब हैयङ्गवीन लेकर यज्ञ में जावेंगीं। अतः एव तुम उन के शुभान्वित होकर अनुकूल करना ॥

कृष्ण—(हर्षाभिनय पूर्वक) यह आज्ञारूप महाप्रसाद मस्तक पर धारण कर रहा हूँ (अनन्तर पास में देख कर) सखे! मधुमङ्गल! इस गोकुल में सूर्य्योपासिका किशोरियों का हैयङ्गवीन अत्यन्त मधुर है, यह अत्यन्त प्रसिद्ध है। अतः प्रतिटंक का समुचित शुल्क तिन स्वर्णटंक होते हैं। उस प्रकार से ग्रहण न कर लघुटंक गणना से अर्थात चार गुंजा माप से टंक गणना कर शुल्क धन ग्रहण करो, क्यों कि इन के प्रति भगवती नान्दीमुखी का पक्षपातित्व है ॥ १५२ ॥

मधुमङ्गल—प्रियवयस्य! चार माशा में एक टंक, चार टंक में कर्ष, चार कर्ष में पल, सौ पल में तुला, तथा वीस तुला में एक भार होता है, गणनाविद् पण्डित इस प्रकार माप निरूपण करते हैं। राधिकादि गोपरमणियों के इस परिमाण से महाभार है क्यों कि पहले भार को उतारने के समय ललिता ने अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुख से कहा है कि-सखि। तुम भार वहन से क्लिष्टा हो रही हो ॥ १५३ ॥

कृष्ण—(हँस कर) उस के बाद उस के बाद।

मधुमङ्गल—पचास भार से एक महाभार होता है, पांच गोपि के हैयङ्गवीन अस्सीलक्ष तंक हैं, इस पर घट्टपाल की जीविका के लिये मैंने चारिलक्ष टंक बढ़ाये हैं। जिससे मिल कर चौरासीलक्ष टंक हुए ॥ १५४ ॥

कृष्ण—सखे ! तुम रस-लोभी हो, "शुल्क बढ़ाया है" यह मिथ्यावचन कह रहे हो, तुम्हारी गणना में हेमटंक चौरासीलक्ष मात्र हुए, तब तो निश्चय जाना जाता है तुम उत्कोच-प्रलोभन से इस प्रकार संक्षेप गणना कर रहे हो ॥ १५५ ॥

मधुमङ्गल—(श्रीकृष्ण के कर्ण में मुख विन्यास पूर्वक कथन-मुद्रा का अभिनय कर कुछ अनकहन की भाँति वदन विश्लेष कर)

कृष्ण—(ईषत हास्य के साथ) तुम्हारा आचरण भली भाँति ज्ञात हुआ, ज्ञात हुआ। अतः गणितटंक का जिस से शीघ्र ही घट्टचत्वर में उपस्थित करें उस की चेष्टा करो ॥१५७॥

चित्रा—अहे दानीन्द्र ! यदि पांच गागरी का मूल्य चौरासीलक्ष टंक है तो नहीं जान सका कि वस्तु का मूल्य क्या होगा ? ॥ १५८ ॥

कृष्ण—चित्रे ! ऐसा मत कहो, यदि वस्तु अमूल्य नहीं होती तो दीर्घदर्शि याज्ञिक इस को मूल्य रूप में अमूल्य मणिभूषण को क्यों प्रदान करते ॥ १५९ ॥

नान्दीमुखी—हे पद्मनेत्र ! इन समस्त गोपरमणियों का चौरासीलक्ष टंक दान दुष्कर नहीं है परन्तु उस का समाधान किस प्रकार होगा चिन्तन करो ॥ १६० ॥

मधुमङ्गल—प्रियवयस्य ! नान्दीमुखी ने संक्षेप में कहा है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये सब एक एक चौरासीलक्ष जीवजात रूप से श्रेष्ठ हैं अर्थात् चौरासीलक्ष परिमाणक परमद्युतिमय जो जातरूप सुवर्ण हैं उन से श्रेष्ठ हैं। पक्षार्थ में-चौरासीलक्ष जो जीव जाति हैं उन सब के सौन्दर्य्य से वरिष्ठ सौन्दर्य्य वाली हैं ॥ १६१ ॥

(इस प्रकार अर्द्ध उच्चारण पूर्वक ईषत् हास्य कर मुख फिराने लगा)

कृष्ण—सखे ! सुनी है तो, नान्दीमुखी की शिक्षाचातुरी, वह ऐसा है कि-इन में से किसी एक को ग्रहण करो ॥ १६२ ॥

ललिता—(उच्च हास्य करके) यह तो केवल अदक्ष लोलुप युवक शुक-पक्षि के द्राक्षा भक्षण की भाँति मनोरथ मात्र है ॥१६३॥

कृष्ण—शोभा के द्वारा ये समस्त रमणियाँ अत्यन्त तारतम्य-वती नहीं हैं तो भी इन में से जीवनौषधि रूपिणी पद्माक्षी ललिता के प्रति मेरी अभिरुचि है ॥

वृन्दा—निकुञ्जयुवराज ! श्रीराधा ने मणिभूषणों का गोपन किया है। अतः यह भूरिभूषण भूषिता ललिता ही शुल्क-कार्य्य के लिये पर्य्याप्त है ॥ १६४ ॥

कृष्ण—हे मुग्धे ! देखो, यह राधा पक्वदाड़िम बीज के समान माणिक्य दशन वाली है, अधरोष्ठ पद्मरागमणि के समान है, वदन में मुक्ताफल की भाँति मधुर हास्य विराजमान है, मुखविम्ब चन्द्रकान्तमणि की भाँति है, केशकलाप इन्द्रमणि के समान दीप्तिशाली है, यह तो समस्त तरुणीरत्न में श्रेष्ठा है, इस राधा का परित्याग करना उचित नहीं है। (ऐसा कह कर राधा की ओर जाने लगे)

राधा—(लीला वश अत्यन्त भय अभिनय करके) सखि विशाखे ! परित्राण करो, परित्राण करो। (ऐसा कह कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रूभङ्ग के साथ पलायन करने लगी) ॥ १६५ ॥

विशाखा—भो दुर्व्वार हस्ति ! दुरतिक्रमणा ललिता की विशाल गजबन्धनी के अतिक्रम होने पर चम्पकलतादि वेष्टित अमृत सरसी का अवगाहन तुम्हारे लिये सुलभ होगा ॥ १६६ ॥

ललिता—हे बिन्ध्याचलचारि मत्त करीन्द्र ! इस भूमि का अतिक्रमण सङ्गत नहीं है। तात्पर्य्य-बिन्ध्याचल ने जिस प्रकार मर्य्यादा त्याग कर सूर्य का निरोध किया उसी प्रकार तुम राधा का निरोध करो ॥ १६७ ॥

वृंदा—(व्यवधान से) सखि ललिते ! चाटुवाक्यों से प्रार्थना करती हूँ, तुम ईषत् तूष्णीभाव का अवलम्बन करो । मैं दोनों के ईर्ष्या, गर्व्व एवं हर्षादि निबन्धन भाव परम्परा चेष्टा का सन्दर्शन करूँ ॥ १६८ ॥

कृष्ण—गृहनर्द्दिनि ! अर्थात् घर के बीच में आत्मश्लाघा-कारिणि ! शुल्क न देकर क्यों पलायन करती हो, पद से पदान्तर गति तुम्हारे लिये दुर्ल्लभा है। अर्थात् एक पाँव आगे बढ़ाना असम्भव है ॥ १६९ ॥

राधा—हम सब क्या वाणिज्य के द्वारा जीवन निर्वाह करती हैं कि धट्टपाल तुम्हारे भय से पलायन करेंगी। अर्थात् वणिक् लोग डरपाक होते हैं। हम सब वाणिज्य-व्यवसायी नहीं हैं, हमें किस से भय है ॥ १७० ॥

कृष्ण—उद्दाम उत्तम, क्षणकाल स्थिर हो, जब तक मैं तुम्हारे स्तनोपरि विलक्षण मुक्ताहार अपहरण के लिये सामर्थ्य प्रकाश न करूँ ॥

राधा—यह तो अविदीर्घतम कृष्णपक्ष की रजनी है, अतः किस प्रकार कल्य की अर्थात् प्रातःकाल की आगमन-शङ्का हो सकती ? परम कोपवती मल्लक्षणा श्यामा नायिका को समर्थवान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी प्राप्त नहीं हो सकता है ।

कृष्ण—(ईषत् हँस करके) कमलसमूह रूप लोचनचय उन्मीलन करके तीक्ष्णरश्मि सूर्य्य के उदय होने पर तामसी-रात्रि का तारारूप विशाल हार अपहृत होता है तथा अन्धकारमय वसन स्खलित हो जाता है। इसी लिये वह तामसी श्यामा स्वयं पलायन करती है, पक्षान्तर में अर्थ-शोभमान् आजानुलम्ब बाहु वाला पुण्डरीक नयन मेरे आगे स्फूर्त्ति होने पर श्यामा स्त्री का मुक्ताहार अपहृत तथा नीलवसन स्खलित हो जाता है वह सर्वदा स्वयं पयालान करती है ॥१७३॥

राधा—हाय ! हे सूर ! राहु के उदय होने पर कभी चण्डकर सूर्य्य की चाण्डमा अर्थात तेजः नहीं रहता ॥ १७४ ॥

कृष्ण—देखो, असंख्य चक्रचिन्ह-धारी यह मेरा दक्षिण हस्त है, इस के समक्ष राहु का उत्थान किस प्रकार हो सकता ? वह चक्रदर्शन से भह भीत हो जाता है ॥ १७५ ॥

राधा—(उच्च हास्य करके) हे अयुत चक्रचिन्ह धारी नागरनाग ! अर्थात्-हे नगर सम्बन्धी अयुत चक्रचिन्हधारी सर्प ! तुम्हारे फुत्काररूप दुर्विष से मैं हत हो गई हूँ, अब मोह दायि विषाण रूप महावृष्टि से क्यों उल्लसित करना चाँहते हो। गिरिगह्वर में जाकर मुरली नागिन का चुम्बन करो ॥ १७६ ॥

कृष्ण—हे शुल्कनागरि ! यथार्थ कहती हो, क्यों कि यह मल्लक्षणजन पद्मिनीगण के स्वर्णकंकण आकर्षणार्थ महासार विषाण वादित कर रहा है। नाग शब्द का हस्ति अर्थ ग्रहण कर के हे शुल्कनागरि ! यह नागरनाग सुप्रतीक अर्थात दिग्गज स्वरूप है। जो कमलिनी समूह के करहाट (मूल) आकर्षण के लिये महासार दन्त उल्लासित कर रहा है ॥ १७७ ॥

राधा—(पद्मपक्ष अवलम्बन कर के कहने लगी) अहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हस्तिन् ! पद्मिनीसमूह बराटक अर्थात् वीजकोष का प्रदान नहीं करेगा। पक्षान्तर में-पद्मिनी नायिका एक बराटक अर्थात् एक कपर्द्दक प्रदान नहीं करेगी जानना ॥ १७८ ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके) हे कामिनि ! तुम बराटक के लिये आत्मदान करने में क्यों उद्यत हो रही हो ? यह तो अर्थ-ग्राही चक्रवर्ती है, अङ्गनाओं से प्रसन्न नहीं होता है ॥ १७९ ॥

राधा—(प्रियवचन के साथ हँस कर) हाय ! हे कूटघट्ट-मण्डलेन्द्र ! प्रसन्न हो प्रसन्न हो, शुल्क के लिये स्वयं कारुण्य प्रकाश कर इस व्यक्ति का ग्रहण करो ॥ १८० ॥

कृष्ण—(स्फुट रूप से हँस कर) हे कोपने ! तुम स्वार्थ-विषय में पण्डिता हो, क्यों कि तुम्हारा काकु भङ्गीमय उपहास-मुद्रा के द्वारा वास्तवार्थ में पर्य्यवसित हो रहा है। अतः यथार्थ तथ्य श्रवण करो ॥ १८१ ॥

हे विधुराङ्गि ! गव्यभार भर से भग्नस्कन्धवाली तुम्हारी भाँति रमणी को यह मद्विधजन हाथ के द्वारा स्पर्श करना दूर रहा, चरण द्वारा स्पर्श करने में लज्जित हो रहा है। अतः उपहास छल से दैन्य गत करना ॥ १८२ ॥

राधा—(ईषत् हास्य करके) इस के महाविडम्बन करने पर भी यह मनोहर सत्कार बुद्धि के द्वारा दर्प विनाश का व्यक्त कर रहा है ॥ १८३ ॥

हे सर्व्वतोभद्र ! तुम शृङ्गारोपितदामा अर्थात वेश के लिये माला आरोपण कर विलक्षण हो रहे हो। क्यों कि जम्बुलगुड़ में प्रसन्नता के कारण तुम को प्रफुल्ल देख रही हूँ ! तात्पर्य्य-भद्र शब्द का अर्थ वलीवर्द अर्थात दो पीठ वाला वलद है, भूषा के लिये रज्जु निबन्धन, और जम्बुलगुड (अक्षर विश्लेष कर के)सड़ा हुआ गुड़ से हम सब ने आदर दिया है इस से अत्यन्त प्रफुल्ल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो रहे हो ॥

पक्षान्तर में अर्थ–हे सर्व्व प्रकार से मङ्गलस्वरूप ! तुम मस्तक में शृङ्गारोचित माला धारण कर अतिशय सुशोभित हो रहे हो, गोपालन के लिये जाँमकाठ का लगुड़ धारण कर आदर ज्ञान से प्रफुल्ल हो रहे हो ॥

सब—(उच्च हास्य करने लगे)

कृष्ण—अब वाग्वितण्डा आवश्यक नहीं है। दोनों हाथ हीरकहार का हरण करें ॥ १८४ ॥

राधा—हीरकग्रहण में करपल्लव का साहस कहाँ से हो सकता। मुख से गर्व का प्रयोजन नहीं है। तुम सब के देखते हुए यह मैं चलती हूँ ॥ १८५ ॥

कृष्ण—तुम सुदीर्घ केशपक्ष–वाली हो, अतः स्पष्टतया उड़कर जाओगी ॥ १८६ ॥

राधा—हे अभिसारिका–सहस्रसेवारत ! मैं सारिका नहीं हुँ कि उड़कर जाऊँगी ॥ १८७ ॥

कृष्ण—चञ्चल पाशक दोनों के दाय भजन के कारण शारि-पट्ट उपलक्ष में तुम मेरे समक्ष धृता हुई हो अतः शृंखल के द्वारा सारी तुम को बाधूँगा ॥

अथवा—चपलनेत्र हमारे आगे शुल्क रूप दायभजन के हेतु चौरासीलक्ष स्वर्णटंक उपलक्ष में धृत हो रही हो। अतः बाहु रूप पाश के द्वारा बन्धन करुँगा (ऐसा कह कर हस्तधारण करने को इच्छुक हुए)॥ १८८ ॥

राधा—हा धिक्कार ! हा धिक्कार ! निश्चय यह महामन्मथ-सेवा का प्रभाव है। क्यों कि पतिव्रता स्पर्श पाप से तुम्हारा भय नहीं है ॥ १८९ ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके) हे भाविनि ! सत्य ही है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम उत्कट कोपशालि पति के प्रति बद्धव्रता हो रही हो, अतः तुम्हारी प्रचुर सेवा में अभिलाषुक हो रहा हूँ ॥ १६० ॥

राधा—(प्रणय कोप के साथ) हे वक्रवितण्डा में पण्डित ! क्षान्त हो, यह निश्चय जानो कि कुलाङ्गना स्पर्श अत्यन्त अहित-प्रद है ॥

कृष्ण—हे कुलीन-मानिनि ! क्या मैं अकुलीन हूँ कि मेरे लिये तन स्पर्श करना अनुचित है ।

राधा—कुलीनजनों का इस प्रकार आचरण उपयुक्त है क्या, कि निर्जनवन में परवनिताओं का निरोध के द्वारा इस प्रकार विडम्बन करना ॥

कृष्ण—(परशब्द का श्रेष्ठार्थ मान कर कहने लगे) हे कामिनि ! तुम अपने को श्रेष्ठ वनिता करके मानती हो, अतः इस वन में आज घट्टदान प्रदान करो ॥

राधा—हे मोहन ! तुम जैसे जन जिस प्रकार तर्क कर रहा है यह जन उस प्रकार का नहीं है । अतः यहाँ घूर्णायमान भ्रूभुजङ्गयुगल नर्त्तन के द्वारा व्यालग्राहि क्रीड़ाडम्बरों से प्रयोजन नहीं । यहाँ शुल्कभिक्षा दुर्लभ है ॥ १६१ ॥

कृष्ण—अयि दानशीले ! सम्प्रति तुम्हारा उत्कृष्ट शुल्कदान में उद्यम को देख कर तुम्हारी परमोत्सवमयी चटुला भ्रूनर्त्तकी नृत्य कर रही है ॥ १६२ ॥

राधा—(संस्कृत में) यह मत्सदृश कान्ता रूप लोहमयी अर्थात् कनक प्रतिमा स्फूर्त्ति पा रही है । यह अपनी कठिनता प्रयुक्त के कारण अलघु, कृष्णवर्त्म का अर्थात् प्रज्वलित अग्नि का स्तम्भन करती है, अतः इस में भूरि फणवाला कुहक नाम नाग के दन्ताघात अपनी-क्रिया में असमर्थ होता है । अथवा यह मल्लक्षण कान्ता कनक प्रतिमा रूप से स्फूर्त्ति पा रही है, जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि कृष्ण तुम्हारी प्राप्ति के उपाय में अति विरोधिनी है। क्योंकि मुझ में मायावि-जन का भोगाभिलाष किसी प्रकार में सिद्ध नहीं हो सकता ॥ 'तात्पर्य्य-लोहमयी शब्द के अक्षर विश्लेष करने पर ला-तथा ऊहमयी ठहरता है। ला शब्द का अर्थ दान, ऊहमयी शब्द का अर्थ वितर्कमयी, प्रतिकृति शब्द से प्रतिमा, अलघु शब्द से अतिशय, कृष्णवर्त्म शब्द से कृष्ण के आश्रयणीय उपाय, कुहक शब्द से कपटी एवं भोग शब्द से वाञ्छा है। अर्थ है कि-दानविषय में वितर्कमयी यह प्रतिमा कृष्ण तुम्हारी प्राप्ति उपाय में प्रतिबन्ध स्वरूपा है। जिस में मायावी का अति भोगाभिलाष विफल हो जाता है ॥ १९३ ॥

कृष्ण—(लोहनिर्म्मित प्रतिमा अर्थ का अवलम्बन करके) हे राधे! तुम अद्भुत बहु लोहमयी प्रतिमा ध्रुव सत्य हो। तब तो तुम स्वयंग्रहा हो अर्थात् अपने से ग्रहण करने वाली हो, अत एव चुम्बकमणि रूप मुझ को आलिङ्गित करो। (ऐसा कह कर मन्द मन्द गमन करने लगे)।

तात्पर्य्य-"प्रतिमास्यद्भुता" पद के सन्धिविच्छेद करने पर प्रतिमासि अद्भुता" "बहुलोहमयी" पद के सन्धिविच्छेद में "बहुला ऊहमयी और चुम्बक शब्द चुम्बककर्त्ता है। अर्थ-हे राधे! तुम प्रतिमास में अद्भुता अर्थात् नित्यनवीना हो। तुम्हारे रूप दर्शन से नाना प्रकार का तर्क उपस्थित होता है। अत एव चुम्बनकर्त्ता मुझ में आलिङ्गन प्रदान करो ॥

राधा—(ईषत् प्रत्यावर्त्तन करके) दूर हो, दूर हो। (आर्त्त-स्वर से) मुझे मत पकड़ो।

कृष्ण—तुम युवतियों की शिरोमणि स्वरूपा हो, चौरासी-लक्ष शुल्क के विनिमय के द्वारा तुम को प्राप्त किया है। अतः क्यों नहीं धरूँगा। (ऐसा कह कर पकड़ने की इच्छा से पाद-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निक्षेप करने लगे)

राधा—(भय जात त्वरा का अभिनय कर बाँई ओर गमन करने लगी) ।। १६४ ।।

ललिते ! तुम क्या कौतुक देख रही हो ? ।।

नान्दीमुखी—सखि राधे ! अब कुट्टमित-भाव प्रकटन की आवश्यकता नहीं है । क्यों पलायन कर रही हो ? ।।

ललिता—(आगे प्रदक्षिणा करके) ।। १६५ ।।

यद्यपि दुःशील स्वभाव वाले लुंठक तुम सब के दानगणना प्रलाप को कानों में नहीं सुन रही हूँ तो भी कुछ बोलना चाँहतीं हूँ ।।

कृष्ण—कठिने ! जो इच्छा हो कहो ।। १६६ ।।

ललिता—(संस्कृत में) अहे तुम्हारे वयस्य मधुमङ्गल ने अभी कहा था कि-ये सब व्रजहरिणनयना प्रत्येक चौरासीलक्ष मूल्यवती हैं परन्तु इन में से प्रियसखी महार्घा है अर्थात् मूल्य की संख्या नहीं है । यह बात जगद्विख्यात है । अत एव हे शठ ! किस प्रकार राधा को ग्रहण करने का साहस कर रहे हो ? ।। १६७ ।।

कृष्ण—(स्वगत) जो भी हो इसने मुझ को निरुत्तर कर दिया है । (ऐसा कह कर उत्कर्ण मना होकर) सुबल ! यह गभीर-धर्म-वाली, वागाडम्बर कारिणी रमणी कौन है ? जो कि दूर में अस्पष्ट रूप से विचरण कर रही है । (ऐसा कह कर सुबल के कर्णसंलग्न से) यदि इन महासैन्यों के साथ सम्मर्द अर्थात युद्ध होता है तो राजसमीप में जाकर समस्त निवेदन कर मेरे लिये शासनपत्रिका लाओ ।। १६८ ।।

सुबल—मैं इस कोलाहल का उत्पत्तिस्थान जानने के लिये चलता हूँ ।। (ऐसा कह कर चलने लगा) ।। १६९ ।।

कृष्ण—हे कठोरभाषिणि ललिते ! तुम्हारी सखी चौरासी-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्षाधिक हो सकती है परन्तु कोटिसंख्या अतिक्रमण नहीं कर पावेगी। उस के बाद यह नागरचन्द्र षोलहलक्ष के द्वारा अवश्य शुल्कान्त:पाति में तुम को निक्षेप करेगा॥ पक्षान्तर में यह नागरचन्द्र तुम को अपनी षोलह कला की अन्त:पातिनी करके आत्मसात करेगा ॥ २०० ॥

राधा—नान्दीमुखी! आपका निदेश सुन्दर रूप में सम्पन्न हो रहा है। क्यों कि घट्टदान कोटिगुण रूप हो रहा है ॥२०१॥

नान्दीमुखी—सखि राधे! क्यों पालन-सम्पन्न न होगा, क्यों कि शुल्क का तृतीयांश ग्रहण किया गया है ॥ २०२ ॥

सुबल—(वयस्य के साथ प्रवेश कर के) प्रियवयस्य की निज सेना उद्यान चक्रवर्ती सिंहगण के निर्घोष के द्वारा दिङ्मण्डल बधिर करके जय प्राप्त हो रहे हैं ॥

कृष्ण—प्रियवयस्य उज्वल! निश्चय तुम चक्रवर्तिसमूह के पत्रवाहक हो ॥ २०३ ॥

उज्ज्वल—ऐसा ही है, महाराज की महाघट्टाधिकार विषय में यह लिपि है। (ऐसा कह कर श्रीकृष्ण के हाथ में केतकीपुष्प के द्वारा मुद्रित पत्र प्रदान करने लगा)

कृष्ण—(छल के साथ नि:शब्द से लिपिवाचन मुद्रा का अभिनय करके)

वृन्दा—नागरेन्द्र! हम सब पत्रश्रवण करने की इच्छुक हैं। अत एव मुखबन्द का परित्याग कर केवल कार्य का उच्चारण करो ॥

कृष्ण—(स्पष्ट करके पाठ करने लगे)—॥२०४॥

प्रचुरगर्ववाली ये सब रमणियाँ सूर्य्यदेव की परिचर्य्या में पाण्डित्य लाभ कर शठ—बुद्धि से घट्ट व्याघात कर गुप्तरूप से भ्रमण कर रही हैं। अतएव अप्रमत्त आप सब पटुता पूर्वक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्यन्त यत्न के साथ इन के दीर्घ दर्शनछल से सौगुणा शुल्क विधान करें ॥ २०५ ॥

नान्दीमुखी— दानीन्द्र ! ये सब रमणियाँ स्वभाव से विशुद्ध हैं परन्तु क्यों कपटलेश शिक्षा में अभिलाष रखती हैं ? ॥ २०६ ॥

कृष्ण—तौ भी उन दुर्गम कान्ताराधिराज का शासन अवश्य अनुष्ठान योग्य है। (ऐसा कह कर स्थानान्तर गमन करके) अहो ! आश्चर्य्य ! शैशवावस्था की सम्यक् रूप से निवृत्ति नहीं हुई तो भी इन का वक्षःस्थल उच्च दिखाई दे रहा है। (पुनः देख कर) उत्तम बस्त्र के द्वारा यद्यपि वक्षःस्थल ढका हुआ है तो भी भीतर से कांचनमय किरणसमूह निर्गत हो रहा है ॥ २०७ ॥

राधा—(असूया के साथ वक्रभाव से नेत्रान्तपात करने लगी)

कृष्ण—(कौतुक के साथ आत्मगत) अहो ! आज गान्धर्व्विका वस्त्रोत्तालन लीला के द्वारा पुलकवृन्द को औरअधर चातुरी परिचय के द्वारा मन्दहास्य को संरोधित कर रही है वह मिथ्या कोप से दगञ्चल घूर्णन के द्वारा रुष्टा की भाँति मुझ को प्रत्याख्यान करती है ॥ २०८ ॥

(प्रकाश्य पूर्वक) उत्तम, हे महोद्यानचक्रवर्त्तिन् ! उत्तम, उत्तम। सब के ऊपर ईश्वर की बुद्धियाँ विचरण करती हैं यह लोकप्रसिद्धि सत्य ही है। (बांई ओर दृष्टिपात करके) नान्दीमुखी ! देखो देखो, ये पांच जन गोपरामा प्रत्येक अपने वक्षःस्थल में कनक कलश गोपन कर घट्टाधिकारियों को प्रतारित कर रहीं हैं ॥२०९॥

सब—(क्रोध भरे भ्रूधनु कुटिल करके आक्रोश के साथ) हे रमणीतस्कर ! अपने स्थान पर चले जाओ ॥ २१० ॥

कृष्ण—(अपवारण करके) वृन्दे ! कुञ्चितभ्रूवाली पंच-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखी का अवलोकन करो। (ऐसा कह कर गद्‌गद वाक्य से) काम पञ्चानन पांच वदन से किसी तीव्र व्यथा को प्राप्त कर निश्चय सौम्यमूर्त्ति का भजन कर गुरुतर विद्यालाभ के द्वारा कृती हो रहा है। अत एव इन पांच जन के भ्रूधनु समूह में पांचबाण सन्धान पूर्वक पंचमुख अर्थात् सिंह-विक्रम शाली मुझ को वध करने में उन्नत हो रहा है। (ऐसा कह कर घूर्णायमान होने लगे)-॥ २११ ॥

मधुमङ्गल—(व्यवधान से) हाय! अपनी विह्वल प्राप्त आत्मा का रोध क्यों नहीं करते हो क्यों कि हम सब इन कुटिलदृष्टि वाली किशोरियों के द्वारा कटाक्षित हो रहे हैं ॥ २१२ ॥

कृष्ण—(भाव गोपन करके) सखे मधुमङ्गल! उन कुटिल-भ्रूवालियों के विचित्र कौटुल्य के द्वारा विस्मित हो रहा हूँ। जो भी हो उस से क्या हो सकता है। इन्होंने छल करके स्वर्णमय दश कलश को गोपन करके रखा है। अतः दश कुम्भ के शुल्क को दुगुना करने पर बीसलक्ष अधिक तीन कोटि होता है। पुनः पांच कलश के अस्सीलक्ष शुल्क मिलाने पर चार कोटि होता है, और सौगुण करने पर चार बृन्द होगा।

मधुमङ्गल—सुनो, राजकुल के तो हुए चार बृन्द, सर्वविद्या के गुरु तुम्हारे चौसठ कोटि, संख्या शास्त्रवेत्ता कायस्थ हमारे पच्चीस कोटि और दण्डधारि सुबलादि पशुपाल के ग्यारह कोटि हैं।

कृष्ण—सब को मिला कर पांच बृन्द हुए ॥ २१३ ॥

राधा—(ईषत् हास्य करके) तुम सब के रखने को पात्र नहीं देख रही हूँ। माप करके इतना धन कहाँ रखोगे? अतः पहले मधुमङ्गल के द्वारा व्रज से शकटादि तथा उन के वाहक बृष, महिष, गर्दभ, ऊँटादि को ले आओ ॥ २१४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण—हे हरिणनयने ! परिहास की आवश्यकता नहीं है, प्रफुल्लचित्त से यहाँ स्वयं इस कर्म के द्वारा उल्लिखित धन राशि का अर्पण करो, पक्ष में-उदयशील विख्यात इस निज देह का समर्पण करो ॥ २१५ ॥

नान्दीमुखी—(कृष्ण के निकट गमन कर असूया के साथ) मोहन ! हम सब की भगवती की स्नेह-पात्री सरलस्वभाववाली गोपरामाओं का किस लिये झूँठमूँठ दश कुम्भ के दान को बढ़ाया है ?

कृष्ण—नान्दीमुखि ! यह कभी अलीक नहीं है, यह वास्तविक सत्य है। ये पांच जन पंचदश कलस के विलास भाजन हैं॥ २१६ ॥

नान्दीमुखी—नागरेन्द्र ! महाव्रतधारिणी सन्यासिनी के मत्सदृश परिजन यथार्थ न जान कर कभी विज्ञापन नहीं करती है। तो भी यदि मेरे बचन में सन्देह है तब मेरे साथ आकर प्रत्यक्ष में देखो (ऐसा कह कर कृष्ण के साथ राधा के समीप में गमन पूर्वक) हला राधे ! यह दुर्ललित गोकुलेन्द्रनन्दन शपथ करने पर भी हमारे बचन में विश्वास नहीं कर रहे हैं। अतः प्रसन्न हो ईषत् वस्त्र उद्घाटन के द्वारा निज वक्षःप्रान्त दिखा कर इन हठशेखर के हस्त से सपरिवार आत्मा का मोचन करो ।।२१६॥

सब—(असूया प्रकाश कर के) दुर्बुद्धिके ! दूर हो दूर हो, तुम ही अनर्थकारिणी हो, अब हम सब ने जान लिया। यहाँ से दूरीभूत होकर किसी एकान्त स्थल में अपने वक्षः प्रान्त का अवलोकन कराओ ॥ २१८ ॥

नान्दीमुखी—(ईषत हास्य करके) अहे महाहठकारिणियों हित बोलने पर कोप कर रही हो।

कृष्ण—हमारा शुल्क खण्डित नहीं होगा क्यों कि यहाँ हरि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक रति काञ्चन का परित्याग नहीं करेगा ॥ २१६ ॥

विशाखा—(मन मन में) पहले कृष्ण की दूती बृन्दा को शुल्कार्थ के निमित्त कृष्ण को अर्पण करके दीपशिखा के द्वारा अग्निपूजा का प्रारम्भ करूँ अर्थात् उन्हीं की वृन्दा को उन्हीं को देने पर हमारी कोई क्षति नहीं है ॥ २२० ॥

(प्रकाश्य कर के) नागरेन्द्र ! कहाँ यह पंचघट घृत है और कहाँ परिमाण में घट्टशुल्क का संघटन। जो भी हो उपकारी राजकुमार तुम्हारी अपेक्षा करके प्रत्युपकार विषय में हम सब निज प्रियसखी वृन्दा को समर्पित करती हैं ॥ २२१ ॥

सुबल—(संस्कृत में) पंचवृन्द शुल्क प्रदानस्थल में एक वृन्द का अर्पण किस प्रकार उपयुक्त हो सकता है। हम सब संख्याभिज्ञ कायस्थ हैं, गोपों की भाँति हमारा प्रतारण नहीं कर सकती। श्लेष में पृथ्वी में सम्यक् ख्यातिवाले संख्यावेत्ता कायस्थों का प्रतारण नहीं कर सकती हो ॥ २२२ ॥

ललिता—(क्रोध प्रकाश कर के) विशाखे ! तुम अत्यन्त मुग्धा हो, क्यों कि इस लघु अर्थ में अपनी गुरुतर सखी वृन्दा को अर्पण करने की इच्छा कर रही हो ॥ २२३ ॥

मधुमङ्गल—ललिते ! यह अलीक माहात्म्य को रहने दो ॥

ललिता—वटो ! सुनो, तेंतीस कोटि देवता से शतकोटि अर्थात् वज्रहस्त इन्द्र प्रधान है। इस से दो परार्द्ध वैभव वाले भगवान् हिरण्यगर्भ प्रधान हैं। उन से समस्त सम्पत्ति की ईश्वरी लक्ष्मी प्रधाना हैं और उस से पुनः बृन्दा प्रधान है क्यों कि जिस की अपूर्व्व शोभा में भगवान् विष्णु मुग्ध होकर लक्ष्मी को तुच्छ ज्ञान कर कामना करते हैं। यह समस्त कथा हम ने भगवती पौर्णमासी के मुख से सुनी है ॥ २२४ ॥

विशाखा—(चरण में पड़ कर काकु विस्तार पूर्वक) सखि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिते ! उत्तम कहा है, परन्तु मैं तात्कालिक दुःसह दुःख के परिहार के लिये इस प्रकार अयुक्त कर्म्म करने की इच्छा कर रही हूँ। अतः प्रसन्न हों, वृन्दासमर्पण को अनुमोदन करो, हम सब यज्ञीयघृत आघ्राण के द्वारा अपनी आत्मा को पवित्र करें ॥

ललिता—(ईषत् हास्य प्रकाश की भाँति मस्तक अवनत कर के तूष्णीभाव में अवस्थित रहने लगी) ॥ २२५ ॥

विशाखा—ललिते ! तुम्हारा अभिप्राय जान लिया। अतः एक दिन के लिये अनुमोदन कर रही हो ॥ २२६ ॥

कृष्ण—(सहर्ष के साथ) नान्दीमुखी ! आपने अत्यद्भुत आश्चर्य्य देखा। अत एव जिज्ञासा कीजिये। ये सब गोपसुन्दरियों ने मेरे कर्णयुगल में ताण्डवारम्भकारि मकर कुण्डल युगल का क्यों शुल्क योग्य नहीं बनाया है ॥ २२७ ॥

नान्दीमुखी—हे कीर्त्तिदाकीर्त्तिदायिनि राधे ! यह अतिशय अयुक्त है क्यों कि वनमालि की तो वृन्दा है, उस को वनमालिसम्बन्ध में शुल्कविषय में अर्पण ॥ २२८ ॥

श्रीराधा—सखि वृन्दे ! क्यों तूष्णीभाव में अवस्थित रहती हो ? शीघ्र अपने पक्ष का प्रकाश करो अर्थात् तुम श्रीकृष्ण की पक्षपातिनी हो किम्बा हमारी पक्षपातिनी यह व्यक्त करके कहो ॥

कृष्ण—(वृन्दा के मुख के प्रति दृष्टिपात करके लोचन-कोण का कुञ्चन करने लगे अर्थात् चक्षुः के द्वारा संकेत कर स्वाभिप्राय प्रकाश करने लगे)

वृन्दा—नागरेन्द्र ! नेत्र-ताण्डव निरर्थक हुआ है क्यों कि वृन्दा तो वृन्दाबनेश्वरी की अनुवर्त्तिनी है ॥

सब—(उच्च-हास्य करके) भगवती लज्जे ! कहाँ गई ? प्रसन्न हो, प्रसन्न हो ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दा—सखि वृन्दावनेश्वरि ! यहाँ पर मेरी विज्ञप्ति को कुछ अवसर प्राप्त हो रहे हैं अर्थात कुछ निवेदन करने की इच्छा कर रही हूँ ॥ २२९ ॥

राधा—सखि वृन्दे ! कैसी विज्ञप्ति ?

वृन्दा--साधुगण सर्वतोभाव से कहते हैं कि जुआरिसभा से घट्टपाल की सभा अतीव प्रशंसनीय है अर्थात विरुद्ध लक्षण के द्वारा अत्यन्त घृणित है। इस लिये यदि मल्लक्षण सरल जन को शुल्कार्थ बिक्रय करने में प्रवृत्त होना है तो इस अयोग्य स्थल में न कर स्थानान्तर में विक्रय करो ॥ २३० ॥

कृष्ण—(ईषत हास्य के साथ) निश्चय बोध होता कि ये सवे अनुपम पूर्ण शोभावाली सुन्दरियाँ अब तक अन्य किसी के द्वारा सम्भुक्ता नहीं हुई हैं। अतएव ये सब राजकुल में योग्या हो सकती हैं परन्तु वृन्दा तो चिरकाल से अत्यन्त रूप से सम्भुक्ता हुई है जो वैभव शून्य हो गई। अतः इस लिये इस का ग्रहण करना आवश्यक नहीं हे ॥

राधा—(उच्च हास्य कर के) अलाभवश अङ्गना परित्याग करने का नाम तुरङ्ग ब्रह्मचर्य्य है ऐसा पण्डितगण कहते हैं। अर्थात् अदृष्ट में स्त्रीलाभ नहीं अत एव वह लोगों के निकट अपने को ब्रह्मचारी करके व्यक्त करता है। यह ऐसा ही है ॥२३१॥

मधुमङ्गल—(परस्पर मन्त्रणा करके) विशाखे ! मैं कायस्थ-विद्या में अर्थात् गणितशास्त्र में पारदर्शी हूँ। इस लिये निश्चय तुम्हारे घट्टदान विषय में अनुकूल रहूँगा, अत-एव मुझ को पारितोषिक प्रदान करो ॥ २३२ ॥

विशाखा—आर्य्य ! नवीन शक्कर दुँगी।

मधुमङ्गल—विशाखे ! निश्चय ज्ञात हुआ, तुम परिहास कर रही हो ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाखा—भगवान् सूर्य्य की शपथ करती हूँ ॥ २३३ ॥

मधुमङ्गल—(हर्ष के साथ श्रीकृष्ण के निकट गमन करके) प्रियवयस्य! मैं मान के समय शतकोटि प्रमदारोष-भञ्जन में पारदर्शी हूँ। दीपावली-उत्सव में शतकोटि सुरभीपूजा का आचार्य्य हूँ। अत एव आज यह महा—महोत्सव में पहले अप्रार्थित शतकोटि दक्षिणा प्रदान करो ॥

कृष्ण-(स्मरण करके तूष्णीभाव अवलम्बन करने लगे) ॥२३४

मधुमङ्गल—(आड़ में) विशाखे! जब प्रियवयस्य कोई उत्तर नहीं देता है तब तो निश्चय जानो इस में उन की सम्मति है। क्यों कि मौन ही सम्मति को व्यक्त करता है। अतः प्रतिश्रुत का प्रदान करो, (ऐसा कह कर अञ्जलि विस्तार करता है)

विशाखा—(ईषत् हास्य करके) लो यह शक्कर,

(ऐसा कह कर खप्परांश प्रदान करने लगी)

मधुमङ्गल—(उच्च हास्य करके) आश्चर्य्य! मैं सरलब्राह्मण हूँ, खांड का लोभी हूँ, शक्कर माँगा था, परन्तु तुम सब ने कुटिलता पूर्वक अर्थान्तर कल्पना करके मेरे हाथ में खप्पर टुकडे दिये। ठहरो तुम सब को भली भाँति निष्कृति कर रहा हूँ। (ऐसा कह कर श्रीकृष्ण के समीप जाकर) प्रियवयस्य! काम तो छोटा सा है इस में विलम्ब क्यों कर रहे हो, शुल्क ग्रहण कीजिये ॥ २३५ ॥

कृष्ण—सखे मधुमङ्गल! मैं मधुसूदन अर्थात भ्रमर हूँ। रेफदोनों में आधिका नाम्नी भ्रमरी समागत हुई, पक्षान्तर में राधिका नाम्नी भ्रमरी अर्थात कामिनी उपस्थिता है। अतः इस का ग्रहण करना उपयुक्त है ॥

वृन्दा—यह प्रफुल्ल चम्पकलता ही सतृष्ण मधुसूदन के लिये उपयुक्त है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण—वृन्दे ! तुम तत्व-बोध में अनभिज्ञा हो, क्यों कि मधुसूदन पक्ष में राधा ही अनुरूपा है। जिस के नामाक्षर विपरीत रूप में पाठ करने पर मधुमयी "धारा" यह सम्पन्न होता है ॥ २३६ ॥

चित्रा—हे गोकुलवीराग्रगण्य ! ये समस्त गोपियाँ अप्रतिम पूर्ण शोभाशालिनी हैं। तुम ने स्वयं सम्भावना योग्य बनाया है। अतः पांचवृन्द के लिये हम सब में से एक का ही ग्रहण करना किस प्रकार उपयुक्त होगा ॥ २३७ ॥

वृन्दा—सखि चित्रे ! तुम प्रशंसा करने योग्य हो क्यों कि तुमने दुर्धर विश्रृंखल हस्ति को कोमल वाक्यरूप लतापल्लव के द्वारा स्तम्भित किया है ॥ २३८ ॥

मधुमङ्गल—प्रियवयस्य ! शत गुण शुल्क ! यहाँ पर शत शब्द का असंख्य बाचक अर्थ परित्याग कर पंक्तिगणना में दस को पर्यवसित करने के कारण हम सब उद्यान चक्रवर्ती के निकट अत्यन्त अपराधी हो रहे हैं ॥ २३९ ॥

कृष्ण—सखे ! उत्तम ! उत्तम ! तुम प्रियनिष्ठ रसमाधुरी पान कराने के लिये कायस्थिका अर्थात् शरीर-स्थित रसवती पाकशाला के रंधनाध्यक्ष हो रहे हो ॥ २४० ॥

हम सब ने प्रधान नरपति के अभिप्राय के अनुसार असंख्य धन को अङ्गीकार किया है। परन्तु यहाँ स्मृतिशास्त्र यह कह रहा है कि जो स्वभाव से गर्वशील हैं एवं सम्पति के द्वारा अत्यन्त उन्नत हैं उनके लम्बे छल प्रमाणित होने पर यथेष्ठ दण्ड दिया जा सकता है ॥ २४१ ॥

ललिता—गोपजाति को दण्ड-ग्रहण के बिना क्षणकाल के लिये अन्य कोई अवलम्बन नहीं है। अतः दण्डग्रहण करना उपयुक्त हो रहा है ॥ २४२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण—यद्यपि इन पांचजन से शुल्क की पूर्णता नहीं होती है तो भी मैं दूसरी (राधा) की रक्षा करुँगा क्यों कि इसकी चन्द्रकला उन्मिलन में क्षमता है अर्थात ललिता से दूसरी श्री-राधा नखांक-प्रवृत्ति धारण करने में समर्था है। तिथिपक्ष में द्वितीया तिथि चन्द्रकला धारण करने में समर्थ होती है ॥२४३॥

राधा—(उच्च हास्य करके) हाय ! हाय ! पहिले देवता आराधन विषय में कुसुमचयनकारिणी खञ्जनाक्षी रमणियों को यह स्थान मङ्गलजनक था। वर्तमान एक महाउन्मत्त महा मतङ्ग ने (हस्ति) आकर समस्त आक्रमण कर भयंकर कर दिया। अब गोवर्द्धन की तलहटी का उचित अवलम्बन देख रही हूँ। हाय धिक् ! धिक् ! दान्नींद्र के दम्भारम्भ से वाटपाड़ (लूटमार) प्रारम्भ हो गया है। अतः किस से निवेदन करुँगी। यह राजपुत्र हैं इनका नियंता कौन हो सकता है।

कृष्ण—नान्दीमुखी ! इनके इन गुरुतर बचनों की अनर्गलता तुमने सुनी है। मैं साधु-मार्ग रक्षा पूर्वक अति ख्यातिशाली हो रहा हूँ। इसने वाटपाड़िता अपवाद रूप कालिमा का आरोपण कर अपनी निर्भयता प्रकाशित की है। अतः मैं इस को भुजारूप दण्ड-युगल के द्वारा गाढ़रूप से पीड़ित करुँगा ॥२४४॥

नान्दीमुखी—(सम्मुख जाकर निवारण करती हुई) हे सुन्दरवीर ! मैं महातापसी के परिवार की हूँ। मेरे समक्ष इस कुलबाला का पीड़न अत्यन्त अयोग्य है ॥ २४५ ॥

कृष्ण—मैं गोष्ठराजकुमार हूँ, अत्यन्त अहङ्कारियों का चूड़ामणि हूँ। आज किस प्रकार से गर्वित युवतियों की दर्पगरिमा का उपेक्षा करुँगा।

पक्षान्तर अर्थ-मैं राजपुत्र हूँ, युवकगण का चूड़ामणि हुँ आज कि प्रकार से गर्वित युवतियोंका कामोद्वेग की उपेक्षा करुँगा ॥२४६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता—हे कृष्ण ! ठीक कह रहे हो, तुम इस विषय में अपराधी नहीं हो, घाटीदेवी का यह कोई अपूर्व प्रसाद है, क्यों कि यद्यपि तुम सत्कुलोत्पन्न राजपुत्र हो तो भी तुम को धूर्त्त-चूड़ामणियों की विस्मापनकारिणी किसी विद्याने अध्यापित कराया है ॥ २४७ ॥

कृष्ण—(दर्प के साथ) तुम सब घट्टाधिराज की अवज्ञा कर शुल्क प्रदान में पराङ्मुख हो विवाद करने में प्रवृत्त हो रही हो तब निश्चय बोध होता है इन दुर्गम विषम गिरितटों में हम से युद्ध करने की इच्छा कर रही हो अथवा कामयुद्ध के लिये इच्छुक हो ॥ २४८ ॥

राधा—हे मोहन ! हम सब कैसे सहन करेंगी। क्यों कि "अत्यन्त घर्षण से चन्दन में से अग्नि उत्पन्न होती है" यह शास्त्र बचन प्रमाण है, अतः हम से दोषारोप मत करना ॥२४९॥

कृष्ण—हे देवि ! प्रसन्न हो, अयोग्य भ्रमकारिणी कुटिनाटी (कौटिल्यनाट्य) का परम चतुर मुझ में प्रयोजन नहीं है। हमें प्रार्थित धनों का प्रदान करो, अथवा हमारे साथ युद्ध में प्रवृत्त हो ॥ १५० ॥

वृन्दा—अहो ! तुम महान् योद्धा हो, युद्धविषय में तुम्हारी बड़ी ख्याति है, हम सब अबला हैं, तुम्हारे साथ युद्ध करने में किस प्रकार समर्थ होंगी ? ॥ २५१ ॥

कृष्ण—हे वनचारिणि वृन्दे ! तुम इन के स्वरूप जानने में अनभिज्ञा हो। देखो, इन के उन्नत श्रोणिदेश रथ रूप है, हस्ति के समान पदविन्यास के द्वारा ये सब उज्ज्वलान्वित हैं, इन के सुन्दर पद पदातितुल्य शोभायमान है, और चञ्चल केशकलाप चँवर के समान शोभाधारण कर रहा है। अतः ये सब हरिण-नयना कन्दर्पसैन्य रूप में विराजमाना है ॥ २५२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा—हे नागर ! तुम्हारे कुलवाज्ञाविमोहक यह घट्टेन्द्र-जाल प्रत्यक्ष हो गया है। अतः पुनः बिस्तार में प्रयोजन नहीं है, मैं सखियों के साथ यज्ञवेदिका में चल रही हूँ ॥ २५३ ॥

कृष्ण—हे घूर्णिताक्षि ! तुम घट्टशुल्क के निमित्त अवरुद्धा हुई हो, किस प्रकार जाओगी ? यदि आज्ञा का उल्लंघन कर गमन करोगी तो यह चपल तुम्हारा आकर्षण करेगा ॥ २५४ ॥

चम्पकलता—क्या तुम भोजराज कंस के अधिकारी हो रहे हो कि जिस कारण हम कर दान के द्वारा तुम्हारी सेवा करें ॥ २५५ ॥

कृष्ण—चम्पकलते ! मैं यथार्थ भोगराग का अधिकारी हूँ परन्तु हस्त के द्वारा आराधन करने पर मेरी अति प्रसन्नता नहीं होगी, इसी लिये तुम सब यत्न के साथ जिन सुवर्णकुम्भों का सङ्गोपन कर रही हो उन का स्पर्श कराओ ॥ २५६ ॥

ललिता—(सम्भ्रम के साथ) हे मुग्ध-रमणियों के विडम्बन-चातुर्य्य में गर्व्वायमान ! देखो यह विदग्ध-श्रेष्ठा गोपयुवती-वल्लीयाँ राजा के घट्टदान का छेदन कर अवलीला से चल रही हैं अतः तुम जाकर उद्यानचक्रवर्त्ती के निकट फुत्कार करो ॥२५७॥

कृष्ण—मैं अपनी भुजाओं से महापराक्रमी हूँ, अतः तुम्हारे लिये फुत्कार क्यों करुँ । क्या हस्ति-दर्पहारी सिंह हरिणीवृन्द विमर्द्दन में प्रयास करता है ? ॥ २५८ ॥

राधा—यदि समक्ष कौतुकवश बलवती ललिता खड़ी होती है तो हरि क्या कर सकता ? अर्थान्तर में-यदि सिंह विमर्द्दक सरभ रूप ललिता समक्ष उपस्थिता है तो हरि रूप सिंह क्या कर सकता है ॥ २५९ ॥

कृष्ण —पङ्कजाक्षि ! यथार्थ में कह रहा हूँ सुनो। तुम कामदायिनी कल्पलता स्वरूपिणी हो, तुम बार बार विशाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रूधनु का कम्पन क्यों कर रही हो ? हमें यथा निर्दिष्ट अर्थ-राशि का प्रदान करो अथवा सखियों के साथ सुन्दर रूप से युद्ध में प्रवृत्त हो ॥ २६० ॥

ललिता—(वक्ररूप में देख कर) गोपिकाहरणकारी शङ्ख-चूड़ का विमर्दन करने से तुम विक्रमशाली हो गये हो, अतः युद्ध करने में तुम्हारा अभिलाष उपयुक्त है ॥ २६१ ॥

राधा—(सम्भ्रम के साथ) सखियों ! अब विश्राम में प्रयोजन नहीं। अतः अपनी अपनी गगरी को उठाओ ॥२६२॥

कृष्ण—सखे सुबल ! तुम शीघ्र पंच स्वर्णकलश को ग्रहण कर घट्टांगन को भूषित करो, बाद में मैं पंच मुखी को धारण करूँगा क्यों कि वह पुन्नागप्रिया अर्थात् पुरुष रत्न की प्रियतमा है। पुन्नाग कृष्ण हैं पक्ष में-महासर्प। श्रावण पञ्चमी नाग-पञ्चमी करके प्रसिद्ध है ॥ २६३ ॥

सुबल—(प्रदक्षिणा करके) ललिते ! तुम्हारे ये समस्त कलश अत्यन्त भारयुक्त के कारण दुःखप्रद हैं, अतः उन को घट्टगृह में रख आता हूँ। तुम सब सुख से गमन करो ॥ २६४ ॥

ललिता—(अवज्ञा हास्य के साथ देख कर) हा धिक् ! हा धिक् ! अरे प्रसिद्ध चौर-चक्रवर्त्तीलीला के अमात्य ! इस ललिता के सोते हुए भी ऐसा साहसी कौन है जो कि तृण तक का हरण कर सकता हो ? जगने में तो कहना ही क्या है॥२६५॥

सुबल—(भय के साथ प्रत्यावर्त्तन करके) प्रियवयस्य ! मैं अकेला हूँ, कैसे पञ्च कलश का आहरण करूँगा अतः सखाओं को सङ्ग में लेकर स्वयं आजाओ ॥ २६६ ॥

कृष्ण—सखे ! तुम सुबल (सुष्ठु बलवान्) होकर भी दुर्बल क्यों हो रहे हो क्यों कि ललिता के इस सामान्य आटोप से उच्चाटित हो गये हो ॥ २६७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुबल—(सपरिहास्य पूर्वक व्यवधान से) प्रियवयस्य ! केवल वचन सुलभ दर्पराशि का प्रयोजन नहीं है, तुम्हारा पराक्रम भली भाँति प्रत्यक्ष हुआ है। उस दिन श्रीराधा के साथ पाशकक्रीड़ा में ललिता के द्वारा छल से राधा की जय घोषणा कर मुरली छीन ले जाने पर तुम ने कौतुभमणि को छिपाया और स्मेरमुखवाली गोपबालाओं के कटाक्ष करने पर तुम भयभीत हो गये थे ॥ २३८ ॥

कृष्ण—(स्मरण करके) अरे मिथ्या-बोलने में पटु ! मौन हो जाओ, महासमीरण रूप मेरे प्रबल वेग का आरम्भ हुआ, रम्भावृक्ष की भाँति अतिक्षुद्रा ललिता का कहना ही क्या है। वह तो मेरे प्रबल प्रताप से शीघ्र ही डर जावेगी ॥ २६९ ॥

ललिता—विशाखे ! प्रियसखि के भ्राता उस योगीन्द्र श्रीदामा की बन्दना करती हूँ, जो प्राणायाम के द्वारा मारुत को जीत कर गोपीरूप केलावृक्षों की गोष्ठी को प्रफुल्लित करेगा ॥ २७० ॥

विशाखा—(ईषत् हास्य पूर्वक) ललिते ! उत्तम स्मरण कराया, जिस का पूर्वकाय (शरीर) श्रीदामचन्द्र के द्वारा अङ्कित है, जिसने भाण्डीर रूप पूर्व पर्वत का आश्रय किया है, उस कृष्ण जलधर को देख कर विद्युत की समाना यह वृन्दा हास्यमुखी हुई थी ॥ २७१ ॥

अर्जुन—(संस्कृत में) यहाँ हम सब मित्रों के गण में कौन सखा हम सब को जय करेगा अथवा हम सब किस को पराजित करते हैं यह तो वयस्यत्व मात्र का कारण है परन्तु तुम्हारे भ्रातृत्व कारण नहीं है। अत एव तुम सब का यह गर्व वृथा है ॥ २७२ ॥

कृष्ण—(श्रीराधा को देख कर) हे गौरि ! यदि तुम मन की चतुराई से कांचनराशि को देने की इच्छा नहीं करती हो तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गैरिकादि से चित्रित गिरिगह्वर में प्रवेश करो ॥ २७३ ॥
(ऐसा कह कर राधा को ईषत् आवरित करने लगे)

ललिता--(बीच में उपस्थित होकर) हे रतिवल्लभ ! सुनो, राधा का पति इन के माधुरीमाहात्म्य को श्रवण कर पादपद्म स्पर्श सौभाग्य-भाजन से अपने को अयोग्य मान कर भयचित्त से अपने गृह में केवल रह कर अपने को कृतार्थ मान रहा है और दूर से सादर बन्दन कर रहा है ॥

(इस प्रकार अर्द्धोक्ति में श्रीराधा असूया के साथ ललिता के प्रति दृतिपात करने लगी) ॥ २७४ ॥

ललिता—(ईषत हास्य करके) हे राधे ! तुम तो अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं कर रही हो, इस में तुम्हारी लज्जा क्यों, जिस से तुम्हारा अभियोग व्यक्त नहीं हो रहा है। मैं तुम्हारी सखी हूँ, यथार्थ कहने में प्रवृत्त हो रहीं हूँ। इस से यदि कुछ व्यक्त होता है तो वह वो इष्टापत्ति है। क्यों कि उत्सुक रूप महाराज की प्रबलता व्यक्त होने पर लज्जादि दस्यु का प्रभाव कैसे हो सकता है ।

जो हम सब की प्रियसखी का अङ्गसमूह कौमार समय से लेकर अब तक पुरुष-जन की सौरभ-कणिका को नहीं जान पाया, और सेवा-विषय में उत्सुक होकर भी नवयौवन के भय वश मन्दगामी होकर अत्यन्त रूप में सेवा नहीं कर सका, महासती-कुलचक्रवर्त्तिनी प्रियसखी के उन अङ्गों के सन्दर्शन में कृतनिश्चय जन को महासाहसिक धुरन्धर कहा जा सकता है। स्पर्श का तो कहना ही क्या है। अत एव दूर गमन करो ॥

सब—(ईषत हास्य करने लगे) ॥ २७५ ॥

मधुमङ्गल—(उच्च हास्य करके) ललिते ! इस प्रकार अत्यन्त गर्व का प्रयोजन नहीं है। तुम अपनी प्रियसखी गान्धर्विका को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिज्ञासा करो। उन्होंने दुर्वासामुनि के मुख से हमारे प्रियवयस्य श्रीकृष्ण के आशैशव ब्रह्मचर्य्य—माधुर्य्य का स्वयं श्रवण किया है ॥ २७६ ॥

सुबल—ललिते ! मुनिपुत्र दुर्वासा ने सत्य कहा है। अतः उन के बचन में विश्वास करो। यद्यपि प्रियवयस्य महावीर-व्रत-वाला है तो भी नारीगण से भय प्राप्त हो जाता है ॥ २७७ ॥

अर्ज्जुन—हाँ स्मरण हुआ है, मैं ने बार बार देखा है, इन के बलया-शब्द से सम्भ्रम प्राप्त कर प्रियसखा कम्पायमान एवं पुलकिताङ्ग हो जाता है ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य के साथ) ललिते ! यहाँ पर तुम्हारा विरोध करना कल्याण कारक नहीं है, क्यों कि समानधर्म्म वाला साधक दोनों की एक ही साथ निवास रूप सौहार्द माधुरी शीघ्र ही महाव्रत-सिद्धि के लिये होती है ॥ २७८ ॥

राधा—(कुटिल नयनाञ्चल निक्षेप पूर्वक अवहेलना के साथ किञ्चित फिर कर) नागर ! तुम्हारी चपलचातुरी अवशेष नहीं है अत एव और पिष्टपेषण मत करो ॥ २७९ ॥

कृष्ण—(आवरण करके) वृन्दे ! देखो देखो, यद्यपि हमारे परिहास बचन से अत्यन्त परमानन्द उत्पन्न हो रहा है तो भी उस का कर्णप्रान्त में ईषत् स्थान न देकर गर्व्वनिबन्धन अवहित्था से राधा अति-गूढ़हास्य से प्रफुल्लमुखी हो रही है। जो भी हो वह अनादर सूचक बचन भङ्गी के द्वारा लाघव विस्तार कर रही है। यह तो मैत्रीगौरव अपेक्षा से अर्थात चन्द्रावल्यादि-निष्ठ तदीयतामय प्रणय से मेरा शतगुण प्रीतिविधान कर रही है ॥

राधा—(किञ्चित हास्य करके ललिता के कर्णमूल में कहने लगी) ॥ २८० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता—कृष्ण ! तुम इस गोकुलवीच में विख्यात गुण वाले युवराज हो। इसी लिये हम सब मौन होकर अवस्थित हैं। अब यदि तुम मर्यादा-उल्लङ्घन में प्रवृत्त होते हो तो हम सब अपने कार्य साधन में क्यों उपेक्षा करेंगी ॥ २८१ ॥

अर्जुन—वह कार्य क्या है जिस की उपेक्षा नहीं करना चाहती हो ? ॥ २८२ ॥

ललिता—गोपगण से निज वृन्दावन की रक्षा, इस से भिन्न अन्य कार्य क्या है ? ॥

अर्जुन—(अवहेलना के साथ हास्य पूर्वक हुंकार करते मस्तक घूर्णन करने लगा) ॥ २८३ ॥

विशाखा—(ईषत् हास्य पूर्वक निकट में जाकर) ललिते ! गोकुलयुवतियों की चक्रवर्त्तिनी प्रियसखी आज्ञा कर रही है ॥

ललिता—वह आज्ञा कैसी है ? ॥ २८४ ॥

विशाखा—ये समस्त गर्व्वित गोप लतापुञ्जभञ्जन दक्ष लक्ष कोटि गौ रक्षा करते हुए फलों से उदर भरण एवं पुष्प-पल्लवों के द्वारा पारस्परिक वेश रचना कर वहु दिनों से वृन्दावन का विध्वंस कर रहे हैं। अतः निश्चय करके कहो कि वे सब यहाँ से चले जावें नतुवा कर प्रदान करें ॥ २८५ ॥

मधुमङ्गल —(क्रोध के साथ) हे विपरीतवादिनि ! मौनावलम्बन करो, अथवा इस में तुम्हारा किञ्चिन्मात्र दोष नहीं है। प्रियवयस्य की कारुण्यता ही अनर्थकारिणी हुई। क्यों कि सरल कारुण्यता के द्वारा असरला तुम सब को वृन्दावन में प्रवेश करने का अवसर देकर अनुग्रह किया गया अत एव यह अयुक्त प्रलाप नहीं है ॥ २८६ ॥

चम्पकलता—अहे आर्य्य ! तुम तो अनार्य्य हो रहे हो, क्यों कि विना विचार से व्यर्थालाप कर रहे हो ॥ २८७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता—(संकुचन में) सखि ! सौ बार अभ्यास किये जाने पर भी यह व्यक्ति सुनता नहीं है और अपने नेत्रों से देखे गये महोत्सव का स्मरण नहीं कर रहा है। अतः श्रुति-स्मृति रूप अपने नेत्रों से रहित इस का तिरस्कार मत करो, यह अत्यन्त मूढ़ है ॥ २८८ ॥

विशाखा—सखि नान्दीमुखी ! आपने प्रियसखी के उस महाभिषेक-महोत्सव का स्मरण किया है ? ॥ २८६ ॥

नान्दीमुखी—विशाखे ! इस जगत में ऐसा कौन प्राणी है जो उस महा-महोत्सव को विस्मृत कर सके ? ॥ २६० ॥

चित्रा—नान्दीमुखी ! यद्यपि नेत्रों से प्रत्यक्षीकृत किया गया है तो भी लोकातीत के कारण मेरा कर्ण सुनने को उत्तरलित हो रहा है अत एव श्रवण कराओ ॥ १६१ ॥

नान्दीमुखी—सखि चित्रे ! श्रवण करो, इस बृन्दा ने भगवती पौर्णमासी के निकट गमन करके निवेदन किया था कि हे योगेश्वरि ! बृन्दावनराज्य में श्रीराधा को अभिषिक्त कीजिये। क्यों कि हम सब के समक्ष अशरीरिणी आकाशवाणी ने स्पष्ट रूप से आदेश किया है ॥ २६२ ॥

वृन्दा—(मन मन में) मुकुन्द की आज्ञा के अनुसार आकाशवाणी का छल कर मैंने आर्य्या से यह विषय कहा था ॥ २६३ ॥

नान्दीमुखी—तदनन्तर महातापसी भगवती के आह्वान करने पर पांच जन देवी उपस्थित हुईं ॥ २६४ ॥

अर्ज्जुन—वे सब कौन हैं ॥ २६५ ॥

वृन्दा—एक देवी तो जगद्विख्याता देवकीकन्या, जिस ने कंस की भर्त्सना कर के गमन किया था। दूसरी सूर्य्यपत्नी संज्ञा, तीसरी छाया, चौथी सूर्य्यपुत्री यमुना एवं पांचमी मानसगङ्गा है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रा—उस के बाद उस के बाद ? ॥ २९६ ॥

नान्दीमुखी—मार्त्तण्ड(सूर्य) की छोटी महिषी छाया ने कहा है भगवति ! हम सब किसी भी प्रकार आप की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती। हम सब ने आप का शासन मस्तक पर धारण कर लिया है। परन्तु कहाँ तो महीयसी वह राधिका और कहाँ सोलह कोस मात्र विस्तीर्ण यह वृन्दावन–राज्य। इस से मेरा मन भली भाँति प्रसन्न नहीं हो रहा है। अतः ब्रह्माण्डाधिपत्य में राधा को अभिषिक्त कीजिये ॥ २९७ ॥

(उस के बाद एकानंशा बिन्ध्यवासिनी देवकीकन्या पौर्णमासी के प्रति दृष्टिपात करके कहने लगी) ॥ २९८ ॥

(संस्कृत में ; सखि सवर्णे सुनो, वेद के वस्तुज्ञापकरूप जो वीर्य्य (पराक्रम), ज्योतिष्टोमादि यज्ञ के विशिष्ट फलोत्पादक रूप जो पराक्रम, तीर्थों के पावनत्व रूप जो पराक्रम, मन्त्रसमुदाय के दुर्घट-घटनरूप जो पराक्रम, तपस्या के वाञ्छित फलप्रापक रूप जो पराक्रम, उन उन कर्म साध्य स्वर्ग समूह के इन्द्रियजात सुख-प्राप्तिरूप जो पराक्रम, तद्भोक्ता स्वर्गवासियों के सुख–प्रमत्तता रूप जो पराक्रम, अणिमादि–सिद्धियों के ऐश्वर्य्यसुख प्रापक रूप जो (पराक्रम), सिद्धिप्राप्त महत् जनों के योगैश्वर्य्यादि रूप जो पराक्रम, अन्तरङ्गा चिच्छक्ति के निरुपम कल्याणमय जो नित्य गुण तथा चिच्छक्ति के तन्मयत्व-सर्वोत्कर्ष लक्षण विशिष्ट कार्य्य स्वरूप वैकुण्ठ के सर्वोत्कृष्ट लक्षण रूप जो पराक्रम है उन सब से विशेष जाति और प्रमाण के द्वारा गहन प्राप्त अधिक रूप से पराक्रम मथुरामण्डल में विराजमान है, पुनः उस से भी अधिक तर गहन रूप से सोलह कोस बृन्दावन में अवस्थित है। अतः कोटिब्रह्माण्डाधिपत्य की बात ही क्या रही। ब्रह्माजी ने बृन्दावन के एक ही प्रदेश में उन समस्त ब्रह्माण्ड का दर्शन किया है ॥२९९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रा—उस के बाद, उस के बाद ?

नान्दीमुखी—उस के बाद समस्त लोगों के प्रफुल्लित होने पर दिव्य कुसुम वर्षण शील आकाश मण्डल के प्रति दृष्टिपात करके सूर्य्यपुत्री यमुना ने कहा—हे भगवति ! विरिञ्चिपुत्री सरस्वती यहाँ आने के लिये अत्यन्त उत्सुक होकर भी आप के आह्वान के बिना शङ्कितचित्त से नहीं आ पा रही है। वह तो दिव्य पिटारी लेकर आकाश में आप की आज्ञा की प्रतीक्षा में अवस्थित है। अतः उन को बुलाईये। यमुना के इस प्रकार निवेदन करने पर पौर्णमासी सरस्वती को बोलाने लगीं। तदनन्तर वाग्देवी सरस्वती प्रवेश कर दिव्य मञ्जुषिका उघाड़ कर कुछ कहने लगी। परन्तु सरस्वती के अर्द्ध वचन बोलने पर वृन्दा अत्यन्त हर्षिता होकर नान्दीमुखी बचन का निवारण कर सहर्ष कहने लगी ॥३००

ब्रह्मपत्नी सावित्री ने पद्ममाला, इन्द्रपत्नी शची ने स्वर्णसिंहासन, कुवेरगृहिणी ऋद्धि ने रत्नालङ्कार, वरुणप्रिया गौरी ने छत्र, पवनपत्नी शिवा ने चंवर युगल, अग्निभार्य्या स्वाहा ने दो वस्त्र और यमभार्य्या धूमोर्णा ने मणिदर्पण को मेरे हाथ में देकर भेजा है ॥ ३०१ ॥

चित्रा—उस के बाद, उस के बाद ?

वृन्दा—तदनन्तर श्रवणवृत्ति रोधकारी स्वर्गवाद्य समूह के आकाश मण्डल को गम्भीर करने पर, तुम्बुरादि गन्धर्वगण के मेघान्तवर्त्ति हो कर आनन्द के साथ गानारम्भ करने पर तथा अप्सराओं के गगन पर नृत्यारम्भ करने पर, कल्याणमयी वे सब सुरसुन्दरियाँ आनन्द के साथ श्रीराधा का अभिषेक आरम्भ करने लगीं ॥ ३०२ ॥

(ऐसा कह कर नान्दीमुखी के प्रति दृष्टिपात करके लज्जा के साथ) उस के बाद उस के बाद ?।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नान्दीमुखी—तदनन्तर आनन्द चित्त से व्रजराजनन्दन के देखते हुए भगवती की आज्ञा से उन भुवन पावन नदियाँ अपनी सङ्गिनी देवियों के साथ तुम सब की सखी श्रीराधा को तुम सब के साथ स्वर्णसिंहासन में वैठा कर दिव्य महौषधि रसामृत से मणिकुम्भों को पूर्ण करके उन के द्वारा वृन्दावनराज्य के आधिपत्य का अर्पण करने लगीं ॥ ३०३ ॥

चम्पकलता—(रोमाञ्च के साथ)उस के बाद, उस के बाद ?।

नान्दीमुखी—तदनन्तर हाथ उठा कर यह सौगन्धिकमाला है, मेरी जननी सावित्रि ने स्नेह करके भेजा है।(यह सुन कर देवकीपुत्रि एकानंशा देवी ने हाथ से माला ले कर गोकुलानन्द के कण्ठ में अर्पण की ॥ ३०४ ॥

तदनन्तर परिहास मुखी यमुना कहने लगी-अहो आश्चर्य्य ! बन्धुओं का स्नेह धर्मविस्मरण में पटु होता है। जिस स्नेह के द्वारा विचक्षणव्यक्ति भी अविचार-कार्य में प्रवृत्त होता है । (ऐसा सुन कर विन्ध्यवासिनी ने कहा यमुने ! तुम क्या अविचार में प्रवृत्ति देखी ? (यह सुन कर यमुना कहने लगी) ॥३०५॥

हे देवि ! मेरी प्रियभगिनी श्रीराधा की सौगन्धिकमाला तुमने अपने भ्राता को क्यों अर्पण की, ऐसा कहने पर विन्ध्यवासिनी देवी हँसती हँसती श्रीकृष्ण के कण्ठ से मनोहर हार के साथ दिव्य सौगन्धिकमाला को उतार कर प्रियसखि के कण्ठ में निक्षेप कर कहने लगी, अयि ! अपनी माला ग्रहण करो ॥ ३०६ ॥

कृष्ण—(ईषत हँसने लगे)

विशाखा—उस के बाद, उस के बाद ।

नान्दीमुखी—उस के बाद "इस हारने कठोर हृदय का सङ्ग किया, अत एव इस की आवश्यकता नहीं है" ऐसा कह कर सूर्य्यपुत्री यमुना कौतुक के साथ श्रीराधा-कण्ठ से हार उतार कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोहर हरिकण्ठ में अर्पण करने लगी ॥ ३०७ ॥

ललिता—तदनन्तर विन्ध्यवासिनी ने कंसारि के वक्षःस्थल से मृगमद उत्तोलन कर श्रीराधा को तिलकित किया ॥ ३०८ ॥

बृन्दा—(आनन्द से) उस के बाद भगवती पौर्णमासी उल्लास के साथ कहने लगी—अहे वृक्षगण ! तुम सब प्रफुल्ल हो कर परम सुख पूर्वक लतावधू के साथ विलास करो, हे विहङ्ग-गण ! तुम सब भृङ्ग के साथ रङ्ग-विस्तार करो, अहे पशुगण ! तुम सब अपने पराक्रम को प्रकाश करो। क्यों कि—श्रीराधा सखीरूप सेनापति समूह से समृद्धिशालिनी होकर उद्यानपालिनी बृन्दा को पवित्र अमात्यपद में नियुक्त कर तुम्हारे सम्बन्ध से राज्यशासन में प्रवृत्ता हो रही है ॥ ३०९ ॥

(ऐसा कह कर आनन्द जाड्य का अभिनय कर के)

अहो ! कुन्दलता शत शत उद्गतकलिकाएँ धारण करने लगी, मालती पत्राङ्कुर से चित्रित होकर विराज करने लगी, मनोरम नवमालिका विकसित हो उठी और चम्पकलता विगतशाखा होने पर भी प्रफुल्ला हो गयी ॥

पक्षान्तर में—कुन्दलता सखी शत शत उत्कण्ठा धारण करने लगी, चित्रा सखी स्तन तथा कपालोपरि तिलक रचना कर विरा-जने लगी, नवमालिकाधारिणी ललिता हास्यमुखी हो गई एवं विशाखा चम्पकलता की भाँति अत्यन्त हर्ष विस्तार करने लगी ॥ ३१० ॥

ललिता—नान्दीमुखि ! दिनेशनन्दिनी यमुना ने उस समय जो बात कही क्या तुमसे विस्मृत हो गई है ॥

नान्दीमुखी—ललिते ! उन्होंने तो हम सब के निकट मन्त्रणा की थी, क्यों भूलूगी। उन की मन्त्रणा यह थी कि-आज से ही हमारे क्रीडाकानन में ललितादि हमारी प्रियसखियाँ सुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वच्छन्द से पुष्पचयन करें ॥ ३११ ॥

यह कथा सुन कर विन्ध्यवासिनी ने कहा-यमुने ! कुसुमसमूह तो माधवाधीन है ॥ ३१२ ॥

वृन्दा—(राधा को देख कर औत्सुक्य के साथ) सखि ! विन्ध्यवासिनी देवी ने तुम को तिलकित किया है, शनिमाता छाया ने चूड़ाबन्धन किया, त्वष्टानन्दिनी संज्ञा ने कवरी बाँधी, सखियों ने अलंकृत किया, सूर्य्यपुत्री यमुना ने चंवर से तुम्हारा व्यजन किया और ब्रह्मनन्दिनी सरस्वती ने तुम्हारे मस्तक में मणिछत्र को धारण करवाया था, उन बातों का विस्मरण नहीं कर सकती हूँ ॥

राधा—(लज्जा के साथ) वृन्दे ! शान्त हो जाओ ॥३१३॥

कृष्ण—(स्वगत) यद्यपि अतिशयरूप में देखने के लिये इच्छा थी तो भी देववधूगण की लज्जा से मैं नतवदन हो गया। अतः राधा की उस शोभादर्शन में नयन-नियोग न कर सका। उस समय राधिका मेरे हृदयस्थित कौस्तुभमणि में प्रतिबिम्बित हुई। उसे सहसा एकवार मात्र देख कर मैं आनन्द सागर में डूब गया॥ ३१४ ॥

सुबल—(अन्तराल करके) अर्जुन ! वह महाभिषेकस्थली राधा के उद्धत प्रमद के लिये हुई है इसीलिये लोग उन्मादराधा (उमराई) कर के कहते हैं ॥ ३१५ ॥

मधुमङ्गल—(अन्तराल से) प्रियवयस्य ! समस्त स्मरण है, यह असत्य नहीं है, गोपिकाओं का यह दम्भमात्र है ॥ ३१६ ॥

राधा—सखि वृन्दे ! हमारे अभिषेक के बाद कानन के कर की आठ वर्ष से गणना करो ॥ ३१७ ॥

वृन्दा—(हास्य के साथ) वृन्दावनेश्वरि ! ये समस्त गोप प्रत्येक शतकोटि संख्या से गोचारण करते हैं। गोपों की संख्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की गणना नहीं हो सकती। अतः काननकर का अन्त नहीं है। विचार में उस मूल्य के द्वारा कृष्णादि गोप तुम से क्रीत हो रहे हैं ॥ ३१८ ॥

ललिता—विशाखे! वृन्दावनेश्वरी ने आज्ञा की है कि तुम बल पूर्वक इस चतुर मानी ब्राह्मणवटु के मणिभूषण को छीन लो ॥

मधुमङ्गल—(अन्तराल करके) प्रियवयस्य! निश्चय इस का समाधान होना दुष्कर है अतः हम सब को पलायन करना कल्याण कर है ॥ ३१९ ॥

कृष्ण—अहे गोष्ठस्व! अर्थात् स्वस्थान में अवस्थान कर दूसरे से द्वेष करने वाला! जो भी हो, ललिता के लगुड़ देख कर भय मत पाओ। यह मैं सम्मुख में सुदर्शन विद्यमान हूँ॥

राधा—(अपाङ्ग के द्वारा ईषत्त श्रीकृष्ण को आलिङ्गित करके सुबल! अब लज्जा करने की आवश्यकता नहीं, काननकर उपस्थित करो ॥ ३२० ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके देखने लगे) राधे! तुम तो एक मात्र कानन की अधिकारिणी हो परन्तु घट्टाधिराज तो द्वादश वन के अधीश्वर है। तुम्हारा अधिकार स्वल्प देश को लेकर है, उस का तो समस्त जगद्वर्त्ती जनों पर आधिपत्य है, और तुम तो मण्डलेश्वरी हो वह तो मन्मथचक्रवर्ती है। अत एव हित कहता हूँ श्रवण करो। उस के शुल्क विषय में हठ मत करो ॥३२१॥

विशाखा—अहे सुबल! ऐसा ही हो। तो भी उद्यानचक्रवर्त्ति के आज्ञावाहक घट्टाध्यक्ष के द्वारा हमारी वृन्दावन-चक्रवर्त्तिनी प्रियसखी का काननकर किस प्रकार मुक्त होगा? ॥३२२॥

सुबल—(असूया के साथ) विशाखे! तुम निश्चय खट्टारूढ़ा हो रही हो, क्यों कि दुरन्त मद से घूर्णित होकर तत्त्व न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जान कर प्रलाप कर रही हो ॥ ३२३ ॥

विशाखा—(ईषत् हास्य के साथ) इस में क्या तत्त्व है, कहो तो श्रवण करूँ ॥ ३२४ ॥

सुबल—(असूया के साथ) विशाखे ! विस्तार का प्रयोजन नहीं है, संक्षेप से सार कथा कहता हूँ सुनो। जो महामन्मथ-चक्रवर्ती है वह निश्चय प्रियवयस्य रूप में विराजमान जानना। दोनों में कोई स्वरूपगत भेद नहीं है ॥ ३२५ ॥

अर्जुन—विशाखे ! यह तो अल्पमात्र है, सुनो, वह तो अश्रुतचर साधर्म्य वाला है अर्थात् उस के समान धर्म्मी कोई नहीं है। जो सम्मोहन माधुरीभर से नित्यनूतन तथा सर्वोपरि विराजमानहै। उस प्रियवयस्य के समस्त गोकुलपतित्व में जो गोविन्दाभिषेक है वह किस के गर्वको खर्व नहीं करता है ॥ ३२६ ॥

मधुमङ्गल—(उल्लास के साथ) ललिते ! अर्जुन अच्छी बात कह रहा है। क्यों कि गोपालतापनी आदि उपनिषद् समूह इस को कृष्णवन करके कहता है ॥

वृन्दा—न्याय-शास्त्र वेत्ता पण्डितों ने निर्द्धारित किया है कि पूर्व्व एवं पर विधि से पर विधि बलवान है। जब कि नवीन राजा का अभिषेक हुआ है तो पुरातन को कौन मानेगा ॥ ३२७ ॥

मधुमङ्गल—वाचालता का त्याग करो, हमारे प्रियवयस्य इस कान्तार प्रदेश के अधीश्वर है। हम सब राजकुल पुरुष है। कर-हरणकारिणी तुम सब को खण्डकुण्डिका अर्थात् जोलावी की भाँति बोध करता हूँ ॥

कृष्ण—सखे सुबल ! श्यामल मण्डपिका को सुसज्जित करो, क्यों कि वहाँ वर्त्तमान इन शुल्कदासिकाओं को प्रवेशित किया जावें ॥ ३२८ ॥

राधा—आश्चर्य्य ! अहे चोर-चक्रवर्ती के मन्त्रिवर सुबल !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम सब किस लिये मेरी प्रियसखी श्यामला की इस व्रतवेदी को घट्टदान घटना के छल से दूषित कर रहे हो ॥ ३२६ ॥

कृष्ण—अहे वक्रचक्रवर्त्तिनि! अर्थात् कुटिल समुदाय की अधिश्वरि! अब राधाचक्र-भ्रमण का प्रयोजन नहीं है। यह मन्मथराज धनुर्द्धारि के अग्रगण्य है जो दुर्लक्ष मन का भेदन कर सकता है। अत एंव यह घाटी इस के अधिकार में है ॥३३०॥

राधा —(संस्कृत में) हे वंशिरसिक! तुम्हारे आदि, मध्य एवं अन्त ये तीन स्थान वक्र हैं। तुम वंशी की कलध्वनि से जगत के प्रणयपात्र बन रहे हो, अतः तुम वक्रेश्वर देव हो ॥३३१॥

कृष्ण—(किञ्चित हास्य के साथ) अहे! तुम्हारे वचन, केश, भ्रू, दृष्टि, हास्य, गमन, अवगुण्ठन तथा हृदय ये आठ स्थान वक्र हैं अतः तुम अष्टावक्र हो, तुम्हारी वन्दना करता हूँ ॥ ३३२ ॥

चम्पकलता—अहे! यद्यपि तुम्हारी वक्रिमा लक्षित नहीं है तो भी तुम लक्ष वक्रिमशाली हो। अतः समान धर्म-वाओं के साथ क्रीड़ा करो। हम सब अति विशुद्ध धर्म वाली हैं, हम सब को यहाँ से चले जाना उचित है ॥

कृष्ण—हे पुण्यवति। महादान के बिना जाना असम्भव है ॥ ३३३ ॥

चम्पकलता—सज्जनगण की सर्वत्र गति प्रसिद्ध है ॥ ३३४ ॥

चित्रा—पुरुषोत्तम! तुम पुण्यश्लोक जन हो, अतः धर्म कर्म परायण हम सब को मुक्त करो ॥

कृष्ण—चित्रे! इस चक्रवर्त्ती महाराज की विचित्र प्रक्रिया है अर्थात् आश्चर्य्य रीति है। इस राज्य में धर्म के द्वारा मोक्ष लाभ नहीं है परन्तु कामानुष्ठान के द्वारा निश्चय यह है ॥३३५॥

नान्दीमुखी— शास्त्रकार मुनियों की यह अविसम्बादिनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रीति है क्यों कि वे काम के बाद मोक्ष का पाठ करते हैं। धर्म तो दूर में है। अर्थात् मोक्ष के लिये-पहले धर्म, तत्पश्चात् अर्थ, उस के बाद काम, तदनन्तर बाद में मोक्ष है। इसी लिये मोक्ष और काम में परस्पर सांमुख्य है। काम के बाद मोक्षलाभ होता है ॥ ३३६ ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके श्रीराधा के प्रति दृष्टिपात कर) हे शुल्कक्रीत रमणि ! नाथ के प्रीति-सम्पादन के बिना अन्य कोई गति नहीं है। अतः अभीष्ट सेवा के द्वारा इस दानीन्द्र को आनन्दित करो ॥ ३३७ ॥

ललिता—मोहन ! बहु तपस्या के द्वारा घट्टपाल-दासीत्व की सिद्धि होती है। परन्तु मेरी प्रियसखी की कोई तपस्या नहीं देख रही हूँ। अतः इस के पक्ष में घट्टपालदासीत्व अति दुर्लभ है ॥ ३३८ ॥

नान्दीमुखी—अहे निकुञ्जलीला-कुञ्जरेन्द्र ! ललिता यह कह रही है कि तुम शुल्काध्यक्ष अवश्य हो। तुम सब के द्वारा सेवा समूह से प्रियसखी उपासनापात्री होती है क्यों कि यह समस्त युवतिगण की चक्रवर्त्तिनी है। अतः तुम विपरीत बात क्यों करती हो ? ॥

कृष्ण—(हर्ष के साथ) नान्दीमुखी ! ललिता की यह आज्ञा दुरतिक्रमणिया है। मैं राधिका की सेवा में प्रवृत्त हो रहा हूँ। अतः पहले हृदयङ्गम सातकुम्भकुम्भ में पंचशाखापल्लव समर्पण करूँ। (ऐसा कह कर राधा के निकट चलने लगे)

ललिता—(भ्रूभङ्ग के साथ उपक्रम करके) अहे नागरम्मन्य ! अर्थात अपने को नागर मानने वाले ! यह दुर्लीलता लता विश्राम करें अर्थात् इस प्रकार दुश्शीला प्रकाश मत करो ॥ ३४७॥

कृष्ण—कृपणे ! यदि तुम ने शुल्क न देकर उस के परि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्त्तन में इस स्वाधीन राधा को बेच दिया है तो तुम यहाँ कारणी बेच कर अंकुश प्रदान में विवाद क्यों कर रही हो ?

(ऐसा कह कर धीरे धीरे गमन करने लगे)

ललिता—कृष्ण ! तुम तो अनभिज्ञ नहीं हो, मैं दुर्ल्ललित्व-जनों की ललिता हूँ। अतः क्यों अपने माहात्म्य दिखाने के लिये प्रवृत्त हो रहे हो ? ॥ ३४२ ॥

कृष्ण—ललिते ! तुम अपने को सुवीर करके मान रही हो, देखो, विक्रमशालियों में चक्रवर्ती मैं सम्मुख इधर उधर भ्रमण कर रहा हूँ। अतः शक्ति-रहित कृत्रिम सर्प की भाँति वृथा गौरवतरङ्ग का प्रयोजन नहीं है, शीघ्र ही घट्ट-शुल्क प्रदान करो ॥ ३४३ ॥

ललिता—घट्ट-सम्बन्धीय घण्टारव का अब प्रयोजन नहीं। यदि शुल्क ग्रहण में नितान्त आग्रह रखते हो तब सन्ध्या के समय हमारे द्वार पर आ जाना। उत्तम गाढ़ा मठा प्रदान करुँ-गी। तात्पर्य्य-समस्त दिन याचक कर्मकारों को दे कर मन्थनी-तल में जो अवशेष रहेगा, जो अम्ल के कारण सब को अग्राह्य है उसे लवण मिला कर तुम को दूँगी जो तुम्हारे लिये अति रुचिकर होगा ॥

कृष्ण—(ईषत् हास्य करके नान्दीमुखी के प्रति दृष्टिपात करने लगे) ॥ ३४४ ॥

नान्दीमुखी—ललिते ! शतकोटि कामधेनु के पति गोपराज के घर में क्या गाढ़ा मठा नहीं है जिस से कि तुम्हारे घर पर जावेंगे. ॥ ३४५ ॥

कृष्ण—हे सुदीर्घाक्षि राधिके ! तुम ललिता के फल्गु प्रलाप-कुहक समूह में प्रत्याशा मान कर शुल्क प्रदान में विमुख हो कर उपेक्षा मत करना। मैं निकटवर्ती होकर रहस्य वर्णन करता हूँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनो (ऐसा कह कर वक्षःस्थल में हस्त प्रदान करने की इच्छा करने लगे) ॥ ३४६ ॥

ललिता—अहे दुर्लभफल के हठी ! ललिता के समक्ष जगत् प्राण पवन भी श्रीराधा के स्तनाम्बर अर्थात् कञ्चुलिकाञ्चल स्पर्श करने में असमर्थ है, यहाँ पर तुम जो हस्त-निक्षेप करने को चाँहते हो यह केवल तुम्हारी मूढ़ता है ॥ ३४७ ॥

कृष्ण—हे चण्डि ! कृष्णसर्प की चालना में प्रयोजन नहीं है, उस की फुत्कृति से तुम विमोहिता हो जाओगी ॥

ललिता—(संस्कृत में) अब भय मत दिखाओं ॥ ३४८ ॥ क्यों कि ललिता आहितुण्डिकी अर्थात व्यालग्राहिणी है, उस की सिद्धमन्त्र में अच्छी व्युत्पत्ति है, उस के समस्त क्रूर सर्प का मस्तक उठाना सहज नहीं है ॥

कृष्ण—नान्दीमुखी ! घट्टाधिकारियों का मिथ्या बोलना स्वभावसिद्ध है परन्तु मैं सरलस्वभाव का हूँ , मेरी जिह्वा मिथ्या कथन में पराङ्मुखी रहती है तथा हाथ भी बलपूर्वक कार्य्य करने में सम्मत नहीं है । अतः यहाँ इन समस्त सुन्दरियों के साथ विरोध में दोष क्या है ? ॥ ३४९ ॥

ललिता—(परिहास के साथ ईषत् हास्य करके संस्कृतभाषा में) हे अघनाशन ! तुम्हारी रसना यत्न के साथ हजार हजार साध्वी रमणी के बिम्बाधरामृत पान करने में पवित्र हो रही है वह क्यों मिथ्या कहेगी । और अनुरागान्वित जो हस्त सुन्दरियों के नीविबन्धन सहन नहीं करता है वह किस प्रकार से बल प्रकाश करेगा अतः अन्य कञ्चुलिकादि बन्धन का कहना ही क्या है ॥ ३५० ॥

कृष्ण—(किञ्चित् हास्य करके) ललिते ! सत्य ही तुम सब कृतपुण्यपुञ्जव्यक्तियों में शिरोमणि हो । तुम सब के अदृष्ट रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिद्धौषधि के द्वारा आकृष्ट होकर भगवती पौर्णमासी की पार्श्व-वर्त्तिनी यह नान्दमुखी उपस्थित हुई है ॥ ३५१ ॥

ललिता—नान्दीमुखि ! भगवती पौर्णमासी के चरण कमल की शपथ है, तुम यहाँ से शीघ्र चली जाओ, देखूँगी ये सब क्या करेंगे ॥ ३५१ ॥

नान्दीमुखी—ललिते ! जब कि हठिल चक्रवर्ती के हाथ में पड़ गयी हो तब तो जानो महारूङ्कट उपस्थित है। अतः इस समय तुम सब का त्याग कर चले जाना स्नेह कार्य्य नहीं है। यद्यपि तुम मुझ को जाने के लिये शपथ दे रही हो तो भी इस समय परित्याग कर नहीं जा सकती। क्यों कि धर्म की अपेक्षा से स्नेह का बल अधिक है ॥ ३५२ ॥

अर्जुन—प्रियवयस्य ! जो सब दाम्भिक रमणियाँ शुल्क देने में विवाद कर रही हैं उन को मेरे निकट ले आओ। उद्यान-चक्रवर्ती के इस शासन को क्यों तुम विस्मृत हो जाते हो ॥

कृष्ण —(हर्षाभिनय करके) अर्जुन ने उत्तम स्मरण कराया है। अहे ललिते ! हमारे सखागण एवं तुम्हारी सखियाँ इस घाटी में अवस्थान करें। तुम अकेली हमारे साथ उद्यान-चक्रवर्ती के निकट गमन कर सुन्दर गोष्ठी-गङ्गा में अवगाहन के द्वारा निज चक्षु रूप मत्स्ययुगल को खेलाओ ॥

ललिता—हे धर्मभारवाहिन् ! तुम पुण्यश्लोक के शिरोमणि हो, तुम्हारे साथ जो कुलरमणी जावेगी वस उस की तो दोनों कुल रक्षा हो जावेगी ॥ ३५४ ॥

कृष्ण—इस से क्या होगा ? घट्टकर्म शीघ्र करना उचित है, इस में दीर्घसूत्रता का प्रयोजन नहीं है। शीघ्र ही बल पूर्वक शुल्क ग्रहण करूँ। (ऐसा कह कर राधिकानुसाधन में प्रवृत्त होने लगे) ॥ ३५५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता—(उच्च हास्य करके) अहे सुन्दर सुकुमार! निज नेत्र-प्राङ्गन में श्रीराधातनु स्पर्श के लिये महासाहस तुम में है यह सर्वतो भाव से प्रत्य नहीं हो रहा है। यह ललिता विक्रम-शालिनी गोपी करके प्रसिद्ध है। अतः यदि इस का पराक्रम देखने की अभिलाषा रखते हो तो शीघ्र जहाँ तक साध्य है अपने पराक्रम प्रकट करो ॥ ३५६ ॥

कृष्ण—(किञ्चित हास्य करके) हे महाचण्डिके! तुम को नमस्कार, हे चामुण्डे! तुम को नमस्कार। तुम मुण्डमाला रूप प्रसिद्ध निज अलङ्कार का त्याग कर निश्चय दुर्वार कन्दर्प का संहारार्थ गोपिकारूप में अवतीर्ण हुई हो ॥ ३५७ ॥

विशाखा—सखि ललिते विजयिनी हो ॥

ललिता—(स्मित करके स्वगत) अब सुन्दर आलाप-विलास की आवश्यकता नहीं है। अतः इन दोनों के अभिलाष-सागर में अवगाहन के लिये सदुपाय संस्थापन करूँ ॥ ३५८ ॥ (प्रकाश्य में) विशाखे! तुम भगवती पौर्णमासी के निकट जा कर हमारी इन बातों का निवेदन करो ॥

नान्दीमुखी—(स्वगत) भगवती तो माधवीमण्डप के अन्तराल में रह कर समस्त सुन रही है ॥ ३५९ ॥ (प्रकाश्य में) ललिते! निश्चय बोध होता है कि भगवती गोकुलेश्वरी के पास में अवस्थित है ॥

राधा—(सपरिहास हास्य पूर्वक हस्तावरण करके) हे ललिते! तुम्हारी आत्मा से भी हमारे प्रति अत्यन्त स्नेह आज प्रत्यक्ष हो रहा है। क्यों कि ईङ्गित से बोध हो रहा है कि-तुम घट्टपाल से हम सब की उपस्थित इस यातना से मुक्त करने के लिये आत्म-समर्पण करने में इच्छुक हो गई हो, अतः तुम अत्यन्त धन्या हो ॥ ३६० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता—अयि वीरव्रताख्याते ! तुम्हारी वाग्युद्ध में विलक्षण क्षमता है और कामयुद्ध में भी क्षमता सामान्य नहीं है। क्यों कि बार बार तुम्हारी पुरुषाकार सौष्ठवसारता देखने में आ रही है। अतः तुम अनुग्रह करके कटाक्ष रूप जृम्भण बाण के द्वारा इस वीराभिमानि व्यक्ति को जृम्भित करके क्षणकाल यहाँ अवस्थान करो हम सब कुछ आगे चलकर प्रतीक्षा करती हैं ॥ ३६१ ॥

राधा—(प्रणय के साथ असूया प्रकट करके) अहे ! तुम अपने आकार सङ्गोपन विषय में दक्षता प्रकाश कर रही हो । जो भी हो यहाँ से दूर हो दूर हो, अभी देखना ॥

कृष्ण—(स्वगत) अब तो ललिता का क्रोध कुछ मन्द देखता हूँ। (प्रकाश्य करके) ललिते ! उत्तम, उत्तम, तुम समय परिस्थिति को जान लेती हो। क्यों कि आज मिथ्या-विवाद समूह का विघटन करके घाटी में अवस्थित कर रही हो ॥३६२॥

ललिता—हे छलक्रीड़ाविदग्ध ! गोपगण जिस प्रकार हठावलम्बी हैं सारग्राही गोपिकागण उस प्रकार नहीं हैं ॥३६३ ॥

विशाखा—(सम्भ्रम अभिनय करके) ललिते ! महाप्रमाद, महाप्रमाद है ॥

ललिता—किस प्रकार प्रमाद ? ।

विशाखा—अयि कलह लोलुप से विस्मारित धर्म्मे ! शान्त हो- शान्त हो। उन याज्ञिकों ने हम सब के लिये यह आदेश किया कि तुम सब जब हवनीयघृत का आनयन करोगी उस समय कुलकामिनीगण के सतीत्व-हारी किसी दुष्ट कामीजन के प्रति दृष्टिपात मत करना। (ऐसा कह कर नासाग्र में तर्जनी अर्पण कर) हा धिक् हा धिक् तुम उन्मत्त हो कर मोहवश बहुकाल यावत् वृथा आलाप कर रही हो। अतः तुम्हारा वचन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संमिश्रित हो रहा है ॥ ३६४ ॥

ललिता—(विषाद अभिनय करके) विशाखे! उत्तम कहती हो। मैं मोहित हो कर समस्त भूल गई हूँ। अतः इस विषय में निष्कृति की चिन्ता करो ॥

वृन्दा—(ईषत् हास्य करके) मुनिगण कहते हैं कि यज्ञपुरुष विष्णु का स्मरण से समस्त पाप विध्वंसन होता है अतः विष्णु का स्मरण करो ॥

ललिता—विष्णु विष्णु (ऐसा कह कर नासिका तथा कर्ण स्पर्श करने लगी) ॥ ३६५ ॥

कृष्ण—(ईषत हास्य के साथ) ललिते! तुम सत्य ही दूषिता हो गई हो। शीघ्र मेरे निकट आओ, दोष रहित करूँगा। (ऐसा कह कर हस्तप्रसारण अभिनय करने लगे) ॥ ३६६ ॥

ललिता—(सभय दूरगमन करके निर्वेद के साथ) हाय हाय! परस्त्री को दूषित करने का साहस मत करो, मैं कुल-बाला हूँ, स्पर्श करने पर दूषित हो जाऊँगी ॥

राधा—(ईषत हास्य करके) ललिते! तुम हम सब के निकट से शीघ्र चली जाओ। क्यों कि तुम स्त्रीचोर के द्वारा स्पर्श होकर कलङ्किता हो गई हो ॥ ३६७ ॥

ललिता—अयि! आमोद करती करती एक अलीक कथा बोल गयी। नहीं तो हमारे समान पतिपरायणा मयूरी के निकट भुजभुजङ्ग उठने में समर्थ हो सकता है ॥ ३६८ ॥

राधा—अयि असत्यभाषिणि! जान लिया, जान लिया, ठहरो ठहरो, तुम्हारे हर्षोत्फुल्ल लोमसमूह साक्ष्य प्रदान कर रहा है ॥ ३६९ ॥

ललिता—हे रतनारीक! (हे उपपते!) मैं अत्यन्त दुःखि-ता हो गई हूँ। क्यों कि तुम से दूषित हो जाने के कारण सखियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरा स्पर्श नहीं कर रही हैं। अतः "न दुःखं पञ्चभिः सह" अर्थात् "पांच जन के साथ रहने पर दुःखानुभव नहीं है" यह बचन जिस से प्रमाणित हो वैसा करो। अर्थात् जिस प्रकार मेरा स्पर्श किया उस प्रकार सखियों को स्पर्श करो ॥

कृष्ण—चम्पकलते! यह गगनस्पर्शि दीर्घशाखा—विशिष्ट तमालतरु है अतः इस का अवलम्बन कर प्रफुल्ला हो ॥ ३७० ॥

चम्पकलता—(काँपती हुई किञ्चित् दूरवर्ती होकर) हे छैल! जो व्यक्ति सोता रहता है वह कभी नीचे नहीं गिरता है। इस प्रमाण को लेकर तुम पुनः ललिता को दूषित करो ॥

ललिता—बोध करती हूँ कि तुम शीघ्र प्रियसखी विशाखा को कठिन विशाल पञ्चशाखा में उपशोभित देख पाओगी। अर्थात् कठिन विशाल हस्त के द्वारा परिशोभित देखोगी ॥३७१॥

कृष्ण—विशाखिके! तरु के द्वारा आलिङ्गित होकर सुस्निग्ध छाया वती हो। परन्तु चम्पकलता की भाँति भङ्ग देकर यहाँ से चली मत जाओ। पक्ष में-युवा जो मैं हूँ मुझ को आलिङ्गन कर सुशोभित हो ॥

विशाखा—(शीघ्र गमन करके) कलङ्किनि ललिते! क्यों मुझे दूषित कर रही हो। निर्लज व्यक्ति स्वयं दुष्ट हो कर दूसरे को दूषित करता है। तुम इस बचन को सपुष्ट कर रहे हो ॥३७२॥ जो भी हो, तुम्हारा अभिप्राय सुन्दर रूप में व्यक्त हो गया, अतः मिथ्या अलीक भाव का प्रयोजन नहीं है। हम सब चिन्ता-कुल थीं कि तुमने दैववश हम सब को शुल्कयोग्य बना दिया ॥

ललिता—(किञ्चित् दूर में जाकर श्रीकृष्ण को देख कर नेत्र-प्रान्त कुञ्चित करने लगी) ॥ ३७३ ॥

कृष्ण--(ईषत् हास्य पूर्वक राधा को धरने की इच्छा कर) हे चञ्चलाक्षि! ललिता के नयन-भङ्गि रूप प्रबल पवन से मेरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर पल्लव अत्यन्त आन्दोलित हो रहा है। अतः आज सभ्य-स्वरूप हमारे प्रति असूया के साथ चक्षुः निक्षेप मत करो ॥

राधा--(भय के साथ विशाखा के निकट गमन कर) सखि ! अपनी रक्षा करो, क्यों कि समस्त लोग कहते हैं कि राधा की मालिन्यता में विशाखा मलिना हो गयी ॥ ३७५ ॥

ललिता--अयि गान्धर्व्विके ! धूर्त्तशिरोमणि व्याध की अनुगामिनी होकर क्यों पञ्चसखी में मुख्या पद्ममुखी ललिता का त्याग कर विशाखा रूप हरिणी की शरणागत हो रही हो ? ॥ ३७६ ॥

राधा—(प्रचुर कुतूहल के साथ भ्रू भङ्ग के द्वारा तिरस्कार करती ईषत हास्य पूर्वक संस्कृत में)

हे विश्वासघातिनि ! बहुकाल यावत उपरोध कर विश्वास दे कर परम शुद्धा हम सब को गृह से यहाँ लायी है। अब यदि लोभ-वश अपने व्रत को नष्ट करने की इच्छा करती हो तो उस में कोई क्षति नहीं है। हे देवि ! तुम अन्य सती को दूषित करती हो, क्या उस में तुम को लज्जा नहीं आती ? ॥ ३७७ ॥

ललिता—हा धिक् हा धिक् सखि बृन्दे कहो तो किस प्रकार मैं शुद्ध हूँगी ? ॥

बृन्दा—ललिते ! चिन्ताचर्य्या का प्रयोजन नहीं है। निकुञ्ज-महातीर्थ में रतिवल्लभ नें जागरण नामक व्रत का आरम्भ किया है। अब पाप की सम्भावना कहाँ है ? ॥

कृष्ण—क्रीड़ा कौतुक से क्यों निजकार्य में निश्चेष्ट हुँगा। क्यों कि आज शुल्क ग्रहण का उद्यम गुरुतर है ॥

नान्दीमुखी—ललिते ! देखो, मध्यान्ह समय उपस्थित हो गया है, अतः कहो तो तुम सब कितने शुल्क देने में सहमत हो ॥ ३७८ ॥

ललिता—हे दानीन्द्र ! यद्यपि पचास गण्डा कौड़ी देना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उचित है तो भी तुम्हारी मुखापेक्षा से मणिमय अंगुरी प्रदान करती हूँ (ऐसा कह कर चित्रा की अंगुलि से मुद्रिका खींच कर श्रीकृष्ण के समक्ष रखने लगी)

कृष्ण—(छलपूर्वक क्रोध प्रकट कर के) सखे! इस क्षुद्र-मुद्रिका को शीघ्र ही पर्व्वत में निक्षेप करो ॥

सुबल—(मुद्राक्षेप का अभिनय करके अपने हाथ में गोपन करने लगा) ॥ ३७६ ॥

ललिता—(क्रोध के साथ) बृन्दे! तुम ने देखा है, यह दुर्लभ मणिमुद्रिका फेंक दी गई ॥

नान्दीमुखी—(क्रोध के साथ) बृन्दे! तुम ने देखा है। यह मणिमुद्रिका निक्षिप्त हुई। नौ निधि के अधिपति कुवेर की महाचिन्तामणि अभिलाष से हस्तप्रसारित होने पर छिद्रकपर्दिका का निक्षेप जिस प्रकार होता है ठीक उस प्रकार तुम सब के व्यवहार को देख रही हूँ ॥ ३८० ॥

ललिता—(स्वगत) उत्कण्ठित इन दोनों को आश्वास प्रदान करूँ (ऐसा कह कर प्रदक्षिण पूर्वक हस्तावरण करके) हला राधे! सत्य है कि विना दान दिये यहाँ से प्रस्थान करना दुर्लभ है। अतः शुल्क के लिये तुम्हारे कण्ठहार को अर्पण करती हूँ (ऐसा कह कर बल पूर्वक कण्ठ से हार उतार कर परि-हास के साथ ईषत् हास्य करके) ॥ ३८१ ॥

हे उत्कण्ठिते! क्यों अधीर हो रही हो? यह निसृष्टार्थी मौक्तिकावली दूती श्रीकृष्ण को अलङ्कृत करने के लिये चल रही है। अतः अभिसार के लिये सज्जित हो जाओ ॥ ३८२ ॥

राधा—अयि संभोगारम्भिणि! अब इस प्रकार दम्भगम्भीर कार्य्य का प्रयोजन नहीं है। इस विवादमहायज्ञ में तुम अदक्षिणा हो कर भी सखीगण के साथ प्रणय वश दक्षिणा निर्म्माण कर रही हो ॥ ३८३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय, परमनिधि, करौंदी वाराणसी

ललिता—(श्रीकृष्ण के प्रति दृष्टिपात करके) हे घट्टनाथ ! यह अमूल्य मौक्तिकमाला तुम्हारे निकट सुरक्षित रखती हूँ। पुनः सन्ध्या के समय तुम को सुवर्ण अर्थात् राधिका को देकर इस माला को ले जाऊँगी ॥

कृष्ण—(हर्ष पूर्वक हारग्रहण कर स्वगत) वह यह शङ्खचूड़ के चूड़ामणि को नायक अर्थात् हार मध्यवर्त्ती किया गया है। प्रलम्बारी बलदेव जी ने अनुकम्पा कर के श्रीराधा के लिये इस को अर्पण किया है। अत एव सम्प्रति यह मुक्तावली मेरे प्रत्याशबीज को अंकुरित कर रही है। (ऐसा कह कर अपने कण्ठ में हार अर्पण करने लगे) ॥ ३८४ ॥

राधिका—(हस्तावरण करके) ललिते ! तपस्विनी मौक्तिकावली के भाग्य को देखो ॥

ललिता—राधे ! तुम्हारे स्तनरूप शम्भु की सेवा कर यह मौक्तिकावली शुद्ध हो रही है, इस लिये वह आज श्रीहरि के हृदयोपरि विराज कर रही है, यह तो हार की महिमा नहीं है, तुम्हारी ही महिमा है ॥ ३८५ ॥

राधा—कुटिले ! अब प्रलाप का प्रयोजन नहीं है। इस से भी भ्रमरकलङ्कित भंगुरिता वनमाला के प्रचुर सौभाग्य लीलाविलास को देखो (ऐसा कह कर संस्कृत में) ॥ ३८६ ॥

हे वनमाले ! तुम क्यों सर्वदा विशुद्ध व्रजाङ्गनाओं के साथ साक्षात् विद्वेष विधान कर रही हो ? क्यों कि हम सब को तृण ज्ञान करके अघारि के मस्तक से चरण पर्य्यन्त आलिङ्गन कर उन के विशाल हृदय में विहारशील हो रही हो ॥ ३८७ ॥

मधुमङ्गल—हे कल्याणि ललिते ! तुम सब ने महाघट्टपालेन्द्र श्रीकृष्ण को आनन्दित किया है। यह व्यक्ति क्षुधातुर है। एक मक्खनभरी हुई बड़ी सी गागरी के द्वारा कायस्थ मुझ को कायस्थ बनादो। अर्थात् सम्प्रति मैं काया में अवस्थित नहीं हूँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु घृतगर्गरी में। क्यों कि मेरा प्राण तो तद्गत है, अतः मेरे शरीरी में गर्गर घृत रख कर जीवन का स्थापन करो ॥३८८॥

विशाखा—अहे लोलुप! ऐसा मत कहो, यह यज्ञीयघृत है ॥ ३८९ ॥

मधुमङ्गल— विशाखे! वे याज्ञिक ब्राह्मणीगण धन्य हैं क्यों कि उन्होंने अपने गृह के आङ्गिरसयज्ञ की उपेक्षा करके उत्कृष्ट मिष्टान्न भोजन के द्वारा गोपबालकों को तृप्त कराया है। परन्तु खेद की बात यह कि-तुम सब दूसरे के यज्ञ योग्य नवनीत के द्वारा एक ब्राह्मण बालक को भोजन न दे सकीं ॥

कृष्ण—ललिते! इस महाघट्टेश्वर मुझ को जो हार उपहार दिया है वह अति उत्तम हो रहा है। अब उद्यानराजा को अभिमत शुल्क प्रदान करके उस के पूजानुष्ठान करो ॥ ३९० ॥

ललिता—(प्रणय कोप के साथ) जान कर भी तुम्हारे पास आयी हूँ, अतः इस प्रकार विडम्बना उचित नहीं है ॥ ३९१ ॥

नान्दीमुखी—दानीन्द्र! अपने अभिमत दान क्या है प्रकाश करके कहो, मैं मध्यस्थ होकर मीमांसा कर देती हूँ ॥ ३९२ ॥

कृष्ण—नान्दीमुखि! सुनो, आर्य्या राधा के सभास्थित परार्द्ध परिमित साध्वी आपके निकट हैं, इस विषय में अधिक क्या कहा जा सकता है। यदि कहो कि अब इतनी संख्या कहाँ है तो मैं क्या करुँगी। जो हो, आप श्रीराधिका को जो परार्द्ध मूल्या अर्थात् सर्वश्रेष्ठा है उस को हमारे पास गिरवी रख लीजिये, अवशिष्ट सब चले जावें ॥ ३९३ ॥

नान्दीमुखी—हे रङ्गिल श्रेष्ठ! चित्रा तुहारी चित्तानुवर्त्तिनी है। अतः यह चित्रा तुम्हारे शुल्क की उपयुक्ता है ॥

कृष्ण--चित्रा तो हाथ के आगे है वह दुर्लभ नहीं है।

पौर्णमासी--(प्रवेश करके) हे नागर! हे नागरियों के मस्तक में अभिषिक्त! तुम जिस के प्रति महान् स्पृहायुक्त हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस को परार्द्ध से भी दुर्लभ अमूल्य जानना ॥

कृष्ण--(लज्जा के साथ प्रणाम करके) मैं तो केवल शुल्क-विद्या प्राप्ति के लिये इस प्रकार आग्रह कर रहा हूँ। परन्तु पञ्च वराटक मूल्यवाली गोपियों के लिये नहीं ॥ ३६४ ॥

राधा—हम सब विपद् सागर के पार देख पा रही हैं, क्यों कि स्वयं भगवती आप यहाँ आकर उपस्थित हैं ॥

पौर्णमासी--(हस्तावरण करके) हे कृशोदरि! अटवी-मण्डलेन्द्र दानीन्द्र के विश्व प्रकटन दान न मान कर गर्व्वोन्नत, क्रुद्ध एवं कलहकारिणी तुम सब का विडम्बना-सागर में क्या पतन नहीं होगा ॥ ३६५-३६६ ॥

ललिता--भगवति! हम सब ने दुर्ल्लभ हार को अर्पण किया है तो भी हम सब को मुक्त नहीं कर रहा है ॥ ३६७ ॥

पौर्णमासी--ललिते! देखो, तुम्हारे प्रबल कलह कषाय-वर्ण से पिञ्छचूड़ श्रीकृष्ण के चित्त रूप दुकूल रक्तवर्ण होगया है। अतः वे प्रतिकूल हो रहे हैं। प्रिया के उपहार के बिना ये धीर क्रोध संरम्भ का त्याग नहीं करेंगे ॥ ३६८ ॥

नान्दीमुखी—भगवति! आज्ञा कीजिये इन में से यह भार कौन वहन कर सकती है ॥ ३९९ ॥

पौर्णमासी—पांच जनों में जो पद्मनयनी परम आराधनीया एवं धीरा है वह इस के वहन में अग्रगण्या है। अर्थात इस विषय के भार वहन में राधा ही समर्था है ॥

ललिता—(ईषत् हास्य करके श्रीराधा के प्रति दृष्टिपात कर नेत्र सङ्कुचित करने लगी)

राधा—(चिन्ता का अभिनय करके वृन्दा के कर्णमूल में लगती है) ॥ ४०० ॥

वृन्दा—वेदिमध्या अर्थात् श्रीराधा यह निवेदन कर रही है कि-हाय विश्ववेदिनि! जो मनोहर चातुरी चमत्कृति का प्रकाश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती है वह ललिता आज इस महासङ्कट में शुल्क रूप से निर्णीत हो रही है। केवल आप की अनुज्ञा प्रतीक्षा करके सम्मुख में उपस्थित है ॥ ४०१ ॥

ललिता—(ईषत् हास्य करके) हृदय रत्न के जयारम्भ होने पर वृथा छलरङ्ग रक्षा का प्रयोजन नहीं है।

पौर्णमासी—ललिता ने अयुक्त नहीं कहा है ॥ ४०२ ॥

राधा—(किञ्चित् उच्च स्वर से मानो) भगवति ! इस दुरन्त विपद में घट्टपाल के हाथ में कातर न होकर सरल एक जन को शुल्क के लिये प्रदान कीजिये। (ऐसा कह कर संस्कृत में) इस पर्वत के कुरङ्गगह्वर में कृष्ण रूप भुजङ्गराज भ्रमण कर रहा है। वह जिस का स्पर्श करता है उस की असाध्य विषम-दंशा हो जाती है, मैं भद्र-अभद्र कुछ विवेचन नहीं कर पाती हूँ। उस का दर्शन मात्र से मृतवत हो गई हूँ। अतः इस अवस्था में मुझ को शुल्क के लिये निक्षेप करने की इच्छा कर रही हो। (ऐसा कह कर छल पूर्वक शुष्क-रोदन करती करती पादसमीप में लोटने लगी)

पौर्णमासी—(भुजदोनों से आलिङ्गन करके) वत्से ! रोदन मत करो, ये सब तुम्हारे आगे को सुखप्रद होंगे ॥ ४०२-४०४ ॥

कृष्ण—भगवति ! सत्य, मैं भाग्यवान हो गया। क्यों कि इस समीचीन समय में आप उपस्थित हुई हैं। अतः अपने को स्वीकृतशुल्क रूप में मान रहा हूँ ॥ ४०५ ॥

पौर्णमासी—(हस्तावरणकरके) रमणीय निधि रमणीमणी तुम्हारे उपकण्ठ में शोभादायिनी हो रही है, अन्य तुच्छ शुल्क में प्रयोजन क्या है ? ॥ ४०६ ॥

कृष्ण—(आनन्द के साथ मन मन में) भगवती ने मेरी इच्छा अनुरूप श्रीराधा को शुल्कार्थ नियुक्त किया है। यह तो अति सौभाग्य का विषय है। (प्रकाश्य से) भगवति ! इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्निग्ध अरुण कौमुदीसमूह से युक्त रमणीरत्न की प्राप्ति-पक्ष में आप के अनुग्रह के बिना अन्य कोई युक्ति नहीं है ॥ ४०७ ॥

पौर्णमासी—(मधुर हास्य के साथ) नागरेन्द्र! मैंने इस को चिन्तामणि रूप से अर्थात् हारमध्यगत श्रेष्ठ रत्न रूप में प्रस्तुत किया है। तुम तो कान्तामणि बोल कर मान लो ॥४०८॥

कृष्ण—(लज्जा के साथ ईषत् हास्य करके) भगवति! यहाँ तक मेरे वाक्य की विश्रान्ति हुई। क्यों कि इस स्त्रीरत्न प्राप्ति विषय में आप की सभापरिषद् की मन्त्री-विद्या सम्पति ही कारण हो रही है ॥ ४०९ ॥

पौर्णमासी—हे चातुरी-विद्या के महोपाध्याय! अब विस्मित भाव प्रकाश मत करना। चिन्तामणिलाभ ही अवश्य कान्तामणिलाभ के लिये होता है। अर्थात् जब कि इस का हार प्राप्त हुआ है तब तो निश्चय इस की प्राप्ति सिद्धि हुई है ॥ ४१० ॥
प्रत्युष की शोभा के उपस्थित होने पर सूर्य्य सम्बन्धिनी शोभा की आकाश सेवा में व्यभिचारिष्णुता नहीं होती है। पक्ष में—भानुजा श्रीराधा की शोभा विष्णु—तुम्हारी पदसेवा के लिये नहीं होती है, अर्थात् होती हैं। अत एव तुम पूर्ण हो रहे हो ॥४११॥

बृन्दा—पूर्णिमा के उपस्थित होने पर कलानिधि चन्द्र का पूर्णविकाश नहीं होता है क्या? ॥ ४१२ ॥

पौर्णमासी—बृन्दे! राधा अर्थात् विशाखानक्षत्र को लेकर ही विधु अर्थात् चन्द्रमा के द्वारा माधवी अर्थात् वैशाखी पूर्णिमा माधुर्य्यशालनी हो रही है। पक्षान्तर में विधु श्रीकृष्ण विशाखा सखी के द्वारा संयुक्त होकर श्रीराधा-सहयोग से पूर्णत्व प्राप्त हो रहे हैं ॥

बृन्दा—अतः पूर्णिमा विशाखासखी के द्वारा इस पूर्णत को सम्मुख में योजित करें। (ऐसा कह कर ललितादि सखियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पौर्णमासी के बल से बलवती होकर श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण को निर्जन केलिकुञ्ज में प्रवेश कराने लगीं)

पौर्णमासी—(कुछ क्षण के बाद जब दोनों दिव्य वेशभूषा करके समागत हुए तब दोनों को देख कर) हे वैदग्धीचन्द्रिका-चन्द्र ! यहाँ उत्तम प्रतिनिधि हो रहा है। सायंकाल मैं तुम्हारे अभीष्ट शुल्क का प्रदान करूँगी। अत एव आज्ञा कीजिये। ये सब यज्ञवेदी की शोभा-सम्पादनार्थ गमन करें ॥

कृष्ण—(लज्जा के साथ) जैसी आज्ञा ॥

पौर्णमासी—हे सर्व्वानन्दकदम्बमूर्त्ते ! यद्यपि तुम्हारे इस मनोज्ञविलास से मैं कृतार्थ हो गयी हूँ तो भी कुछ प्रार्थना करने की इच्छा करती हूँ ॥

कृष्ण—(हर्ष के साथ) भगवति ! शीघ्र आज्ञा कीजिये। तुम्हारा पुनः क्या प्रियसाधन करूँ ॥ ४१३ ॥

पौर्णमासी— हे निरवद्य केलिमाधुरीसुधासागर ! उत्तम प्रसङ्ग में की हुई प्रार्थना निश्चय फलगर्भिणी होती है। सम्प्रति यह निवेदन करती हूँ कि-हे माधव ? सहचरीवृन्द से परिमिलित गुणप्रवरा इस राधिका के साथ तुम नर्म्म सखागण से परिवेष्टित होकर सर्व्वदा घट्टविलास करो ॥ दूसरी प्रार्थना यह है कि-जो जन अन्य धर्म समूह को परित्याग पूर्वक राधाकुण्ड के तटस्थ कुटीर में निवास कर साक्षात् तुम दोनों की सेवा करने में उत्कण्ठित होता है हे माधव ! वृन्दारण्यनिवासियों के अभीष्ट पूर्णविषय में क्रीड़ाकटाक्ष निक्षेपकारी तुम उस के तर्षाख्य मनोरथ तरु को शीघ्र ही फलशाली विधान करना ॥

कृष्ण—(हर्ष के साथ अङ्गीकार करके) भगवति ! वैसा ही होगा। अत एव आओ, अपने अपने कार्य्य के लिये हम सब गमन करें। (ऐसा कह कर सब प्रस्थान करने लगे) ॥ ४१४ ॥

इति दानकेलिकौमुदी नामक भाणिका का कृष्णदास कृत
भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.